करके ज्ञानी पुरुष कभी शोक नहीं करते हैं, उन्हीं भगवान् शिवसे हम वर प्राप्त करना चाहते हैं॥ १९६॥

भूतभावनभावज्ञं सर्वभूताभिभावनम्।
सर्वगं सर्वदं देवं पूजयामि पुरन्दर॥ १९७॥

पुरंदर! जो सम्पूर्ण भूतोंके उत्पादक तथा उनके मनोभावोंको जाननेवाले हैं, समस्त प्राणियोंके पराभव (विलय)-के भी जो एकमात्र स्थान हैं तथा जो सर्वव्यापी और सब कुछ देनेमें समर्थ हैं, उन्हीं महादेवजीकी मैं पूजा करता हूँ॥ १९७॥

हेतुवादैर्विनिर्मुक्तं सांख्ययोगार्थदं परम्।
यमुपासन्ति तत्त्वज्ञा वरं तस्माद् वृणीमहे॥ १९८॥

जो युक्तिवादसे दूर हैं, जो अपने भक्तोंको सांख्य और योगका परम प्रयोजन (आत्यन्तिक दुःखनिवृत्ति और ब्रह्मसाक्षात्कार) प्रदान करनेवाले हैं, तत्त्वज्ञ पुरुष जिनकी सदा उपासना करते हैं, उन्हीं महादेवजीसे हम वरके लिये प्रार्थना करते हैं॥ १९८॥

मघवन् मघवात्मानं यं वदन्ति सुरेश्वरम्।
सर्वभूतगुरुं देवं वरं तस्माद् वृणीमहे॥ १९९॥

मघवन्! ज्ञानी पुरुष जिन्हें देवेश्वर इन्द्ररूप तथा सम्पूर्ण भूतोंके गुरुदेव बताते हैं, उन्हींसे हम वर लेना चाहते हैं॥ १९९॥

यः पूर्वमसृजद् देवं ब्रह्माणं लोकभावनम्।
अण्डमाकाशमापूर्य वरं तस्माद् वृणीमहे॥ २००॥

जिन्होंने पूर्वकालमें आकाशव्यापी ब्रह्माण्ड एवं लोकस्रष्टा देवेश्वर ब्रह्माको उत्पन्न किया, उन्हीं महादेवजीसे हम वर प्राप्त करना चाहते हैं॥ २००॥

अग्निरापोऽनिलः पृथ्वी खं बुद्धिश्च मनो महान्।
स्रष्टा चैषां भवेद् योऽन्यो ब्रूहि कः परमेश्वरात्॥ २०१॥

देवराज! जो अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार—इन सबका स्रष्टा हो, वह परमेश्वरसे भिन्न दूसरा कौन पुरुष है? यह बताओ॥

मनो मतिरहंकारस्तन्मात्राणीन्द्रियाणि च।
ब्रूहि चैषां भवेच्छक्र कोऽन्योऽस्ति परमं शिवात्॥ २०२॥

शक्र! जो मन, बुद्धि, अहंकार, पञ्चतन्मात्रा और दस इन्द्रिय—इन सबकी सृष्टि कर सके, ऐसा कौन पुरुष है जो भगवान् शिवसे भिन्न अथवा उत्कृष्ट हो? यह बताओ॥ २०२॥

स्रष्टारं भुवनस्येह वदन्तीह पितामहम्।
आराध्य स तु देवेशमश्नुते महतीं श्रियम्॥ २०३॥

ज्ञानी महात्मा ब्रह्माजीको ही सम्पूर्ण विश्वका स्रष्टा बताते हैं। परंतु वे देवेश्वर महादेवजीकी आराधना करके ही महान् ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं॥ २०३॥

भगवत्युत्तमैश्वर्यं ब्रह्मविष्णुपुरोगमम्।
विद्यते वै महादेवाद् ब्रूहि कः परमेश्वरात्॥ २०४॥

जिस भगवान्‌में ब्रह्मा और विष्णुसे भी उत्तम ऐश्वर्य है, वह परमेश्वर महादेवके सिवा दूसरा कौन है? यह बताओ तो सही॥ २०४॥

दैत्यदानवमुख्यानामाधिपत्यारिमर्दनात्।
कोऽन्यः शक्नोति देवेशाद् दितेः सम्पादितुं सुतान्॥ २०५॥

दैत्यों और दानवोंके प्रमुख वीर हिरण्यकशिपु आदिमें जो तीनों लोकोंपर आधिपत्य स्थापित करने और अपने शत्रुओंको कुचल देनेकी शक्ति सुनी गयी है, उसपर दृष्टिपात करके मैं यह पूछ रहा हूँ कि देवेश्वर महादेवके सिवा दूसरा कौन ऐसा है जो दितिके पुत्रोंको इस प्रकार अनुपम ऐश्वर्यसे सम्पन्न कर सके?॥

दिक्कालसूर्यतेजांसि ग्रहवाय्विन्दुतारकाः।
विद्धि त्वेते महादेवाद् ब्रूहि कः परमेश्वरात्॥ २०६॥

दिशा, काल, सूर्य, अग्नि, अन्य ग्रह, वायु, चन्द्रमा और नक्षत्र—ये महादेवजीकी कृपासे ही ऐसे प्रभावशाली हुए हैं। इस बातको तुम जानते हो, अतः तुम्हीं बताओ, परमेश्वर महादेवजीके सिवा दूसरा कौन ऐसी अचिन्त्य शक्तिसे सम्पन्न है?॥ २०६॥

अथोत्पत्तिविनाशे वा यज्ञस्य त्रिपुरस्य वा।
दैत्यदानवमुख्यानामाधिपत्यारिमर्दनः॥ २०७॥

यज्ञकी उत्पत्ति और त्रिपुरका विनाश भी उन्हींके द्वारा सम्पन्न हुआ है। प्रधान-प्रधान दैत्यों और दानवोंको आधिपत्य प्रदान करने और शत्रुमर्दनकी शक्ति देनेवाले भी वे ही हैं॥ २०७॥

किं चात्र बहुभिः सूक्तैर्हेतुवादैः पुरंदर।
सहस्रनयनं दृष्ट्वा त्वामेव सुरसत्तम॥ २०८॥
पूजितं सिद्धगन्धर्वैर्देवैश्च ऋषिभिस्तथा।
देवदेवप्रसादेन तत् सर्वं कुशिकोत्तम॥ २०९॥

सुरश्रेष्ठ पुरंदर! कौशिकवंशावतंस इन्द्र! यहाँ बहुत-सी युक्तियुक्त सूक्तियोंको सुनानेसे क्या लाभ? आप जो सहस्र नेत्रोंसे सुशोभित हैं तथा आपको देखकर सिद्ध, गन्धर्व, देवता और ऋषि जो सम्मान प्रदर्शित करते हैं, वह सब देवाधिदेव महादेवके प्रसादसे ही सम्भव हुआ है॥ २०८-२०९॥

अव्यक्तमुक्तकेशाय सर्वगस्येदमात्मकम्।
चेतनाचेतनाद्येषु शक्र विद्धि महेश्वरात्॥ २१०॥

इन्द्र! चेतन और अचेतन आदि समस्त पदार्थोंमें 'यह ऐसा है' इस प्रकारका जो लक्षण देखा जाता है, वह सब अव्यक्त, मुक्तकेश एवं सर्वव्यापी महादेवजीके ही प्रभावसे प्रकट है; अतएव सब कुछ महेश्वरसे ही उत्पन्न हुआ है—ऐसा समझो॥ २१०॥

भुवाद्येषु महान्तेषु लोकालोकान्तरेषु च।
द्वीपस्थानेषु मेरोश्च विभवेष्वन्तरेषु च॥ २११॥
भगवन् मघवन् देवं वदन्ते तत्त्वदर्शिनः।

भगवान् देवराज! भूलोकसे लेकर महर्लोकतक समस्त लोक-लोकान्तरोंमें, पर्वतके मध्यभागमें, सम्पूर्ण द्वीपस्थानोंमें, मेरुपर्वतके वैभवपूर्ण प्रान्तोंमें सर्वत्र ही तत्त्वदर्शी पुरुष महादेवजीकी स्थिति बताते हैं॥ २११½॥

यदि देवाः सुराः शक्र पश्यन्त्यन्यां भवाद् गतिम्॥ २१२॥
किं न गच्छन्ति शरणं मर्दिताश्चासुरैः सुराः।

शक्र! यदि तेजस्वी देवगण महादेवजीके सिवा दूसरा कोई सहारा देखते हैं तो असुरोंद्वारा कुचले जानेपर वे उसीकी शरणमें क्यों नहीं जाते हैं?॥ २१२½॥

अभिघातेषु देवानां सयक्षोरगरक्षसाम्॥ २१३॥
परस्परविनाशेषु स्वस्थानैश्वर्यदो भवः।

देवता, यक्ष, नाग और राक्षस—इनमें जब संघर्ष होता और परस्पर एक-दूसरेसे विनाशका अवसर उपस्थित होता है तब उन्हें अपने स्थान और ऐश्वर्यकी प्राप्ति करानेवाले भगवान् शिव ही हैं॥ २१३½॥

अन्धकस्याथ शुक्रस्य दुन्दुभेर्महिषस्य च॥ २१४॥
यक्षेन्द्रबलरक्षःसु निवातकवचेषु च।
वरदानावघाताय ब्रूहि कोऽन्यो महेश्वरात्॥ २१५॥

बताओ तो सही, अन्धकको, शुक्रको, दुन्दुभिको, महिषको, यक्षराज कुबेरकी सेनाके राक्षसोंको तथा निवातकवच नामक दानवोंको वरदान देने और उनका विनाश करनेमें भगवान् महेश्वरको छोड़कर दूसरा कौन समर्थ है?॥ २१४-२१५॥

सुरासुरगुरोर्वक्त्रे कस्य रेतः पुरा हुतम्।
कस्य वान्यस्य रेतस्तद् येन हैमो गिरिः कृतः॥ २१६॥

पूर्वकालमें महादेवजीके सिवा दूसरे किस देवताके वीर्यकी देवासुरगुरु अग्निके मुखमें आहुति दी गयी थी? जिसके द्वारा सुवर्णमय मेरुगिरिका निर्माण हुआ, वह भगवान् शिवके सिवा और किस देवताका वीर्य था?॥ २१६॥

दिग्वासाः कीर्त्यते कोऽन्यो लोके कश्चोर्ध्वरेतसः।
कस्य चार्धे स्थिता कान्ता अनङ्गः केन निर्जितः॥ २१७॥

दूसरा कौन दिगम्बर कहलाता है? संसारमें दूसरा कौन ऊर्ध्वरेता है? किसके आधे शरीरमें धर्मपत्नी स्थित रहती है तथा किसने कामदेवको परास्त किया है?॥

ब्रूहीन्द्र परमं स्थानं कस्य देवैः प्रशस्यते।
श्मशाने कस्य क्रीडार्थं नृत्ते वा कोऽभिभाष्यते॥ २१८॥

इन्द्र! बताओ तो सही, किसके उत्कृष्ट स्थानकी देवताओंद्वारा प्रशंसा की जाती है? किसकी क्रीड़ाके लिये श्मशानभूमिमें स्थान नियत किया गया है? तथा ताण्डव-नृत्यमें कौन सर्वोपरि बताया जाता है॥ २१८॥

कस्यैश्वर्यं समानं च भूतैः को वापि क्रीडते।
कस्य तुल्यबला देव गणाश्चैश्वर्यदर्पिताः॥ २१९॥

भगवान् शंकरके समान दूसरे किसका ऐश्वर्य है? कौन भूतोंके साथ क्रीड़ा करता है? देव! किसके पार्षदगण स्वामीके समान ही बलवान् और ऐश्वर्यपर अभिमान करनेवाले हैं?॥ २१९॥

घुष्यते ह्यचलं स्थानं कस्य त्रैलोक्यपूजितम्।
वर्षते तपते कोऽन्यो ज्वलते तेजसा च कः॥ २२०॥

किसका स्थान तीनों लोकोंमें पूजित और अविचल बताया जाता है। भगवान् शंकरके सिवा दूसरा कौन वर्षा करता है? कौन तपता है? और कौन अपने तेजसे प्रज्वलित होता है?॥ २२०॥

कस्मादोषधिसम्पत्तिः को वा धारयते वसु।
प्रकामं क्रीडते को वा त्रैलोक्ये सचराचरे॥ २२१॥

किससे ओषधियाँ—खेती-बारी या शस्य-सम्पत्ति बढ़ती है? कौन धनका धारण-पोषण करता है? कौन चराचर प्राणियोंसहित त्रिलोकीमें इच्छानुसार क्रीड़ा करता है?॥ २२१॥

ज्ञानसिद्धिक्रियायोगैः सेव्यमानश्च योगिभिः।
ऋषिगन्धर्वसिद्धैश्च विहितं कारणं परम्॥ २२२॥

योगीजन ज्ञान, सिद्धि और क्रिया-योगद्वारा भगवान् शिवकी ही सेवा करते हैं तथा ऋषि, गन्धर्व और सिद्धगण उन्हें ही परम कारण मानकर उनका आश्रय लेते हैं॥ २२२॥

कर्मयज्ञक्रियायोगैः सेव्यमानः सुरासुरैः।
नित्यं कर्मफलैर्हीनं तमहं कारणं वदे॥ २२३॥

देवता और असुर सब लोग कर्म, यज्ञ और क्रिया-योगद्वारा सदा जिनकी सेवा करते हैं, उन कर्मफलरहित महादेवजीको मैं सबका कारण कहता हूँ॥ २२३॥

स्थूलं सूक्ष्ममनौपम्यमग्राह्यं गुणगोचरम्।
गुणहीनं गुणाध्यक्षं परं माहेश्वरं पदम्॥ २२४॥

महादेवजीका परमपद स्थूल, सूक्ष्म, उपमा-रहित, इन्द्रियोंद्वारा अग्राह्य, सगुण, निर्गुण तथा गुणोंका नियामक है॥ २२४॥

विश्वेशं कारणगुरुं लोकालोकान्तकारणम्।
भूताभूतभविष्यच्च जनकं सर्वकारणम्॥ २२५॥
अक्षरक्षरमव्यक्तं विद्याविद्ये कृताकृते।
धर्माधर्मौ यतः शक्र तमहं कारणं ब्रुवे॥ २२६॥

इन्द्र! जो सम्पूर्ण विश्वके अधीश्वर, प्रकृतिके भी नियामक, लोक (जगत्की सृष्टि) तथा सम्पूर्ण लोकोंके संहारके भी कारण हैं, भूत, वर्तमान और भविष्य—तीनों काल जिनके ही स्वरूप हैं, जो सबके उत्पादक एवं कारण हैं, क्षर-अक्षर, अव्यक्त, विद्या-अविद्या, कृत-अकृत तथा धर्म और अधर्म जिनसे ही प्रकट हुए हैं, उन महादेवजीको ही मैं सबका परम कारण बताता हूँ॥ २२५-२२६॥

प्रत्यक्षमिह देवेन्द्र पश्य लिङ्गं भगाङ्कितम्।
देवदेवेन रुद्रेण सृष्टिसंहारहेतुना॥ २२७॥

देवेन्द्र! सृष्टि और संहारके कारणभूत देवाधिदेव भगवान् रुद्रने जो भगचिह्नित लिङ्गमूर्ति धारण की है, उसे आप यहाँ प्रत्यक्ष देख लें। यह उनके कारण-स्वरूपका परिचायक है॥ २२७॥

मात्रा पूर्वं ममाख्यातं कारणं लोकलक्षणम्।
नास्ति चेशात् परं शक्र तं प्रपद्य यदीच्छसि॥ २२८॥

इन्द्र! मेरी माताने पहले कहा था कि महादेवजीके अतिरिक्त अथवा उनसे बढ़कर कोई लोकरूपी कार्यका कारण नहीं है; अतः यदि किसी अभीष्ट वस्तुके पानेकी तुम्हारी इच्छा हो तो भगवान् शंकरकी ही शरण लो॥ २२८॥

प्रत्यक्षं ननु ते सुरेश विदितं संयोगलिङ्गोद्भवं
त्रैलोक्यं सविकारनिर्गुण गणं ब्रह्मादिरेतोद्भवम्।
यद्ब्रह्मेन्द्रहुताशविष्णुसहिता देवाश्च दैत्येश्वरा
नान्यत् कामसहस्रकल्पितधियः शंसन्ति ईशात् परम्॥
तं देवं सचराचरस्य जगतो व्याख्यातवेद्योत्तमं
कामार्थी वरयामि संयतमना मोक्षाय सद्यः शिवम्॥ २२९॥

सुरेश्वर! तुम्हें प्रत्यक्ष विदित है कि ब्रह्मा आदि प्रजापतियोंके संकल्पसे उत्पन्न हुआ यह बद्ध और मुक्त जीवोंसे युक्त त्रिभुवन भग और लिंगसे प्रकट हुआ है तथा सहस्रों कामनाओंसे युक्त बुद्धिवाले तथा ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि एवं विष्णुसहित सम्पूर्ण देवता और दैत्यराज महादेवजीसे बढ़कर दूसरे किसी देवताको नहीं बताते हैं। जो सम्पूर्ण चराचर जगत्के लिये वेद-विख्यात सर्वोत्तम जाननेयोग्य तत्त्व हैं, उन्हीं कल्याणमय देव भगवान् शंकरका कामनापूर्तिके लिये वरण करता हूँ तथा संयतचित्त होकर सद्यःमुक्तिके लिये भी उन्हींसे प्रार्थना करता हूँ॥ २२९॥

हेतुभिर्वा किमन्यैस्तैरीशः कारणकारणम्।
न शुश्रुम यदन्यस्य लिङ्गमभ्यर्चितं सुरैः॥ २३०॥

दूसरे-दूसरे कारणोंको बतलानेसे क्या लाभ? भगवान् शंकर इसलिये भी समस्त कारणोंके भी कारण सिद्ध होते हैं कि हमने देवताओंद्वारा दूसरे किसीके लिंगको पूजित होते नहीं सुना है॥ २३०॥

कस्यान्यस्य सुरैः सर्वैर्लिङ्गं मुक्त्वा महेश्वरम्।
अर्च्यतेऽर्चितपूर्वं वा ब्रूहि यद्यस्ति ते श्रुतिः॥ २३१॥

भगवान् महेश्वरको छोड़कर दूसरे किसके लिंगकी सम्पूर्ण देवता पूजा करते हैं अथवा पहले कभी उन्होंने पूजा की है? यदि तुम्हारे सुननेमें आया हो तो बताओ॥ २३१॥

यस्य ब्रह्मा च विष्णुश्च त्वं चापि सह दैवतैः।
अर्चयध्वं सदा लिङ्गं तस्मात् श्रेष्ठतमो हि सः॥ २३२॥

ब्रह्मा, विष्णु तथा सम्पूर्ण देवताओंसहित तुम सदा ही शिवलिंगकी पूजा करते आये हो; इसलिये भगवान् शिव ही सबसे श्रेष्ठतम देवता हैं॥ २३२॥

न पद्माङ्का न चक्राङ्का न वज्राङ्का यतः प्रजाः।
लिङ्गाङ्का च भगाङ्का च तस्मान्माहेश्वरी प्रजा॥ २३३॥

प्रजाओंके शरीरमें न तो पद्मका चिह्न है, न चक्रका चिह्न है और न वज्रका ही चिह्न उपलक्षित होता है। सभी प्रजा लिंग और भगके चिह्नसे युक्त हैं, इसलिये यह सिद्ध है कि सम्पूर्ण प्रजा माहेश्वरी है (महादेवजीसे ही उत्पन्न हुई है)॥ २३३॥

देव्याः कारणरूपभावजनिताः
सर्वा भगाङ्काः स्त्रियो
लिंगेनापि हरस्य सर्वपुरुषाः
प्रत्यक्षचिह्नीकृताः ।
योऽन्यत्कारणमीश्वरात् प्रवदते
देव्या च यन्नाङ्कितं
त्रैलोक्ये सचराचरे स तु पुमान्
बाह्यो भवेद् दुर्मतिः॥ २३४॥

देवी पार्वतीके कारणस्वरूप भावसे संसारकी समस्त स्त्रियाँ उत्पन्न हुई हैं; इसलिये भगके चिह्नसे अंकित हैं और भगवान् शिवसे उत्पन्न होनेके कारण

सभी पुरुष लिंगके चिह्नसे चिह्नित हैं—यह सबको प्रत्यक्ष है; ऐसी दशामें जो शिव और पार्वतीके अतिरिक्त अन्य किसीको कारण बताता है, जिससे कि प्रजा चिह्नित नहीं है, वह अन्य कारणवादी दुर्बुद्धि पुरुष चराचर प्राणियोंसहित तीनों लोकोंसे बाहर कर देने योग्य है॥ २३४॥

पुंल्लिङ्गं सर्वमीशानं स्त्रीलिङ्गं विद्धि चाप्युमाम्।
द्वाभ्यां तनुभ्यां व्याप्तं हि चराचरमिदं जगत्॥ २३५॥

जितना भी पुँल्लिंग है, वह सब शिवस्वरूप है और जो भी स्त्रीलिंग है उसे उमा समझो। महेश्वर और उमा—इन दो शरीरोंसे ही यह सम्पूर्ण चराचर जगत् व्याप्त है॥ २३५॥

(दिवसकरशशाङ्कवह्निनेत्रं
त्रिभुवनसारमपारमीशमाद्यम्।
अजरममरमप्रसाद्य रुद्रं
जगति पुमानिह को लभेत शान्तिम्॥)

सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि जिनके नेत्र हैं, जो त्रिभुवनके सारतत्त्व, अपार, ईश्वर, सबके आदिकारण तथा अजर-अमर हैं, उन रुद्रदेवको प्रसन्न किये बिना इस संसारमें कौन पुरुष शान्ति पा सकता है॥

तस्माद् वरमहं काङ्क्षे निधनं वापि कौशिक।
गच्छ वा तिष्ठ वा शक्र यथेष्टं बलसूदन॥ २३६॥

अतः कौशिक! मैं भगवान् शंकरसे ही वर अथवा मृत्यु पानेकी इच्छा रखता हूँ। बलसूदन इन्द्र! तुम जाओ या खड़े रहो, जैसी इच्छा हो करो॥ २३६॥

काममेष वरो मेऽस्तु शापो वाथ महेश्वरात्।
न चान्यां देवतां काङ्क्षे सर्वकामफलामपि॥ २३७॥

मुझे महेश्वरसे चाहे वर मिले, चाहे शाप प्राप्त हो, स्वीकार है, परंतु दूसरा देवता यदि सम्पूर्ण मनोवांछित फलोंको देनेवाला हो तो भी मैं उसे नहीं चाहता॥ २३७॥

एवमुक्त्वा तु देवेन्द्रं दुःखादाकुलितेन्द्रियः।
न प्रसीदति मे देवः किमेतदिति चिन्तयन्॥ २३८॥

देवराज इन्द्रसे ऐसा कहकर मेरी इन्द्रियाँ दुःखसे व्याकुल हो उठीं और मैं सोचने लगा कि यह क्या कारण हो गया कि महादेवजी मुझपर प्रसन्न नहीं हो रहे हैं॥ २३८॥

अथापश्यं क्षणेनैव तमेवैरावतं पुनः।
हंसकुन्देन्दुसदृशं मृणालरजतप्रभम्॥ २३९॥
वृषरूपधरं साक्षात् क्षीरोदमिव सागरम्।
कृष्णपुच्छं महाकायं मधुपिङ्गललोचनम्॥ २४०॥

तदनन्तर एक ही क्षणमें मैंने देखा कि वही ऐरावत हाथी अब वृषभरूप धारण करके स्थित है। उसका वर्ण हंस, कुन्द और चन्द्रमाके समान श्वेत है। उसकी अंगकान्ति मृणालके समान उज्ज्वल और चाँदीके समान चमकीली है। जान पड़ता था साक्षात् क्षीरसागर ही वृषभरूप धारण करके खड़ा हो। काली पूँछ, विशाल शरीर और मधुके समान पिंगल वर्णवाले नेत्र शोभा पा रहे थे॥ २३९-२४०॥

वज्रसारमयैः शृङ्गैर्निष्टप्तकनकप्रभैः।
सुतीक्ष्णैर्मृदुरक्ताग्रैरुत्किरन्तमिवावनिम्॥ २४१॥

उसके सींग ऐसे जान पड़ते थे मानो वज्रके सारतत्त्वसे बने हों। उनसे तपाये हुए सुवर्णकी-सी प्रभा फैल रही थी। उन सींगोंके अग्रभाग अत्यन्त तीखे, कोमल तथा लाल रंगके थे। ऐसा लगता था मानो उन सींगोंके द्वारा वह इस पृथ्वीको विदीर्ण कर डालेगा॥ २४१॥

जाम्बूनदेन दाम्ना च सर्वतः समलंकृतम्।
सुवक्त्रखुरनासं च सुकर्णं सुकटीतटम्॥ २४२॥

उसके शरीरको सब ओरसे जाम्बूनद नामक सुवर्णकी लड़ियोंसे सजाया गया था। उसके मुख, खुर, नासिका (नथुने), कान और कटिप्रदेश—सभी बड़े सुन्दर थे॥ २४२॥

सुपार्श्वं विपुलस्कन्धं सुरूपं चारुदर्शनम्।
ककुदं तस्य चाभाति स्कन्धमापूर्य धिष्ठितम्॥ २४३॥

उसके अगल-बगलका भाग भी बड़ा मनोहर था। कंधे चौड़े और रूप सुन्दर था। वह देखनेमें बड़ा मनोहर जान पड़ता था। उसका ककुद् समूचे कंधेको घेरकर ऊँचे उठा था। उसकी बड़ी शोभा हो रही थी॥ २४३॥

तुषारगिरिकूटाभं सिताभ्रशिखरोपमम्।
तमास्थितश्च भगवान् देवदेवः सहोमया॥ २४४॥
अशोभत महादेवः पौर्णमास्यामिवोडुराट्।

हिमालय पर्वतके शिखर अथवा श्वेत बादलोंके विशाल खण्डके समान प्रतीत होनेवाले उस नन्दिकेश्वरपर देवाधिदेव भगवान् महादेव भगवती उमाके साथ आरूढ़ हो पूर्णिमाके चन्द्रमाकी भाँति शोभा पा रहे थे॥ २४४½॥

तस्य तेजोभवो वह्निः समेघः स्तनयित्नुमान्॥ २४५॥
सहस्रमिव सूर्याणां सर्वमापूर्य धिष्ठितः।

उनके तेजसे प्रकट हुई अग्निकी-सी प्रभा गर्जना करनेवाले मेघोंसहित सम्पूर्ण आकाशको व्याप्त करके

सहस्रों सूर्योंके समान प्रकाशित हो रही थी॥ २४५½॥

ईश्वरः सुमहातेजाः संवर्तक इवानलः॥ २४६॥
युगान्ते सर्वभूतानां दिधक्षुरिव चोद्यतः।

वे महातेजस्वी महेश्वर ऐसे दिखायी देते थे मानो कल्पान्तके समय सम्पूर्ण भूतोंको दग्ध कर देनेकी इच्छासे उद्यत हुई प्रलयकालीन अग्नि प्रज्वलित हो उठी हो॥ २४६½॥

तेजसा तु तदा व्याप्तं दुर्निरीक्ष्यं समन्ततः॥ २४७॥
पुनरुद्विग्नहृदयः किमेतदिति चिन्तयम्।

वे अपने तेजसे सब ओर व्याप्त हो रहे थे, अतः उनकी ओर देखना कठिन था। तब मैं उद्विग्नचित्त होकर फिर इस चिन्तामें पड़ गया कि यह क्या है?॥ २४७½॥

मुहूर्तमिव तत् तेजो व्याप्य सर्वा दिशो दश॥ २४८॥
प्रशान्तं दिक्षु सर्वासु देवदेवस्य मायया।

इतनेहीमें एक मुहूर्त बीतते-बीतते वह तेज सम्पूर्ण दिशाओंमें फैलकर देवाधिदेव महादेवजीकी मायासे सब ओर शान्त हो गया॥ २४८½॥

अथापश्यं स्थितं स्थाणुं भगवन्तं महेश्वरम्॥ २४९॥
नीलकण्ठं महात्मानमसक्तं तेजसां निधिम्।
अष्टादशभुजं स्थाणुं सर्वाभरणभूषितम्॥ २५०॥

तत्पश्चात् मैंने देखा, भगवान् महेश्वर स्थिर भावसे खड़े हैं। उनके कण्ठमें नील चिह्न शोभा पा रहा था। वे महात्मा कहीं भी आसक्त नहीं थे। वे तेजकी निधि जान पड़ते थे। उनके अठारह भुजाएँ थीं। वे भगवान् स्थाणु समस्त आभूषणोंसे विभूषित थे॥

शुक्लाम्बरधरं देवं शुक्लमाल्यानुलेपनम्।
शुक्लध्वजमनाधृष्यं शुक्लयज्ञोपवीतिनम्॥ २५१॥

महादेवजीने श्वेत वस्त्र धारण कर रखा था। उनके श्रीअंगोंमें श्वेत चन्दनका अनुलेप लगा था। उनकी ध्वजा भी श्वेत वर्णकी ही थी। वे श्वेत रंगका यज्ञोपवीत धारण करनेवाले और अजेय थे॥ २५१॥

गायद्भिर्नृत्यमानैश्च वादयद्भिश्च सर्वशः।
वृतं पार्श्वचरैर्दिव्यैरात्मतुल्यपराक्रमैः॥ २५२॥

वे अपने ही समान पराक्रमी दिव्य पार्षदोंसे घिरे हुए थे। उनके वे पार्षद सब ओर गाते, नाचते और बाजे बजाते थे॥ २५२॥

बालेन्दुमुकुटं पाण्डुं शरच्चन्द्रमिवोदितम्।
त्रिभिर्नेत्रैः कृतोद्योतं त्रिभिः सूर्यैरिवोदितैः॥ २५३॥

भगवान् शिवके मस्तकपर बाल चन्द्रमाका मुकुट सुशोभित था। उनकी अंग-कान्ति श्वेतवर्णकी थी। वे शरद्-ऋतुके पूर्ण चन्द्रमाके समान उदित हुए थे। उनके तीनों नेत्रोंसे ऐसा प्रकाश-पुञ्ज छा रहा था मानो तीन सूर्य उदित हुए हों॥ २५३॥

(सर्वविद्याधिपं देवं शरच्चन्द्रसमप्रभम्।
नयनाह्लादसौभाग्यमपश्यं परमेश्वरम्॥)

जो सम्पूर्ण विद्याओंके अधिपति, शरत्कालके चन्द्रमाकी भाँति कान्तिमान् तथा नेत्रोंके लिये परमानन्द-दायक सौभाग्य प्रदान करनेवाले थे। इस प्रकार मैंने परमेश्वर महादेवजीके मनोहर रूपको देखा॥

अशोभतास्य देवस्य माला गात्रे सितप्रभे।
जातरूपमयैः पद्मैर्ग्रथिता रत्नभूषिता॥ २५४॥

भगवान्के उज्ज्वल प्रभावाले गौर विग्रहपर सुवर्णमय कमलोंसे गुँथी हुई रत्नभूषित माला बड़ी शोभा पा रही थी॥ २५४॥

मूर्तिमन्ति तथास्त्राणि सर्वतेजोमयानि च।
मया दृष्टानि गोविन्द भवस्यामिततेजसः॥ २५५॥

गोविन्द! मैंने अमित तेजस्वी महादेवजीके सम्पूर्ण तेजोमय आयुधोंको मूर्तिमान् होकर उनकी सेवामें उपस्थित देखा था॥ २५५॥

इन्द्रायुधसवर्णाभं धनुस्तस्य महात्मनः।
पिनाकमिति विख्यातमभवत् पन्नगो महान्॥ २५६॥

उन महात्मा रुद्रदेवका इन्द्रधनुषके समान रंगवाला जो पिनाक नामसे विख्यात धनुष है, वह विशाल सर्पके रूपमें प्रकट हुआ था॥ २५६॥

सप्तशीर्षो महाकायस्तीक्ष्णदंष्ट्रो विषोल्बणः।
ज्यावेष्टितमहाग्रीवः स्थितः पुरुषविग्रहः॥ २५७॥

उसके सात फन थे। उसका डीलडौल भी विशाल था। तीखी दाढ़ें दिखायी देती थीं। वह अपने प्रचण्ड विषके कारण मतवाला हो रहा था। उसकी विशाल ग्रीवा प्रत्यञ्चासे आवेष्टित थी। वह पुरुष-शरीर धारण करके खड़ा था॥ २५७॥

शरश्च सूर्यसंकाशः कालानलसमद्युतिः।
एतदस्त्रं महाघोरं दिव्यं पाशुपतं महत्॥ २५८॥

भगवान्का जो बाण था वह सूर्य और प्रलयकालीन अग्निके समान प्रचण्ड तेजसे प्रकाशित होता था। यही अत्यन्त भयंकर एवं महान् दिव्य पाशुपत अस्त्र था॥

अद्वितीयमनिर्देश्यं सर्वभूतभयावहम्।
सस्फुलिङ्गं महाकायं विसृजन्तमिवानलम्॥ २५९॥

उसके जोड़का दूसरा अस्त्र नहीं था। समस्त

प्राणियोंको भय देनेवाला वह विशालकाय अस्त्र अनिर्वचनीय जान पड़ता था और अपने मुखसे चिनगारियोंसहित अग्निकी वर्षा कर रहा था॥ २५९॥

एकपादं महादंष्ट्रं सहस्त्रशिरसोदरम्।
सहस्त्रभुजजिह्वाक्षमुद्गिरन्तमिवानलम् ॥ २६०॥

वह भी सर्पके ही आकारमें दृष्टिगोचर होता था। उसके एक पैर, बहुत बड़ी दाढ़ें, सहस्रों सिर, सहस्रों पेट, सहस्रों भुजा, सहस्रों जिह्वा और सहस्रों नेत्र थे। वह आग-सा उगल रहा था॥ २६०॥

ब्राह्मान्नारायणाच्चैन्द्रादाग्नेयादपि वारुणात्।
यद् विशिष्टं महाबाहो सर्वशस्त्रविघातनम्॥ २६१॥

महाबाहो! सम्पूर्ण शस्त्रोंका विनाश करनेवाला वह पाशुपत अस्त्र ब्राह्म, नारायण, ऐन्द्र, आग्नेय और वारुण अस्त्रसे भी बढ़कर शक्तिशाली था॥ २६१॥

येन तत् त्रिपुरं दग्ध्वा क्षणाद् भस्मीकृतं पुरा।
शरेणैकेन गोविन्द महादेवेन लीलया॥ २६२॥

गोविन्द! उसीके द्वारा महादेवजीने लीलापूर्वक एक ही बाण मारकर क्षणभरमें दैत्योंके तीनों पुरोंको जलाकर भस्म कर दिया था॥ २६२॥

निर्दहेत च यत् कृत्स्नं त्रैलोक्यं सचराचरम्।
महेश्वरभुजोत्सृष्टं निमेषार्धान्न संशयः॥ २६३॥

भगवान् महेश्वरकी भुजाओंसे छूटनेपर वह अस्त्र चराचर प्राणियोंसहित सम्पूर्ण त्रिलोकीको आधे निमेषमें ही भस्म कर देता है—इसमें संशय नहीं है॥ २६३॥

नावध्यो यस्य लोकेऽस्मिन् ब्रह्मविष्णुसुरेष्वपि।
तदहं दृष्टवांस्तत्र आश्चर्यमिदमुत्तमम्॥ २६४॥
गुह्यमस्त्रवरं नान्यत् तत्तुल्यमधिकं हि वा।

इस लोकमें जिस अस्त्रके लिये ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओंमेंसे भी कोई अवध्य नहीं है, उस परम उत्तम आश्चर्यमय पाशुपतास्त्रको मैंने यहाँ प्रत्यक्ष देखा था। वह श्रेष्ठ अस्त्र परम गोपनीय है। उसके समान अथवा उससे बढ़कर भी दूसरा कोई श्रेष्ठ अस्त्र नहीं है॥ २६४½॥

यत् तच्छूलमिति ख्यातं सर्वलोकेषु शूलिनः॥ २६५॥
दारयेद् यां महीं कृत्स्नां शोषयेद् वा महोदधिम्।
संहरेद् वा जगत् कृत्स्नं विसृष्टं शूलपाणिना॥ २६६॥

त्रिशूलधारी भगवान् शंकरका सम्पूर्ण लोकोंमें विख्यात जो वह त्रिशूल नामक अस्त्र है वह शूलपाणि शंकरके द्वारा छोड़े जानेपर इस सारी पृथ्वीको विदीर्ण कर सकता है, महासागरको सुखा सकता है अथवा समस्त संसारका संहार कर सकता है॥ २६५-२६६॥

यौवनाश्वो हतो येन मान्धाता सबलः पुरा।
चक्रवर्ती महातेजास्त्रिलोकविजयी नृपः॥ २६७॥
महाबलो महावीर्यः शक्रतुल्यपराक्रमः।
करस्थेनैव गोविन्द लवणस्येह रक्षसः॥ २६८॥

श्रीकृष्ण! पूर्वकालमें त्रिलोकविजयी, महातेजस्वी, महाबली, महान् वीर्यशाली, इन्द्रतुल्य पराक्रमी चक्रवर्ती राजा मान्धाता लवणासुरके द्वारा प्रयुक्त हुए उस शूलसे ही सेनासहित नष्ट हो गये थे। अभी वह अस्त्र उस असुरके हाथसे छूटने भी नहीं पाया था कि राजाका सर्वनाश हो गया॥ २६७-२६८॥

तच्छूलमतितीक्ष्णाग्रं सुभीमं लोमहर्षणम्।
त्रिशिखां भ्रुकुटिं कृत्वा तर्जमानमिव स्थितम्॥ २६९॥

उस शूलका अग्रभाग अत्यन्त तीक्ष्ण है। वह बहुत ही भयंकर और रोमाञ्चकारी है, मानो वह अपनी भौंहें तीन जगहसे टेढ़ी करके विरोधीको डाँट बता रहा हो, ऐसा जान पड़ता है॥ २६९॥

विधूमं सार्चिषं कृष्णं कालसूर्यमिवोदितम्।
सर्पहस्तमनिर्देश्यं पाशहस्तमिवान्तकम्॥ २७०॥
दृष्टवानस्मि गोविन्द तदस्त्रं रुद्रसंनिधौ।

गोविन्द! धूमरहित आगकी ज्वालाओंसहित वह काला त्रिशूल प्रलयकालके सूर्यके समान उदित हुआ था; और हाथमें सर्प लिये अवर्णनीय शक्तिशाली पाशधारी यमराजके समान जान पड़ता था। भगवान् रुद्रके निकट मैंने उसका भी दर्शन किया था॥ २७०½॥

परशुस्तीक्ष्णधारश्च दत्तो रामस्य यः पुरा॥ २७१॥
महादेवेन तुष्टेन क्षत्रियाणां क्षयंकरः।
कार्तवीर्यो हतो येन चक्रवर्ती महामृधे॥ २७२॥

पूर्वकालमें महादेवजीने संतुष्ट होकर परशुरामको जिसका दान किया था और जिसके द्वारा महासमरमें चक्रवर्ती राजा कार्तवीर्य अर्जुन मारा गया था, क्षत्रियोंका विनाश करनेवाला वह तीखी धारसे युक्त परशु मुझे भगवान् रुद्रके निकट दिखायी दिया था॥ २७१-२७२॥

त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवी येन निःक्षत्रिया कृता।
जामदग्न्येन गोविन्द रामेणाक्लिष्टकर्मणा॥ २७३॥

गोविन्द! अनायास ही महान् कर्म करनेवाले जमदग्निनन्दन परशुरामने उसी परशुके द्वारा इक्कीस बार इस पृथ्वीको क्षत्रियोंसे शून्य कर दिया था॥ २७३॥

दीप्तधारः सुरौद्रास्यः सर्पकण्ठाग्रधिष्ठितः।
अभवच्छूलिनोऽभ्याशे दीप्तवह्निशतोपमः॥ २७४॥

उसकी धार चमक रही थी, उसका मुखभाग बड़ा भयंकर जान पड़ता था। वह सर्पयुक्त कण्ठवाले महादेवजीके कण्ठके अग्रभागमें स्थित था। इस प्रकार शूलधारी भगवान् शिवके समीप वह परशु सैकड़ों प्रज्वलित अग्नियोंके समान देदीप्यमान होता था॥ २७४॥

असंख्येयानि चास्त्राणि तस्य दिव्यानि धीमतः।
प्राधान्यतो मयैतानि कीर्तितानि तवानघ॥ २७५॥

निष्पाप श्रीकृष्ण! बुद्धिमान् भगवान् शिवके असंख्य दिव्यास्त्र हैं। मैंने यहाँ आपके सामने इन प्रमुख अस्त्रोंका वर्णन किया है॥ २७५॥

सव्यदेशे तु देवस्य ब्रह्मा लोकपितामहः।
दिव्यं विमानमास्थाय हंसयुक्तं मनोजवम्॥ २७६॥
वामपार्श्वगतश्चापि तथा नारायणः स्थितः।
वैनतेयं समारुह्य शंखचक्रगदाधरः॥ २७७॥

उस समय महादेवजीके दाहिने भागमें लोकपितामह ब्रह्मा मनके समान वेगशाली हंसयुक्त दिव्य विमानपर बैठे हुए शोभा पा रहे थे और बायें भागमें शंख, चक्र और गदा धारण किये भगवान् नारायण गरुडपर विराजमान थे॥ २७६-२७७॥

स्कन्दो मयूरमास्थाय स्थितो देव्याः समीपतः।
शक्तिघण्टे समादाय द्वितीय इव पावकः॥ २७८॥

कुमार स्कन्द मोरपर चढ़कर हाथमें शक्ति और घंटा लिये पार्वतीदेवीके पास ही खड़े थे। वे दूसरे अग्निके समान प्रकाशित हो रहे थे॥ २७८॥

पुरस्ताच्चैव देवस्य नन्दिं पश्याम्यवस्थितम्।
शूलं विष्टभ्य तिष्ठन्तं द्वितीयमिव शंकरम्॥ २७९॥

महादेवजीके आगे मैंने नन्दीको उपस्थित देखा, जो शूल उठाये दूसरे शंकरके समान खड़े थे॥ २७९॥

स्वायम्भुवाद्या मनवो भृग्वाद्या ऋषयस्तथा।
शक्राद्या देवताश्चैव सर्व एव समभ्ययुः॥ २८०॥

स्वायम्भुव आदि मनु, भृगु आदि ऋषि तथा इन्द्र आदि देवता—ये सभी वहाँ पधारे थे॥ २८०॥

सर्वभूतगणाश्चैव मातरो विविधाः स्थिताः।
तेऽभिवाद्य महात्मानं परिवार्य समन्ततः॥ २८१॥
अस्तुवन् विविधैः स्तोत्रैर्महादेवं सुरास्तदा।

समस्त भूतगण और नाना प्रकारकी मातृकाएँ उपस्थित थीं। वे सब देवता महात्मा महादेवजीको चारों ओरसे घेरकर नाना प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति कर रहे थे॥ २८१½॥

ब्रह्मा भवं तदास्तौषीद् रथन्तरमुदीरयन्॥ २८२॥
ज्येष्ठसाम्ना च देवेशं जगौ नारायणस्तदा॥ २८३॥

ब्रह्माजीने रथन्तर सामका उच्चारण करके उस समय भगवान् शंकरकी स्तुति की। नारायणने ज्येष्ठसामद्वारा देवेश्वर शिवकी महिमाका गान किया॥

गृणन् ब्रह्म परं शक्रः शतरुद्रियमुत्तमम्।
ब्रह्मा नारायणश्चैव देवराजश्च कौशिकः॥ २८४॥
अशोभन्त महात्मानस्त्रयस्त्रय इवाग्नयः।

इन्द्रने उत्तम शतरुद्रियका सस्वर पाठ करते हुए परब्रह्म शिवका स्तवन किया। ब्रह्मा, नारायण और देवराज इन्द्र—ये तीनों महात्मा तीन अग्नियोंके समान शोभा पा रहे थे॥ २८४½॥

तेषां मध्यगतो देवो रराज भगवान् शिवः॥ २८५॥
शरदभ्रविनिर्मुक्तः परिधिस्थ इवांशुमान्।

इन तीनोंके बीचमें विराजमान भगवान् शिव शरद्-ऋतुके बादलोंके आवरणसे मुक्त हो परिधि (घेरे)-में स्थित हुए सूर्यदेवके समान शोभा पा रहे थे॥ २८५½॥

अयुतानि च चन्द्रार्कानपश्यं दिवि केशव॥ २८६॥
ततोऽहमस्तुवं देवं विश्वस्य जगतः पतिम्।

केशव! उस समय मैंने आकाशमें सहस्रों चन्द्रमा और सूर्य देखे। तदनन्तर मैं सम्पूर्ण जगत्के पालक महादेवजीकी स्तुति करने लगा॥ २८६½॥

उपमन्युरुवाच

नमो देवाधिदेवाय महादेवाय ते नमः॥ २८७॥
शक्ररूपाय शक्राय शक्रवेषधराय च।
नमस्ते वज्रहस्ताय पिङ्गलायारुणाय च॥ २८८॥

उपमन्यु बोले—प्रभो! आप देवताओंके भी अधिदेवता हैं। आपको नमस्कार है। आप ही महान् देवता हैं, आपको नमस्कार है। इन्द्र आपके ही रूप हैं। आप ही साक्षात् इन्द्र हैं तथा आप इन्द्रका-सा वेश धारण करनेवाले हैं। इन्द्रके रूपमें आप ही अपने हाथमें वज्र लिये रहते हैं। आपका वर्ण पिंगल और अरुण है, आपको नमस्कार है॥ २८७-२८८॥

पिनाकपाणये नित्यं शङ्खशूलधराय च।
नमस्ते कृष्णवासाय कृष्णकुञ्चितमूर्धजे॥ २८९॥

आपके हाथमें पिनाक शोभा पाता है। आप सदा शंख और त्रिशूल धारण करते हैं। आपके वस्त्र काले हैं तथा आप मस्तकपर काले घुँघराले केश धारण करते हैं, आपको नमस्कार है॥ २८९॥

कृष्णाजिनोत्तरीयाय कृष्णाष्टमिरताय च।
शुक्लवर्णाय शुक्लाय शुक्लाम्बरधराय च॥ २९०॥

काला मृगचर्म आपका दुपट्टा है। आप श्रीकृष्णाष्टमीव्रतमें तत्पर रहते हैं। आपका वर्ण शुक्ल है। आप स्वरूपसे भी शुक्ल (शुद्ध) हैं तथा आप श्वेत वस्त्र धारण करते हैं। आपको नमस्कार है॥ २९०॥

शुक्लभस्मावलिप्ताय शुक्लकर्मरताय च।
नमोऽस्तु रक्तवर्णाय रक्ताम्बरधराय च॥ २९१॥

आप अपने सारे अंगोंमें श्वेत भस्म लपेटे रहते हैं। विशुद्ध कर्ममें अनुरक्त हैं। कभी-कभी आप रक्त वर्णके हो जाते हैं और लाल वस्त्र ही धारण कर लेते हैं। आपको नमस्कार है॥ २९१॥

रक्तध्वजपताकाय रक्तस्रगनुलेपिने।
नमोऽस्तु पीतवर्णाय पीताम्बरधराय च॥ २९२॥

रक्ताम्बरधारी होनेपर आप अपनी ध्वजा-पताका भी लाल ही रखते हैं। लाल फूलोंकी माला पहनकर अपने श्रीअंगोंमें लाल चन्दनका ही लेप लगाते हैं। किसी समय आपकी अंगकान्ति पीले रंगकी हो जाती है। ऐसे समयमें आप पीताम्बर धारण करते हैं। आपको नमस्कार है॥ २९२॥

नमोऽस्तूच्छ्रितच्छत्राय किरीटवरधारिणे।
अर्धहारार्धकेयूर अर्धकुण्डलकर्णिने॥ २९३॥

आपके मस्तकपर ऊँचा छत्र तना है। आप सुन्दर किरीट धारण करते हैं। अर्द्धनारीश्वररूपमें आपके आधे अंगमें ही हार, आधेमें ही केयूर और आधे अंगके ही कानमें कुण्डल शोभा पाता है। आपको नमस्कार है॥ २९३॥

नमः पवनवेगाय नमो देवाय वै नमः।
सुरेन्द्राय मुनीन्द्राय महेन्द्राय नमोऽस्तु ते॥ २९४॥

आप वायुके समान वेगशाली हैं। आपको नमस्कार है। आप ही मेरे आराध्यदेव हैं। आपको बारंबार नमस्कार है। आप ही सुरेन्द्र, मुनीन्द्र और महेन्द्र हैं। आपको नमस्कार है॥ २९४॥

नमः पद्मार्धमालाय उत्पलैर्मिश्रिताय च।
अर्धचन्दनलिप्ताय अर्धस्रगनुलेपिने॥ २९५॥

आप अपने आधे अंगको कमलोंकी मालासे अलंकृत करते हैं और आधेमें उत्पलोंसे विभूषित होते हैं। आधे अंगमें चन्दनका लेप लगाते हैं तो आधे शरीरमें फूलोंका गजरा और सुगन्धित अंगराग धारण करते हैं। ऐसे अर्द्धनारीश्वररूपमें आपको नमस्कार है॥ २९५॥

नम आदित्यवक्त्राय आदित्यनयनाय च।
नम आदित्यवर्णाय आदित्यप्रतिमाय च॥ २९६॥

आपके मुख सूर्यके समान तेजस्वी हैं। सूर्य आपके नेत्र हैं। आपकी अंगकान्ति भी सूर्यके ही समान है तथा आप अधिक सादृश्यके कारण सूर्यकी प्रतिमा-से जान पड़ते हैं॥ २९६॥

नमः सोमाय सौम्याय सौम्यवक्त्रधराय च।
सौम्यरूपाय मुख्याय सौम्यदंष्ट्राविभूषिणे॥ २९७॥

आप सोमस्वरूप हैं। आपकी आकृति बड़ी सौम्य है। आप सौम्य मुख धारण करते हैं। आपका रूप भी सौम्य है। आप प्रमुख देवता हैं और सौम्य दन्तावलीसे विभूषित होते हैं। आपको नमस्कार है॥ २९७॥

नमः श्यामाय गौराय अर्धपीतार्धपाण्डवे।
नारीनरशरीराय स्त्रीपुंसाय नमोऽस्तु ते॥ २९८॥

आप हरिहररूप होनेके कारण आधे शरीरसे साँवले और आधेसे गोरे हैं। आधे शरीरमें पीताम्बर धारण करते हैं और आधेमें श्वेत वस्त्र पहनते हैं। आपको नमस्कार है। आपके आधे शरीरमें नारीके अवयव हैं और आधेमें नरके। आप स्त्री-पुरुषरूप हैं। आपको नमस्कार है॥ २९८॥

नमो वृषभवाहाय गजेन्द्रगमनाय च।
दुर्गमाय नमस्तुभ्यमगम्यगमनाय च॥ २९९॥

आप कभी बैलपर सवार होते हैं और कभी गजराजकी पीठपर बैठकर यात्रा करते हैं। आप दुर्गम हैं। आपको नमस्कार है। जो दूसरोंके लिये अगम्य है, वहाँ भी आपकी गति है। आपको नमस्कार है॥ २९९॥

नमोऽस्तु गणगीताय गणवृन्दरताय च।
गणानुयातमार्गाय गणनित्यव्रताय च॥ ३००॥

प्रमथगण आपकी महिमाका गान करते हैं। आप अपने पार्षदोंकी मण्डलीमें रत रहते हैं। आपके प्रत्येक मार्गपर प्रमथगण आपके पीछे-पीछे चलते हैं। आपकी सेवा ही गणोंका नित्य-व्रत है। आपको नमस्कार है॥

नमः श्वेताभ्रवर्णाय संध्यारागप्रभाय च।
अनुद्दिष्टाभिधानाय स्वरूपाय नमोऽस्तु ते॥ ३०१॥

आपकी कान्ति श्वेत बादलोंके समान है। आपकी प्रभा संध्याकालीन अरुणरागके समान है। आपका कोई निश्चित नाम नहीं है। आप सदा स्वरूपमें ही स्थित रहते हैं। आपको नमस्कार है॥ ३०१॥

नमो रक्ताग्रवासाय रक्तसूत्रधराय च।
रक्तमालाविचित्राय रक्ताम्बरधराय च॥ ३०२॥

आपका सुन्दर वस्त्र लाल रंगका है। आप लाल सूत्र धारण करते हैं। लाल रंगकी मालासे आपकी विचित्र शोभा होती है। आप रक्त वस्त्रधारी रुद्रदेवको नमस्कार है॥ ३०२॥

मणिभूषितमूर्धाय नमश्चन्द्रार्धभूषिणे।
विचित्रमणिमूर्धाय कुसुमाष्टधराय च॥ ३०३॥

आपका मस्तक दिव्य मणिसे विभूषित है। आप अपने ललाटमें अर्द्धचन्द्रका आभूषण धारण करते हैं। आपका सिर विचित्र मणिकी प्रभासे प्रकाशमान है और आप आठ पुष्प धारण करते हैं॥ ३०३॥

नमोऽग्निमुखनेत्राय सहस्रशशिलोचने।
अग्निरूपाय कान्ताय नमोऽस्तु गहनाय च॥ ३०४॥

आपके मुख और नेत्रमें अग्निका निवास है। आपके नेत्र सहस्रों चन्द्रमाओंके समान प्रकाशित हैं। आप अग्निस्वरूप, कमनीयविग्रह और दुर्गम गहन (वन) रूप हैं। आपको नमस्कार है॥ ३०४॥

खचराय नमस्तुभ्यं गोचराभिरताय च।
भूचराय भुवनाय अनन्ताय शिवाय च॥ ३०५॥

चन्द्रमा और सूर्यके रूपमें आप आकाशचारी देवताको नमस्कार है। जहाँ गौएँ चरती हैं उस स्थानसे आप विशेष प्रेम रखते हैं। आप पृथ्वीपर विचरनेवाले और त्रिभुवनरूप हैं। अनन्त एवं शिवस्वरूप हैं। आपको नमस्कार है॥ ३०५॥

नमो दिग्वाससे नित्यमधिवाससुवाससे।
नमो जगन्निवासाय प्रतिपत्तिसुखाय च॥ ३०६॥

आप दिगम्बर हैं। आपको नमस्कार है। आप सबके आवास-स्थान और सुन्दर वस्त्र धारण करनेवाले हैं। सम्पूर्ण जगत् आपमें ही निवास करता है। आपको सम्पूर्ण सिद्धियोंका सुख सुलभ है। आपको नमस्कार है॥ ३०६॥

नित्यमुद्बद्धमुकुटे महाकेयूरधारिणे।
सर्पकण्ठोपहाराय विचित्राभरणाय च॥ ३०७॥

आप मस्तकपर सदा मुकुट बाँधे रहते हैं। भुजाओंमें विशाल केयूर धारण करते हैं। आपके कण्ठमें सर्पोंका हार शोभा पाता है तथा आप विचित्र आभूषणोंसे विभूषित होते हैं। आपको नमस्कार है॥ ३०७॥

नमस्त्रिनेत्रनेत्राय सहस्रशतलोचने।
स्त्रीपुंसाय नपुंसाय नमः सांख्याय योगिने॥ ३०८॥

सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि—ये तीन नेत्ररूप होकर आपको त्रिनेत्रधारी बना देते हैं। आपके लाखों नेत्र हैं। आप स्त्री हैं, पुरुष हैं और नपुंसक हैं। आप ही सांख्यवेत्ता और योगी हैं। आपको नमस्कार है॥ ३०८॥

शंयोरभिस्त्रवन्ताय अथर्वाय नमो नमः।
नमः सर्वार्तिनाशाय नमः शोकहराय च॥ ३०९॥

आप यज्ञपूरक 'शंयु' नामक देवताके प्रसादरूप हैं और अथर्ववेदस्वरूप हैं। आपको बारंबार नमस्कार है। जो सबकी पीड़ाका नाश करनेवाले और शोकहारी हैं, उन्हें नमस्कार है, नमस्कार है॥ ३०९॥

नमो मेघनिनादाय बहुमायाधराय च।
बीजक्षेत्राभिपालाय स्रष्ट्राय नमो नमः॥ ३१०॥

जो मेघके समान गम्भीर नाद करनेवाले तथा बहुसंख्यक मायाओंके आधार हैं, जो बीज और क्षेत्रका पालन करते हैं और जगत्की सृष्टि करनेवाले हैं, उन भगवान् शिवको बारंबार नमस्कार है॥ ३१०॥

नमः सुरासुरेशाय विश्वेशाय नमो नमः।
नमः पवनवेगाय नमः पवनरूपिणे॥ ३११॥

आप देवताओं और असुरोंके स्वामी हैं। आपको नमस्कार है। आप सम्पूर्ण विश्वके ईश्वर हैं। आपको बारंबार नमस्कार है। आप वायुके समान वेगशाली तथा वायुरूप हैं। आपको नमस्कार है, नमस्कार है॥ ३११॥

नमः काञ्चनमालाय गिरिमालाय वै नमः।
नमः सुरारिमालाय चण्डवेगाय वै नमः॥ ३१२॥

आप सुवर्णमालाधारी तथा पर्वत-मालाओंमें विहार करनेवाले हैं। देवशत्रुओंके मुण्डोंकी माला धारण करनेवाले प्रचण्ड वेगशाली आपको नमस्कार है, नमस्कार है॥ ३१२॥

ब्रह्मशिरोपहर्ताय महिषघ्नाय वै नमः।
नमः स्त्रीरूपधाराय यज्ञविध्वंसनाय च॥ ३१३॥

ब्रह्माजीके मस्तकका उच्छेद और महिषका विनाश करनेवाले आपको नमस्कार है। आप स्त्रीरूप धारण करनेवाले तथा यज्ञके विध्वंसक हैं। आपको नमस्कार है॥ ३१३॥

नमस्त्रिपुरहर्ताय यज्ञविध्वंसनाय च।
नमः कामाङ्गनाशाय कालदण्डधराय च॥ ३१४॥

असुरोंके तीनों पुरोंका विनाश और दक्ष-यज्ञका विध्वंस करनेवाले आपको नमस्कार है। कामके शरीरका नाश तथा कालदण्डको धारण करनेवाले आपको नमस्कार है॥ ३१४॥

नमः स्कन्दविशाखाय ब्रह्मदण्डाय वै नमः।
नमो भवाय शर्वाय विश्वरूपाय वै नमः॥ ३१५॥

स्कन्द और विशाखरूप आपको नमस्कार है। ब्रह्मदण्डस्वरूप आपको नमस्कार है। भव (उत्पादक) और शर्व (संहारक)-रूप आपको नमस्कार है। विश्वरूपधारी प्रभुको नमस्कार है॥ ३१५॥

ईशानाय भवघ्नाय नमोऽस्त्वन्धकघातिने।
नमो विश्वाय मायाय चिन्त्याचिन्त्याय वै नमः॥ ३१६॥

आप सबके ईश्वर, संसार-बन्धनका नाश करनेवाले तथा अन्धकासुरके घातक हैं। आपको नमस्कार है। आप सम्पूर्ण मायास्वरूप तथा चिन्त्य और अचिन्त्यरूप हैं। आपको नमस्कार है॥ ३१६॥

त्वं नो गतिश्च श्रेष्ठश्च त्वमेव हृदयं तथा।
त्वं ब्रह्मा सर्वदेवानां रुद्राणां नीललोहितः॥ ३१७॥

आप ही हमारी गति हैं, श्रेष्ठ हैं और आप ही हमारे हृदय हैं। आप सम्पूर्ण देवताओंमें ब्रह्मा तथा रुद्रोंमें नीललोहित हैं॥ ३१७॥

आत्मा च सर्वभूतानां सांख्ये पुरुष उच्यते।
ऋषभस्त्वं पवित्राणां योगिनां निष्कलः शिवः॥ ३१८॥

आप समस्त प्राणियोंमें आत्मा और सांख्यशास्त्रमें पुरुष कहलाते हैं। आप पवित्रोंमें ऋषभ तथा योगियोंमें निष्कल शिवरूप हैं॥ ३१८॥

गृहस्थस्त्वमाश्रमिणामीश्वराणां महेश्वरः।
कुबेरः सर्वयक्षाणां क्रतूनां विष्णुरुच्यते॥ ३१९॥

आप आश्रमियोंमें गृहस्थ, ईश्वरोंमें महेश्वर, सम्पूर्ण यक्षोंमें कुबेर तथा यज्ञोंमें विष्णु कहलाते हैं॥ ३१९॥

पर्वतानां भवान् मेरुर्नक्षत्राणां च चन्द्रमाः।
वसिष्ठस्त्वमृषीणां च ग्रहाणां सूर्य उच्यते॥ ३२०॥

पर्वतोंमें आप मेरु हैं। नक्षत्रोंमें चन्द्रमा हैं। ऋषियोंमें वसिष्ठ हैं तथा ग्रहोंमें सूर्य कहलाते हैं॥ ३२०॥

आरण्यानां पशूनां च सिंहस्त्वं परमेश्वरः।
ग्राम्याणां गोवृषश्चासि भवाँल्लोकप्रपूजितः॥ ३२१॥

आप जंगली पशुओंमें सिंह हैं। आप ही परमेश्वर हैं। ग्रामीण पशुओंमें आप ही लोकसम्मानित साँड़ हैं॥ ३२१॥

आदित्यानां भवान् विष्णुर्वसूनां चैव पावकः।
पक्षिणां वैनतेयस्त्वमनन्तो भुजगेषु च॥ ३२२॥

आप ही आदित्योंमें विष्णु हैं। वसुओंमें अग्नि हैं। पक्षियोंमें आप विनतानन्दन गरुड और सर्पोंमें अनन्त (शेषनाग) हैं॥ ३२२॥

सामवेदश्च वेदानां यजुषां शतरुद्रियम्।
सनत्कुमारो योगानां सांख्यानां कपिलो ह्यसि॥ ३२३॥

आप वेदोंमें सामवेद, यजुर्वेदके मन्त्रोंमें शतरुद्रिय, योगियोंमें सनत्कुमार और सांख्यवेत्ताओंमें कपिल हैं॥

शक्रोऽसि मरुतां देव पितॄणां हव्यवाडसि।
ब्रह्मलोकश्च लोकानां गतीनां मोक्ष उच्यसे॥ ३२४॥

देव! आप मरुद्गणोंमें इन्द्र, पितरोंमें हव्यवाहन अग्नि, लोकोंमें ब्रह्मलोक और गतियोंमें मोक्ष कहलाते हैं॥

क्षीरोदः सागराणां च शैलानां हिमवान् गिरिः।
वर्णानां ब्राह्मणश्चासि विप्राणां दीक्षितो द्विजः॥ ३२५॥

आप समुद्रोंमें क्षीरसागर, पर्वतोंमें हिमालय, वर्णोंमें ब्राह्मण और ब्राह्मणोंमें भी दीक्षित ब्राह्मण (यज्ञकी दीक्षा लेनेवाले) हैं॥ ३२५॥

आदिस्त्वमसि लोकानां संहर्ता काल एव च।
यच्चान्यदपि लोके वै सर्वं तेजोऽधिकं स्मृतम्॥ ३२६॥
तत् सर्वं भगवानेव इति मे निश्चिता मतिः।

आप ही सम्पूर्ण लोकोंके आदि हैं। आप ही संहार करनेवाले काल हैं। संसारमें और भी जो-जो वस्तुएँ सर्वथा तेजमें बढ़ी-चढ़ी हैं, वे सभी आप भगवान् ही हैं—यह मेरी निश्चित धारणा है॥ ३२६½॥

नमस्ते भगवन् देव नमस्ते भक्तवत्सल॥ ३२७॥
योगेश्वर नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वसम्भव।

भगवन्! देव! आपको नमस्कार है। भक्तवत्सल! आपको नमस्कार है। योगेश्वर! आपको नमस्कार है। विश्वकी उत्पत्तिके कारण! आपको नमस्कार है॥ ३२७½॥

प्रसीद मम भक्तस्य दीनस्य कृपणस्य च॥ ३२८॥
अनैश्वर्येण युक्तस्य गतिर्भव सनातन।

सनातन परमेश्वर! आप मुझ दीन-दुःखी भक्तपर प्रसन्न होइये। मैं ऐश्वर्यसे रहित हूँ। आप ही मेरे आश्रयदाता हों॥ ३२८½॥

यच्चापराधं कृतवानज्ञात्वा परमेश्वर॥ ३२९॥
मद्भक्त इति देवेश तत् सर्वं क्षन्तुमर्हसि।

परमेश्वर देवेश! मैंने अनजानमें जो अपराध किये हों, वह सब यह समझकर क्षमा कीजिये कि यह मेरा अपना ही भक्त है॥ ३२९½॥

मोहितश्चास्मि देवेश त्वया रूपविपर्ययात्॥ ३३०॥
नार्घ्यं ते न मया दत्तं पाद्यं चापि महेश्वर।

देवेश्वर! आपने अपना रूप बदलकर मुझे मोहमें डाल दिया। महेश्वर! इसीलिये न तो मैंने आपको अर्घ्य दिया और न पाद्य ही समर्पित किया॥ ३३०½॥

एवं स्तुत्वाहमीशानं पाद्यमर्घ्यं च भक्तितः॥ ३३१॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा सर्वं तस्मै न्यवेदयम्।

इस प्रकार भगवान् शिवकी स्तुति करके मैंने उन्हें भक्तिभावसे पाद्य और अर्घ्य निवेदन किया। फिर दोनों हाथ जोड़कर उन्हें अपना सब कुछ समर्पित कर दिया॥ ३३१½॥

ततः शीताम्बुसंयुक्ता दिव्यगन्धसमन्विता॥ ३३२॥
पुष्पवृष्टिः शुभा तात पपात मम मूर्धनि।
दुन्दुभिश्च तदा दिव्यस्ताडितो देवकिङ्करैः।
ववौ च मारुतः पुण्यः शुचिगन्धः सुखावहः॥ ३३३॥

तात! तदनन्तर मेरे मस्तकपर शीतल जल और दिव्य सुगन्धसे युक्त फूलोंकी शुभ वृष्टि होने लगी। उसी समय देवकिङ्करोंने दिव्य दुन्दुभि बजाना आरम्भ किया और पवित्र गन्धसे युक्त पुण्यमयी सुखद वायु चलने लगी॥ ३३२-३३३॥

ततः प्रीतो महादेवः सपत्नीको वृषध्वजः।
अब्रवीत् त्रिदशांस्तत्र हर्षयन्निव मां तदा॥ ३३४॥

तब पत्नीसहित प्रसन्न हुए वृषभध्वज महादेवजीने मेरा हर्ष बढ़ाते हुए-से वहाँ सम्पूर्ण देवताओंसे कहा—॥

पश्यध्वं त्रिदशाः सर्वे उपमन्योर्महात्मनः।
मयि भक्तिं परां नित्यमेकभावादवस्थिताम्॥ ३३५॥

'देवताओ! तुम सब लोग देखो कि महात्मा उपमन्युकी मुझमें नित्य एकभावसे बनी रहनेवाली कैसी उत्तम भक्ति है'॥ ३३५॥

एवमुक्तास्तदा कृष्ण सुरास्ते शूलपाणिना।
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे नमस्कृत्वा वृषध्वजम्॥ ३३६॥

श्रीकृष्ण! शूलपाणि महादेवजीके ऐसा कहनेपर वे सब देवता हाथ जोड़ उन वृषभध्वज शिवजीको नमस्कार करके बोले—॥ ३३६॥

भगवन् देवदेवेश लोकनाथ जगत्पते।
लभतां सर्वकामेभ्यः फलं त्वत्तो द्विजोत्तमः॥ ३३७॥

'भगवन्! देवदेवेश्वर! लोकनाथ! जगत्पते! ये द्विजश्रेष्ठ उपमन्यु आपसे अपनी सम्पूर्ण कामनाओंके अनुसार अभीष्ट फल प्राप्त करें'॥ ३३७॥

एवमुक्तस्ततः शर्वः सुरैर्ब्रह्मादिभिस्तथा।
आह मां भगवानीशः प्रहसन्निव शंकरः॥ ३३८॥

ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवताओंके ऐसा कहनेपर सबके ईश्वर और कल्याणकारी भगवान् शिवने मुझसे हँसते हुए-से कहा॥ ३३८॥

श्रीभगवानुवाच

वत्सोपमन्यो तुष्टोऽस्मि पश्य मां मुनिपुङ्गव।
दृढभक्तोऽसि विप्रर्षे मया जिज्ञासितो ह्यसि॥ ३३९॥

भगवान् शिवजी बोले—वत्स उपमन्यो! मैं तुमपर बहुत संतुष्ट हूँ। मुनिपुङ्गव! तुम मेरी ओर देखो। ब्रह्मर्षे! मुझमें तुम्हारी सुदृढ़ भक्ति है। मैंने तुम्हारी परीक्षा कर ली है॥ ३३९॥

अनया चैव भक्त्या ते अत्यर्थं प्रीतिमानहम्।
तस्मात् सर्वान् ददाम्यद्य कामांस्तव यथेप्सितान्॥ ३४०॥

तुम्हारी इस भक्तिसे मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई है, अतः मैं तुम्हें आज तुम्हारी सभी मनोवाञ्छित कामनाएँ पूर्ण किये देता हूँ॥ ३४०॥

एवमुक्तस्य चैवाथ महादेवेन धीमता।
हर्षादश्रूण्यवर्तन्त रोमहर्षस्त्वजायत॥ ३४१॥

परम बुद्धिमान् महादेवजीके इस प्रकार कहनेपर मेरे नेत्रोंसे हर्षके आँसू बहने लगे और सारे शरीरमें रोमाञ्च हो आया॥ ३४१॥

अब्रुवं च तदा देवं हर्षगद्गदया गिरा।
जानुभ्यामवनीं गत्वा प्रणम्य च पुनः पुनः॥ ३४२॥

तब मैंने धरतीपर घुटने टेककर भगवान्‌को बारंबार प्रणाम किया और हर्षगद्गद वाणीद्वारा महादेवजीसे इस प्रकार कहा—॥ ३४२॥

अद्य जातो ह्यहं देव सफलं जन्म चाद्य मे।
सुरासुरगुरुर्देवो यत् तिष्ठति ममाग्रतः॥ ३४३॥

'देव! आज ही मैंने वास्तवमें जन्म ग्रहण किया है। आज मेरा जन्म सफल हो गया; क्योंकि इस समय मेरे सामने देवताओं और असुरोंके गुरु आप साक्षात् महादेवजी खड़े हैं॥ ३४३॥

यं न पश्यन्ति चैवाद्धा देवा ह्यमितविक्रमम्।
तमहं दृष्टवान् देवं कोऽन्यो धन्यतरो मया॥ ३४४॥

'जिन अमित पराक्रमी महादेवजीको देवता भी सुगमतापूर्वक देख नहीं पाते हैं उन्हींका मुझे प्रत्यक्ष दर्शन मिला है; अतः मुझसे बढ़कर धन्यवादका भागी दूसरा कौन हो सकता है?॥ ३४४॥

एवं ध्यायन्ति विद्वांसः परं तत्त्वं सनातनम्।
तद् विशेषमिति ख्यातं यदजं ज्ञानमक्षरम्॥ ३४५॥

'अजन्मा, अविनाशी, ज्ञानमय तथा सर्वश्रेष्ठ रूपसे विख्यात जो सनातन परम तत्त्व है, उसका ज्ञानी पुरुष इसी रूपमें ध्यान करते हैं (जैसा कि आज मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ)॥ ३४५॥

स एष भगवान् देवः सर्वसत्त्वादिरव्ययः।
सर्वतत्त्वविधानज्ञः प्रधानपुरुषः परः॥ ३४६॥

'जो सम्पूर्ण प्राणियोंका आदिकारण, अविनाशी,

समस्त तत्त्वोंके विधानका ज्ञाता तथा प्रधान परम पुरुष है, वह ये भगवान् महादेवजी ही हैं॥ ३४६॥

योऽसृजद् दक्षिणादङ्गाद् ब्रह्माणं लोकसम्भवम्।
वामपार्श्वात् तथा विष्णुं लोकरक्षार्थमीश्वरः॥ ३४७॥

'इन्हीं जगदीश्वरने अपने दाहिने अङ्गसे लोकस्रष्टा ब्रह्माको और बायें अङ्गसे जगत्की रक्षाके लिये विष्णुको उत्पन्न किया है॥ ३४७॥

युगान्ते चैव सम्प्राप्ते रुद्रमीशोऽसृजत् प्रभुः।
स रुद्रः संहरन् कृत्स्नं जगत् स्थावरजङ्गमम्॥ ३४८॥

'प्रलयकाल प्राप्त होनेपर इन्हीं भगवान् शिवने रुद्रकी रचना की थी। वे ही रुद्र सम्पूर्ण चराचर जगत्का संहार करते हैं॥ ३४८॥

कालो भूत्वा महातेजाः संवर्तक इवानलः।
युगान्ते सर्वभूतानि ग्रसन्निव व्यवस्थितः॥ ३४९॥

'वे ही महातेजस्वी काल होकर कल्पके अन्तमें समस्त प्राणियोंको अपना ग्रास बनाते हुए-से प्रलयकालीन अग्निके सदृश स्थित होते हैं॥ ३४९॥

एष देवो महादेवो जगत् सृष्ट्वा चराचरम्।
कल्पान्ते चैव सर्वेषां स्मृतिमाक्षिप्य तिष्ठति॥ ३५०॥

'ये ही देवदेव महादेव चराचर जगत्की सृष्टि करके कल्पान्तमें सबकी स्मृति-शक्तिको मिटाकर स्वयं ही स्थित रहते हैं॥ ३५०॥

सर्वगः सर्वभूतात्मा सर्वभूतभवोद्भवः।
आस्ते सर्वगतो नित्यमदृश्यः सर्वदैवतैः॥ ३५१॥

'ये सर्वत्र गमन करनेवाले, सम्पूर्ण प्राणियोंके आत्मा तथा समस्त भूतोंके जन्म और वृद्धिके हेतु हैं। ये सर्वव्यापी परमेश्वर सदा सम्पूर्ण देवताओंसे अदृश्य रहते हैं॥ ३५१॥

यदि देयो वरो मह्यं यदि तुष्टोऽसि मे प्रभो।
भक्तिर्भवतु मे नित्यं त्वयि देव सुरेश्वर॥ ३५२॥

'प्रभो! यदि आप मुझपर संतुष्ट हैं और मुझे वर देना चाहते हैं तो हे देव! हे सुरेश्वर! मेरी सदा आपमें भक्ति बनी रहे॥ ३५२॥

अतीतानागतं चैव वर्तमानं च यद् विभो।
जानीयामिति मे बुद्धिः प्रसादात् सुरसत्तम॥ ३५३॥

'सुरश्रेष्ठ! विभो! आपकी कृपासे मैं भूत, वर्तमान और भविष्यको जान सकूँ; ऐसा मेरा निश्चय है॥ ३५३॥

क्षीरोदनं च भुञ्जीयामक्षयं सह बान्धवैः।
आश्रमे च सदास्माकं सांनिध्यं परमस्तु ते॥ ३५४॥

'मैं अपने बन्धु-बान्धवोंसहित सदा अक्षय दूध-भातका भोजन प्राप्त करूँ और हमारे इस आश्रममें सदा आपका निकट निवास रहे'॥ ३५४॥

एवमुक्तः स मां प्राह भगवाँल्लोकपूजितः।
महेश्वरो महातेजाश्चराचरगुरुः शिवः॥ ३५५॥

मेरे ऐसा कहनेपर लोकपूजित चराचरगुरु महातेजस्वी महेश्वर भगवान् शिव मुझसे यों बोले—॥ ३५५॥

श्रीभगवानुवाच

अजरश्चामरश्चैव भव त्वं दुःखवर्जितः।
यशस्वी तेजसा युक्तो दिव्यज्ञानसमन्वितः॥ ३५६॥

भगवान् शिवने कहा—ब्रह्मन्! तुम दुःखसे रहित अजर-अमर हो जाओ। यशस्वी, तेजस्वी तथा दिव्य ज्ञानसे सम्पन्न बने रहो॥ ३५६॥

ऋषीणामभिगम्यश्च मत्प्रसादाद् भविष्यसि।
शीलवान् गुणसम्पन्नः सर्वज्ञः प्रियदर्शनः॥ ३५७॥

मेरी कृपासे तुम ऋषियोंके भी दर्शनीय एवं आदरणीय होओगे तथा सदा शीलवान्, गुणवान्, सर्वज्ञ एवं प्रियदर्शन बने रहोगे॥ ३५७॥

अक्षयं यौवनं तेऽस्तु तेजश्चैवानलोपमम्।
क्षीरोदः सागरश्चैव यत्र यत्रेच्छसि प्रियम्॥ ३५८॥
तत्र ते भविता कामं सांनिध्यं पयसो निधेः।

तुम्हें अक्षय यौवन और अग्निके समान तेज प्राप्त हो। तुम्हारे लिये क्षीरसागर सुलभ हो जायगा। तुम जहाँ-जहाँ प्रिय वस्तुकी इच्छा करोगे वहाँ-वहाँ तुम्हारी सारी कामना सफल होगी; और तुम्हें क्षीरसागरका सान्निध्य प्राप्त होगा॥ ३५८½॥

क्षीरोदनं च भुङ्क्ष्व त्वममृतेन समन्वितम्॥ ३५९॥
बन्धुभिः सहितः कल्पं ततो मामुपयास्यसि।
अक्षया बान्धवाश्चैव कुलं गोत्रं च ते सदा॥ ३६०॥

तुम अपने भाई-बन्धुओंके साथ एक कल्पतक अमृतसहित दूध-भातका भोजन पाते रहो। तत्पश्चात् तुम मुझे प्राप्त हो जाओगे। तुम्हारे बन्धु-बान्धव, कुल तथा गोत्रकी परम्परा सदा अक्षय बनी रहेगी॥

भविष्यति द्विजश्रेष्ठ मयि भक्तिश्च शाश्वती।
सांनिध्यं चाश्रमे नित्यं करिष्यामि द्विजोत्तम॥ ३६१॥

द्विजश्रेष्ठ! मुझमें तुम्हारी सदा अचल भक्ति होगी तथा द्विजप्रवर! तुम्हारे इस आश्रमके निकट मैं सदा अदृश्य रूपसे निवास करूँगा॥ ३६१॥

तिष्ठ वत्स यथाकामं नोत्कण्ठां च करिष्यसि।
स्मृतस्त्वया पुनर्विप्र करिष्यामि च दर्शनम्॥ ३६२॥

बेटा! तुम इच्छानुसार यहाँ रहो। कभी किसी

बातके लिये चिन्ता न करना। विप्रवर! तुम्हारे स्मरण करनेपर मैं पुनः तुम्हें दर्शन दूँगा॥ ३६२॥

एवमुक्त्वा स भगवान् सूर्यकोटिसमप्रभः।
ईशानः स वरान् दत्त्वा तत्रैवान्तरधीयत॥ ३६३॥

ऐसा कहकर वे करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी भगवान् शंकर उपर्युक्त वर प्रदान करके वहीं अन्तर्धान हो गये॥ ३६३॥

एवं दृष्टो मया कृष्ण देवदेवः समाधिना।
तदवाप्तं च मे सर्वं यदुक्तं तेन धीमता॥ ३६४॥

श्रीकृष्ण! इस प्रकार मैंने समाधिके द्वारा देवाधिदेव भगवान् शंकरका प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त किया। उन बुद्धिमान् महादेवजीने जो कुछ कहा था, वह सब मुझे प्राप्त हो गया है॥ ३६४॥

प्रत्यक्षं चैव ते कृष्ण पश्य सिद्धान् व्यवस्थितान्।
ऋषीन् विद्याधरान् यक्षान् गन्धर्वाप्सरसस्तथा॥ ३६५॥

श्रीकृष्ण! यह सब आप प्रत्यक्ष देख लें। यहाँ सिद्ध महर्षि, विद्याधर, यक्ष, गन्धर्व और अप्सराएँ विद्यमान हैं॥ ३६५॥

पश्य वृक्षलतागुल्मान् सर्वपुष्पफलप्रदान्।
सर्वर्तुकुसुमैर्युक्तान् सुखपत्रान् सुगन्धिनः॥ ३६६॥

देखिये, यहाँके वृक्ष, लता और गुल्म सब प्रकारके फूल और फल देनेवाले हैं। ये सभी ऋतुओंके फूलोंसे युक्त, सुखदायक पल्लवोंसे सम्पन्न और सुगन्धसे परिपूर्ण हैं॥ ३६६॥

सर्वमेतन्महाबाहो दिव्यभावसमन्वितम्।
प्रसादाद् देवदेवस्य ईश्वरस्य महात्मनः॥ ३६७॥

महाबाहो! देवताओंके भी देवता तथा सबके ईश्वर महात्मा शिवके प्रसादसे ही यहाँ सब कुछ दिव्य भावसे सम्पन्न दिखायी देता है॥ ३६७॥

वासुदेव उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य प्रत्यक्षमिव दर्शनम्।
विस्मयं परमं गत्वा अब्रुवं तं महामुनिम्॥ ३६८॥

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! उनकी यह बात सुनकर मानो मुझे भगवान् शिवका प्रत्यक्ष दर्शन हो गया हो, ऐसा प्रतीत हुआ। फिर बड़े विस्मयमें पड़कर मैंने उन महामुनिसे पूछा—॥ ३६८॥

धन्यस्त्वमसि विप्रेन्द्र कस्त्वदन्योऽसि पुण्यकृत्।
यस्य देवाधिदेवस्ते सांनिध्यं कुरुतेऽऽश्रमे॥ ३६९॥

'विप्रवर! आप धन्य हैं। आपसे बढ़कर पुण्यात्मा पुरुष दूसरा कौन है? क्योंकि आपके इस आश्रममें साक्षात् देवाधिदेव महादेव निवास करते हैं॥ ३६९॥

अपि तावन्ममाप्येवं दद्यात् स भगवान् शिवः।
दर्शनं मुनिशार्दूल प्रसादं चापि शंकरः॥ ३७०॥

'मुनिश्रेष्ठ! क्या कल्याणकारी भगवान् शिव मुझे भी इसी प्रकार दर्शन देंगे? मुझपर भी कृपा करेंगे?'॥

उपमन्युरुवाच

द्रक्ष्यसे पुण्डरीकाक्ष महादेवं न संशयः।
अचिरेणैव कालेन यथा दृष्टो मयानघ॥ ३७१॥

उपमन्यु बोले—निष्पाप कमलनयन! जैसे मैंने भगवान्का दर्शन किया है, उसी प्रकार आप भी थोड़े ही समयमें महादेवजीका दर्शन प्राप्त करेंगे; इसमें संशय नहीं है॥ ३७१॥

चक्षुषा चैव दिव्येन पश्याम्यमितविक्रमम्।
षष्ठे मासि महादेवं द्रक्ष्यसे पुरुषोत्तम॥ ३७२॥

पुरुषोत्तम! मैं दिव्य दृष्टिसे देख रहा हूँ। आप आजसे छठे महीनेमें अमित पराक्रमी महादेवजीका दर्शन करेंगे॥ ३७२॥

षोडशाष्टौ वरांश्चापि प्राप्स्यसि त्वं महेश्वरात्।
सपत्नीकाद् यदुश्रेष्ठ सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥ ३७३॥

यदुश्रेष्ठ! पत्नीसहित महादेवजीसे आप सोलह और आठ वर प्राप्त करेंगे। यह मैं आपसे सच्ची बात कहता हूँ॥ ३७३॥

अतीतानागतं चैव वर्तमानं च नित्यशः।
विदितं मे महाबाहो प्रसादात् तस्य धीमतः॥ ३७४॥

महाबाहो! बुद्धिमान् महादेवजीके कृपा-प्रसादसे मुझे सदा ही भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों कालका ज्ञान प्राप्त है॥ ३७४॥

एतान् सहस्रशश्चान्यान् समनुध्यातवान् हरः।
कस्मात् प्रसादं भगवान् न कुर्यात् तव माधव॥ ३७५॥

माधव! भगवान् हरने यहाँ रहनेवाले इन सहस्रों मुनियोंको कृपापूर्ण हृदयसे अनुगृहीत किया है। फिर आपपर वे अपना कृपाप्रसाद क्यों नहीं प्रकट करेंगे॥ ३७५॥

त्वादृशेन हि देवानां श्लाघनीयः समागमः।
ब्रह्मण्येनानृशंसेन श्रद्दधानेन चाप्युत॥ ३७६॥
जप्यं तु ते प्रदास्यामि येन द्रक्ष्यसि शंकरम्।

आप-जैसे ब्राह्मणभक्त, कोमलस्वभाव और श्रद्धालु पुरुषका समागम देवताओंके लिये भी प्रशंसनीय है। मैं आपको जपनेयोग्य मन्त्र प्रदान करूँगा, जिससे आप भगवान् शंकरका दर्शन करेंगे॥ ३७६½॥

श्रीकृष्ण उवाच

अब्रुवं तमहं ब्रह्मंस्त्वत्प्रसादान्महामुने॥ ३७७॥
द्रक्ष्ये दितिजसंघानां मर्दनं त्रिदशेश्वरम्।

श्रीकृष्ण कहते हैं—तब मैंने उनसे कहा—ब्रह्मन्! महामुने! मैं आपके कृपाप्रसादसे दैत्यदलोंका दलन करनेवाले देवेश्वर महादेवजीका दर्शन अवश्य करूँगा॥ ३७७½॥

एवं कथयतस्तस्य महादेवाश्रितां कथाम्॥ ३७८॥
दिनान्यष्टौ ततो जग्मुर्मुहूर्तमिव भारत।
दिनेऽष्टमे तु विप्रेण दीक्षितोऽहं यथाविधि॥ ३७९॥

भरतनन्दन! इस प्रकार महादेवजीकी महिमासे सम्बन्ध रखनेवाली कथा कहते हुए उन मुनीश्वरके आठ दिन एक मुहूर्तके समान बीत गये। आठवें दिन विप्रवर उपमन्युने विधिपूर्वक मुझे दीक्षा दी॥

दण्डी मुण्डी कुशी चीरी घृताक्तो मेखली कृतः।
मासमेकं फलाहारो द्वितीयं सलिलाशनः॥ ३८०॥

उन्होंने मेरा सिर मुड़ा दिया। मेरे शरीरमें घी लगाया तथा मुझसे दण्ड, कुशा, चीर एवं मेखला धारण कराया। मैं एक महीनेतक फलाहार करके रहा और दूसरे महीनेमें केवल जलका आहार किया॥ ३८०॥

तृतीयं च चतुर्थं च पञ्चमं चानिलाशनः।
एकपादेन तिष्ठंश्च ऊर्ध्वबाहुरतन्द्रितः॥ ३८१॥

तीसरे, चौथे और पाँचवें महीनेमें मैं दोनों बाँहें ऊपर उठाये एक पैरसे खड़ा रहा। आलस्यको अपने पास नहीं आने दिया। उन दिनों वायुमात्र ही मेरा आहार रहा॥ ३८१॥

तेजः सूर्यसहस्रस्य अपश्यं दिवि भारत।
तस्य मध्यगतं चापि तेजसः पाण्डुनन्दन॥ ३८२॥
इन्द्रायुधपिनद्धाङ्गं विद्युन्मालागवाक्षकम्।
नीलशैलचयप्रख्यं वलाकाभूषिताम्बरम्॥ ३८३॥

भारत! पाण्डुनन्दन! छठे महीनेमें आकाशके भीतर मुझे सहस्रों सूर्योंका-सा तेज दिखायी दिया। उस तेजके भीतर एक और तेजोमण्डल दृष्टिगोचर हुआ, जिसका सर्वांग इन्द्रधनुषसे परिवेष्टित था। विद्युन्माला उसमें झरोखेके समान प्रतीत होती थी। वह तेज नील पर्वतमालाके समान प्रकाशित होता था। उस द्विविध तेजके कारण वहाँका आकाश बकपंक्तियोंसे विभूषित-सा जान पड़ता था॥ ३८२-३८३॥

तत्र स्थितश्च भगवान् देव्या सह महाद्युतिः।
तपसा तेजसा कान्त्या दीप्तया सह भार्यया॥ ३८४॥

उस नील तेजके भीतर महातेजस्वी भगवान् शिव तप, तेज, कान्ति तथा अपनी तेजस्विनी पत्नी उमादेवीके साथ विराजमान थे॥ ३८४॥

रराज भगवांस्तत्र देव्या सह महेश्वरः।
सोमेन सहितः सूर्यो यथा मेघस्थितस्तथा॥ ३८५॥

उस नील तेजमें पार्वती देवीके साथ स्थित हुए भगवान् महेश्वर ऐसी शोभा पा रहे थे मानो चन्द्रमाके साथ सूर्य श्याम मेघके भीतर विराज रहे हों॥ ३८५॥

संहृष्टरोमा कौन्तेय विस्मयोत्फुल्ललोचनः।
अपश्यं देवसंघानां गतिमार्तिहरं हरम्॥ ३८६॥

कुन्तीनन्दन! जो सम्पूर्ण देवसमुदायकी गति हैं तथा सबकी पीड़ा हर लेते हैं, उन भगवान् हरको जब मैंने देखा, तब मेरे रोंगटे खड़े हो गये और मेरे नेत्र आश्चर्यसे खिल उठे॥ ३८६॥

किरीटिनं गदिनं शूलपाणिं
व्याघ्राजिनं जटिलं दण्डपाणिम्।
पिनाकिनं वज्रिणं तीक्ष्णदंष्ट्रं
शुभाङ्गदं व्यालयज्ञोपवीतम्॥ ३८७॥

भगवान्के मस्तकपर मुकुट था। उनके हाथमें गदा, त्रिशूल और दण्ड शोभा पाते थे। सिरपर जटा थी। उन्होंने व्याघ्रचर्म धारण कर रखा था। पिनाक और वज्र भी उनकी शोभा बढ़ा रहे थे। उनकी दाढ़ तीखी थी। उन्होंने सुन्दर बाजूबंद पहनकर सर्पमय यज्ञोपवीत धारण कर रखा था॥ ३८७॥

दिव्यां मालामुरसानेकवर्णां
समुद्वहन्तं गुल्फदेशावलम्बाम्।
चन्द्रं यथा परिविष्टं ससंध्यं
वर्षात्यये तद्वदपश्यमेनम्॥ ३८८॥

वे अपने वक्षःस्थलपर अनेक रंगवाली दिव्य माला धारण किये हुए थे, जो गुल्फदेश (घुटनों)-तक लटक रही थी। जैसे शरदृतुमें संध्याकी लालीसे युक्त और घेरेसे घिरे हुए चन्द्रमाका दर्शन होता हो, उसी प्रकार मैंने मालावेष्टित उन भगवान् महादेवजीका दर्शन किया था॥ ३८८॥

प्रमथानां गणैश्चैव समन्तात् परिवारितम्।
शरदीव सुदुष्प्रेक्ष्यं परिविष्टं दिवाकरम्॥ ३८९॥

प्रमथगणोंद्वारा सब ओरसे घिरे हुए महातेजस्वी महादेव परिधिसे घिरे हुए शरत्कालके सूर्यकी भाँति बड़ी कठिनाईसे देखे जाते थे॥ ३८९॥

एकादशशतान्येवं रुद्राणां वृषवाहनम्।
अस्तुवं नियतात्मानं कर्मभिः शुभकर्मिणम्॥ ३९०॥

इस प्रकार मनको वशमें रखनेवाले और कर्मेन्द्रियोंद्वारा शुभकर्मका ही अनुष्ठान करनेवाले महादेवजीकी, जो ग्यारह सौ रुद्रोंसे घिरे हुए थे, मैंने स्तुति की॥ ३९०॥

आदित्या वसवः साध्या विश्वेदेवास्तथाश्विनौ।
विश्वाभिःस्तुतिभिर्देवं विश्वदेवं समस्तुवन्॥ ३९१॥

बारह आदित्य, आठ वसु, साध्यगण, विश्वेदेव तथा अश्विनीकुमार—ये भी सम्पूर्ण स्तुतियोंद्वारा सबके देवता महादेवजीकी स्तुति कर रहे थे॥ ३९१॥

शतक्रतुश्च भगवान् विष्णुश्चादितिनन्दनौ।
ब्रह्मा रथन्तरं साम ईरयन्ति भवान्तिके॥ ३९२॥

इन्द्र तथा वामनरूपधारी भगवान् विष्णु—ये दोनों अदितिकुमार और ब्रह्माजी भगवान् शिवके निकट रथन्तर सामका गान कर रहे थे॥ ३९२॥

योगीश्वराः सुबहवो योगदं पितरं गुरुम्।
ब्रह्मर्षयश्च ससुतास्तथा देवर्षयश्च वै॥ ३९३॥

बहुत-से योगीश्वर, पुत्रोंसहित ब्रह्मर्षि तथा देवर्षिगण भी योगसिद्धि प्रदान करनेवाले, पिता एवं गुरुरूप महादेवजीकी स्तुति करते थे॥ ३९३॥

(महाभूतानि च्छन्दांसि प्रजानां पतयो मखाः।
सरितः सागरा नागा गन्धर्वाप्सरसस्तथा॥
विद्याधराश्च गीतेन वाद्यनृत्तादिनार्चयन्।
तेजस्विनां मध्यगतं तेजोराशिं जगत्पतिम्॥)

महाभूत, छन्द, प्रजापति, यज्ञ, नदी, समुद्र, नाग, गन्धर्व, अप्सरा तथा विद्याधर—ये सब गीत, वाद्य तथा नृत्य आदिके द्वारा तेजस्वियोंके मध्यभागमें विराजमान तेजोराशि जगदीश्वर शिवकी पूजा-अर्चा करते थे॥

पृथिवी चान्तरिक्षं च नक्षत्राणि ग्रहास्तथा।
मासार्धमासा ऋतवो रात्रिः संवत्सराः क्षणाः॥ ३९४॥
मुहूर्ताश्च निमेषाश्च तथैव युगपर्ययाः।
दिव्या राजन् नमस्यन्ति विद्याः सत्त्ववित्तस्तथा॥ ३९५॥

राजन्! पृथ्वी, अन्तरिक्ष, नक्षत्र, ग्रह, मास, पक्ष, ऋतु, रात्रि, संवत्सर, क्षण, मुहूर्त, निमेष, युगचक्र तथा दिव्य विद्याएँ—ये सब (मूर्तिमान् होकर) शिवजीको नमस्कार कर रहे थे। वैसे ही सत्त्ववेत्ता पुरुष भी भगवान् शिवको नमस्कार करते थे॥ ३९४-३९५॥

सनत्कुमारो देवाश्च इतिहासास्तथैव च।
मरीचिरङ्गिरा अत्रिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः॥ ३९६॥
मनवः सप्त सोमश्च अथर्वा सबृहस्पतिः।
भृगुर्दक्षः कश्यपश्च वसिष्ठः काश्य एव च॥ ३९७॥
छन्दांसि दीक्षा यज्ञाश्च दक्षिणाः पावको हविः।
यज्ञोपगानि द्रव्याणि मूर्तिमन्ति युधिष्ठिर॥ ३९८॥
प्रजानां पालकाः सर्वे सरितः पन्नगा नगाः।
देवानां मातरः सर्वा देवपत्न्यः सकन्यकाः॥ ३९९॥
सहस्राणि मुनीनां च अयुतान्यर्बुदानि च।
नमस्यन्ति प्रभुं शान्तं पर्वताः सागरा दिशः॥ ४००॥

युधिष्ठिर! सनत्कुमार, देवगण, इतिहास, मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, सात मनु, सोम, अथर्वा, बृहस्पति, भृगु, दक्ष, कश्यप, वसिष्ठ, काश्य, छन्द, दीक्षा, यज्ञ, दक्षिणा, अग्नि, हविष्य, यज्ञोपयोगी मूर्तिमान् द्रव्य, समस्त प्रजापालकगण, नदी, नग, नाग, सम्पूर्ण देवमाताएँ, देवपत्नियाँ, देवकन्याएँ, सहस्रों, लाखों, अरबों महर्षि, पर्वत, समुद्र और दिशाएँ—ये सब-के-सब शान्तस्वरूप भगवान् शिवको नमस्कार करते थे॥ ३९६—४००॥

गन्धर्वाप्सरसश्चैव गीतवादित्रकोविदाः।
दिव्यतालेषु गायन्तः स्तुवन्ति भवमद्भुतम्॥ ४०१॥

गीत और वाद्यकी कलामें कुशल अप्सराएँ तथा गन्धर्व दिव्य तालपर गाते हुए अद्भुत शक्तिशाली भगवान् भवकी स्तुति करते थे॥ ४०१॥

विद्याधरा दानवाश्च गुह्यका राक्षसास्तथा।
सर्वाणि चैव भूतानि स्थावराणि चराणि च।
नमस्यन्ति महाराज वाङ्मनःकर्मभिर्विभुम्॥ ४०२॥

महाराज! विद्याधर, दानव, गुह्यक, राक्षस तथा समस्त चराचर प्राणी मन, वाणी और क्रियाओंद्वारा भगवान् शिवको नमस्कार करते थे॥ ४०२॥

पुरस्ताद् धिष्ठितः शर्वो ममासीत् त्रिदशेश्वरः।
पुरस्ताद् धिष्ठितं दृष्ट्वा ममेशानं च भारत॥ ४०३॥
सप्रजापतिशक्रान्तं जगन्मामभ्युदैक्षत।
ईक्षितुं च महादेवं न मे शक्तिरभूत् तदा॥ ४०४॥

देवेश्वर शिव मेरे सामने खड़े थे। भारत! मेरे सामने महादेवजीको खड़ा देख प्रजापतियोंसे लेकर इन्द्रतक सारा जगत् मेरी ओर देखने लगा। किंतु उस समय महादेवजीको देखनेकी मुझमें शक्ति नहीं रह गयी थी॥ ४०३-४०४॥

ततो मामब्रवीद् देवः पश्य कृष्ण वदस्व च।
त्वया ह्याराधितश्चाहं शतशोऽथ सहस्रशः॥ ४०५॥

तब भगवान् शिवने मुझसे कहा—'श्रीकृष्ण! मुझे

देखो, मुझसे वार्तालाप करो। तुमने पहले भी सैकड़ों और हजारों बार मेरी आराधना की है॥ ४०५॥

त्वत्समो नास्ति मे कश्चित् त्रिषु लोकेषु वै प्रियः।
शिरसा वन्दिते देवे देवी प्रीता ह्युमा तदा।
ततोऽहमब्रुवं स्थाणुं स्तुतं ब्रह्मादिभिः सुरैः॥ ४०६॥

'तीनों लोकोंमें तुम्हारे समान दूसरा कोई मुझे प्रिय नहीं है।' जब मैंने मस्तक झुकाकर महादेवजीको प्रणाम किया, तब देवी उमाको बड़ी प्रसन्नता हुई। उस समय मैंने ब्रह्मा आदि देवताओंद्वारा प्रशंसित भगवान् शिवसे इस प्रकार कहा॥ ४०६॥

श्रीकृष्ण उवाच

नमोऽस्तु ते शाश्वत सर्वयोने
ब्रह्माधिपं त्वामृषयो वदन्ति।
तपश्च सत्त्वं च रजस्तमश्च
त्वामेव सत्यं च वदन्ति सन्तः॥ ४०७॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—सबके कारणभूत सनातन परमेश्वर! आपको नमस्कार है। ऋषि आपको ब्रह्माजीका भी अधिपति बताते हैं। साधु पुरुष आपको ही तप, सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण तथा सत्यस्वरूप कहते हैं॥ ४०७॥

त्वं वै ब्रह्मा च रुद्रश्च वरुणोऽग्निर्मनुर्भवः।
धाता त्वष्टा विधाता च त्वं प्रभुः सर्वतोमुखः॥ ४०८॥

आप ही ब्रह्मा, रुद्र, वरुण, अग्नि, मनु, शिव, धाता, विधाता और त्वष्टा हैं। आप ही सब ओर मुखवाले परमेश्वर हैं॥ ४०८॥

त्वत्तो जातानि भूतानि स्थावराणि चराणि च।
त्वया सृष्टमिदं कृत्स्नं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥ ४०९॥

समस्त चराचर प्राणी आपहीसे उत्पन्न हुए हैं। आपने ही स्थावर-जंगम प्राणियोंसहित इस समस्त त्रिलोकीकी सृष्टि की है॥ ४०९॥

यानीन्द्रियाणीह मनश्च कृत्स्नं
ये वायवः सप्त तथैव चाग्नयः।
ये देवसंस्थास्तवदेवताश्च
तस्मात् परं त्वामृषयो वदन्ति॥ ४१०॥

यहाँ जो-जो इन्द्रियाँ, जो सम्पूर्ण मन, जो समस्त वायु और सात अग्नियाँ* हैं, जो देवसमुदायके अंदर रहनेवाले स्तवनके योग्य देवता हैं, उन सबसे परे आपकी स्थिति है। ऋषिगण आपके विषयमें ऐसा ही कहते हैं॥ ४१०॥

वेदाश्च यज्ञाः सोमश्च दक्षिणा पावको हविः।
यज्ञोपगं च यत् किंचिद् भगवांस्तदसंशयम्॥ ४११॥

वेद, यज्ञ, सोम, दक्षिणा, अग्नि, हविष्य तथा जो कुछ भी यज्ञोपयोगी सामग्री है, वह सब आप भगवान् ही हैं, इसमें संशय नहीं है॥ ४११॥

इष्टं दत्तमधीतं च व्रतानि नियमाश्च ये।
ह्रीः कीर्तिः श्रीर्द्युतिस्तुष्टिः सिद्धिश्चैव तदर्पणी॥ ४१२॥

यज्ञ, दान, अध्ययन, व्रत और नियम, लज्जा, कीर्ति, श्री, द्युति, तुष्टि तथा सिद्धि—ये सब आपके स्वरूपकी प्राप्ति करानेवाले हैं॥ ४१२॥

कामः क्रोधो भयं लोभो मदः स्तम्भोऽथ मत्सरः।
आधयो व्याधयश्चैव भगवंस्तनवस्तव॥ ४१३॥

भगवन्! काम, क्रोध, भय, लोभ, मद, स्तब्धता, मात्सर्य, आधि और व्याधि—ये सब आपके ही शरीर हैं॥

कृतिर्विकारः प्रणयः प्रधानं बीजमव्ययम्।
मनसः परमा योनिः प्रभावश्चापि शाश्वतः॥ ४१४॥

क्रिया, विकार, प्रणय, प्रधान, अविनाशी बीज, मनका परम कारण और सनातन प्रभाव—ये भी आपके ही स्वरूप हैं॥ ४१४॥

अव्यक्तः पावनोऽचिन्त्यः सहस्रांशुर्हिरण्मयः।
आदिर्गणानां सर्वेषां भवान् वै जीविताश्रयः॥ ४१५॥

अव्यक्त, पावन, अचिन्त्य, हिरण्मय सूर्यस्वरूप आप ही समस्त गणोंके आदिकारण तथा जीवनके आश्रय हैं॥ ४१५॥

महानात्मा मतिर्ब्रह्मा विश्वः शम्भुः स्वयम्भुवः।
बुद्धिः प्रज्ञोपलब्धिश्च संवित् ख्यातिर्धृतिःस्मृतिः॥ ४१६॥
पर्यायवाचकैः शब्दैर्महानात्मा विभाव्यते।
त्वां बुद्ध्वा ब्राह्मणो वेदात् प्रमोहं विनियच्छति॥ ४१७॥

महान्, आत्मा, मति, ब्रह्मा, विश्व, शम्भु, स्वयम्भू, बुद्धि, प्रज्ञा, उपलब्धि, संवित्, ख्याति, धृति और स्मृति—इन चौदह पर्यायवाची शब्दोंद्वारा आप परमात्मा ही प्रकाशित होते हैं। वेदसे आपका बोध प्राप्त करके ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण मोहका सर्वथा नाश कर देता है॥

हृदयं सर्वभूतानां क्षेत्रज्ञस्त्वमृषिस्तुतः।
सर्वतःपाणिपादस्त्वं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः॥ ४१८॥

---

* गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, आहवनीय, सभ्य और आवसथ्य—ये पाँच वैदिक अग्नियाँ हैं। स्मार्त छठी और लौकिक सातवीं अग्नि है।

ऋषियोंद्वारा प्रशंसित आप ही सम्पूर्ण भूतोंके हृदयमें स्थित क्षेत्रज्ञ हैं। आपके सब ओर हाथ-पैर हैं। सब ओर नेत्र, मस्तक और मुख हैं॥ ४१८॥

सर्वतःश्रुतिमाँल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठसि।
फलं त्वमसि तिग्मांशोर्निमेषादिषु कर्मसु॥ ४१९॥

आपके सब ओर कान हैं और जगत्में आप सबको व्याप्त करके स्थित हैं। जीवके आँख मीजने और खोलनेसे लेकर जितने कर्म हैं, उनके फल आप ही हैं॥ ४१९॥

त्वं वै प्रभार्चिः पुरुषः सर्वस्य हृदि संश्रितः।
अणिमा महिमा प्राप्तिरीशानो ज्योतिरव्ययः॥ ४२०॥

आप अविनाशी परमेश्वर ही सूर्यकी प्रभा और अग्निकी ज्वाला हैं। आप ही सबके हृदयमें आत्मारूपसे निवास करते हैं। अणिमा, महिमा और प्राप्ति आदि सिद्धियाँ तथा ज्योति भी आप ही हैं॥ ४२०॥

त्वयि बुद्धिर्मतिर्लोकाः प्रपन्नाः संश्रिताश्च ये।
ध्यानिनो नित्ययोगाश्च सत्यसत्त्वा जितेन्द्रियाः॥ ४२१॥

आपमें बोध और मननकी शक्ति विद्यमान है। जो लोग आपकी शरणमें आकर सर्वथा आपके आश्रित रहते हैं, वे ध्यानपरायण, नित्य योगयुक्त, सत्यसंकल्प तथा जितेन्द्रिय होते हैं॥ ४२१॥

यस्त्वां ध्रुवं वेदयते गुहाशयं
प्रभुं पुराणं पुरुषं च विग्रहम्।
हिरण्मयं बुद्धिमतां परां गतिं
स बुद्धिमान् बुद्धिमतीत्य तिष्ठति॥ ४२२॥

जो आपको अपनी हृदयगुहामें स्थित आत्मा, प्रभु, पुराण-पुरुष, मूर्तिमान् परब्रह्म, हिरण्मय पुरुष और बुद्धिमानोंकी परम गतिरूपमें निश्चित भावसे जानता है, वही बुद्धिमान् लौकिक बुद्धिका उल्लंघन करके परमात्म-भावमें प्रतिष्ठित होता है॥ ४२२॥

विदित्वा सप्त सूक्ष्माणि षडङ्गं त्वां च मूर्तितः।
प्रधानविधियोगस्थस्त्वामेव विशते बुधः॥ ४२३॥

विद्वान् पुरुष महत्तत्त्व, अहंकार और पञ्चतन्मात्रा—इन सात सूक्ष्म तत्त्वोंको जानकर आपके स्वरूपभूत छः* अंगोंका बोध प्राप्त करके प्रमुख विधियोगका आश्रय ले आपमें ही प्रवेश करते हैं॥ ४२३॥

एवमुक्ते मया पार्थ भवे चार्तिविनाशने।
चराचरं जगत् सर्वं सिंहनादं तदाकरोत्॥ ४२४॥

कुन्तीनन्दन! जब मैंने सबकी पीड़ाका नाश करनेवाले महादेवजीकी इस प्रकार स्तुति की, तब यह सम्पूर्ण चराचर जगत् सिंहनाद कर उठा॥ ४२४॥

तं विप्रसंघाश्च सुरासुराश्च
नागाः पिशाचाः पितरो वयांसि।
रक्षोगणा भूतगणाश्च सर्वे
महर्षयश्चैव तदा प्रणेमुः॥ ४२५॥

ब्राह्मणोंके समुदाय, देवता, असुर, नाग, पिशाच, पितर, पक्षी, राक्षसगण, समस्त भूतगण तथा महर्षि भी उस समय भगवान् शिवको प्रणाम करने लगे॥ ४२५॥

मम मूर्ध्नि च दिव्यानां कुसुमानां सुगन्धिनाम्।
राशयो निपतन्ति स्म वायुश्च सुसुखो ववौ॥ ४२६॥

मेरे मस्तकपर ढेर-के-ढेर दिव्य सुगन्धित पुष्पोंकी वर्षा होने लगी तथा अत्यन्त सुखदायक हवा चलने लगी॥ ४२६॥

निरीक्ष्य भगवान् देवीं ह्युमां मां च जगद्धितः।
शतक्रतुं चाभिवीक्ष्य स्वयं मामाह शङ्करः॥ ४२७॥

जगत्के हितैषी भगवान् शंकरने उमादेवीकी ओर देखकर मेरी ओर देखा और फिर इन्द्रपर दृष्टिपात करके स्वयं मुझसे कहा—॥ ४२७॥

विदुः कृष्ण परां भक्तिमस्मासु तव शत्रुहन्।
क्रियतामात्मनः श्रेयः प्रीतिर्हि त्वयि मे परा॥ ४२८॥

'शत्रुहन् श्रीकृष्ण! मुझमें जो तुम्हारी पराभक्ति है, उसे सब लोग जानते हैं, अब तुम अपना कल्याण करो; क्योंकि तुम्हारे ऊपर मेरा विशेष प्रेम है॥ ४२८॥

वृणीष्वाष्टौ वरान् कृष्ण दातास्मि तव सत्तम।
ब्रूहि यादवशार्दूल यानिच्छसि सुदुर्लभान्॥ ४२९॥

'सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ! यदुकुलसिंह श्रीकृष्ण! मैं तुम्हें आठ वर देता हूँ। तुम जिन परम दुर्लभ वरोंको पाना चाहते हो, उन्हें बताओ'॥ ४२९॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि मेघवाहनपर्वाख्याने चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत अनुशासनपर्वके अन्तर्गत दानधर्मपर्वमें मेघवाहनपर्वका आख्यानविषयक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १४॥

(दाक्षिणात्य पाठके ४ श्लोक मिलाकर कुल ४३३ श्लोक हैं)

---

* सर्वज्ञता, तृप्ति, अनादि बोध, स्वतन्त्रता, नित्य अलुप्त शक्ति और अनन्त शक्ति—ये महेश्वरके स्वरूपभूत छः अङ्ग बताये गये हैं।

पञ्चदशोऽध्यायः

शिव और पार्वतीका श्रीकृष्णको वरदान और उपमन्युके द्वारा महादेवजीकी महिमा

श्रीकृष्ण उवाच

मूर्ध्ना निपत्य नियतस्तेजःसंनिचये ततः।
परमं हर्षमागत्य भगवन्तमथाब्रुवम्॥ १॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—भारत! तदनन्तर मनको वशमें करके तेजोराशिमें स्थित महादेवजीको मस्तक झुकाकर प्रणाम करनेके अनन्तर बड़े हर्षमें भरकर मैंने उन भगवान् शिवसे कहा— ॥ १ ॥

धर्मे दृढत्वं युधि शत्रुघातं
यशस्तथाग्र्यं परमं बलं च।
योगप्रियत्वं तव संनिकर्षं
वृणे सुतानां च शतं शतानि॥ २॥

'धर्ममें दृढ़तापूर्वक स्थिति, युद्धमें शत्रुओंका संहार करनेकी क्षमता, श्रेष्ठ यश, उत्तम बल, योगबल, सबका प्रिय होना, आपका सांनिध्य तथा दस हजार पुत्र—ये ही आठ वर मैं माँग रहा हूँ'॥ २॥

एवमस्त्विति तद्वाक्यं मयोक्तः प्राह शङ्करः।
ततो मां जगतो माता धारिणी सर्वपावनी॥ ३॥
उवाचोमा प्रणिहिता शर्वाणी तपसां निधिः।
दत्तो भगवता पुत्रः साम्बो नाम तवानघ॥ ४॥

मेरे इस प्रकार कहनेपर भगवान् शंकरने कहा, 'एवमस्तु—ऐसा ही हो।' तब सबका धारण-पोषण करनेवाली सर्वपावनी तपोनिधि रुद्रपत्नी जगदम्बा उमादेवी एकाग्रचित्त होकर बोलीं—'निष्पाप श्यामसुन्दर! भगवान्‌ने तुम्हें साम्ब नामक पुत्र दिया है॥ ३-४॥

मत्तोऽप्यष्टौ वरानिष्टान् गृहाण त्वं ददामि ते।
प्रणम्य शिरसा सा च मयोक्ता पाण्डुनन्दन॥ ५॥

'अब मुझसे भी अभीष्ट आठ वर माँग लो। मैं तुम्हें वे वर प्रदान करती हूँ।' पाण्डुनन्दन! तब मैंने जगदम्बाके चरणोंमें सिरसे प्रणाम करके उनसे कहा— ॥ ५॥

द्विजेष्वकोपं पितृतः प्रसादं
शतं सुतानां परमं च भोगम्।
कुले प्रीतिं मातृतश्च प्रसादं
शमप्राप्तिं प्रवृणे चापि दाक्ष्यम्॥ ६॥

'ब्राह्मणोंपर कभी मेरे मनमें क्रोध न हो। मेरे पिता मुझपर प्रसन्न रहें। मुझे सैकड़ों पुत्र प्राप्त हों। उत्तम भोग सदा उपलब्ध रहें। हमारे कुलमें प्रसन्नता बनी रहे। मेरी माता भी प्रसन्न रहें। मुझे शान्ति मिले और प्रत्येक कार्यमें कुशलता प्राप्त हो—ये आठ वर और माँगता हूँ'॥ ६॥

उमोवाच

एवं भविष्यत्यमरप्रभाव
नाहं मृषा जातु वदे कदाचित्।
भार्यासहस्राणि च षोडशैव
तासु प्रियत्वं च तथाक्षयं च॥ ७॥
प्रीतिं चाग्र्यां बान्धवानां सकाशाद्
ददामि तेऽहं वपुषः काम्यतां च।
भोक्ष्यन्ते वै सप्ततिं वै शतानि
गृहे तुभ्यमतिथीनां च नित्यम्॥ ८॥

भगवती उमाने कहा—अमरोंके समान प्रभावशाली श्रीकृष्ण! ऐसा ही होगा। मैं कभी झूठ नहीं बोलती हूँ। तुम्हें सोलह हजार रानियाँ होंगी। उनका तुम्हारे प्रति प्रेम रहेगा। तुम्हें अक्षय धनधान्यकी प्राप्ति होगी। बन्धु-बान्धवोंकी ओरसे तुम्हें प्रसन्नता प्राप्त होगी। मैं तुम्हारे इस शरीरके सदा कमनीय बने रहनेका वर देती हूँ और तुम्हारे घरमें प्रतिदिन सात हजार अतिथि भोजन करेंगे*॥ ७-८॥

वासुदेव उवाच

एवं दत्त्वा वरान् देवो मम देवी च भारत।
अन्तर्हितः क्षणे तस्मिन् सगणो भीमपूर्वज॥ ९॥

---

* यहाँ श्रीकृष्णके माँगे हुए आठ वरोंको एवं 'भविष्यति' इस वाक्यके द्वारा देनेके पश्चात् पार्वतीजी अपनी ओरसे आठ वर और देती हैं। इनमें 'अमरप्रभाव' इस सम्बोधनके द्वारा देवोपम प्रभावका दान ही पहला वरदान सूचित किया गया है। 'मैं कभी झूठ नहीं बोलती' इस कथनके द्वारा 'तुम भी कभी झूठ नहीं बोलोगे' यह दूसरा वर सूचित होता है। सोलह हजार रानियोंके प्राप्त होनेका वर तीसरा है। उनका प्रिय होना चौथा वर है। अक्षय धनधान्यकी प्राप्ति पाँचवाँ वर है। बान्धवोंकी प्रीति छठा, शरीरकी कमनीयता सातवाँ और सात हजार अतिथियोंका भोजन आठवाँ वर है। इससे पहले जो सोलह और आठ वरके प्राप्त होनेकी बात कही गयी थी, उसकी संगति लग जाती है।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—भरतनन्दन! भीमसेनके बड़े भैया! इस प्रकार महादेवजी तथा देवी पार्वती मुझे वरदान देकर अपने गणोंके साथ उसी क्षण अन्तर्धान हो गये॥ ९॥

एतदत्यद्भुतं पूर्वं ब्राह्मणायातितेजसे।
उपमन्यवे मया कृत्स्नं व्याख्यातं पार्थिवोत्तम।
नमस्कृत्वा तु स प्राह देवदेवाय सुव्रत॥ १०॥

नृपश्रेष्ठ! यह अत्यन्त अद्भुत वृत्तान्त मैंने पहले महातेजस्वी ब्राह्मण उपमन्युको पूर्णरूपसे बताया था। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले नरेश! उपमन्युने देवाधिदेव महादेवजीको नमस्कार करके इस प्रकार कहा॥ १०॥

उपमन्युरुवाच

नास्ति शर्वसमो देवो नास्ति शर्वसमा गतिः।
नास्ति शर्वसमो दाने नास्ति शर्वसमो रणे॥ ११॥

उपमन्यु बोले—महादेवजीके समान कोई देवता नहीं है। महादेवजीके समान कोई गति नहीं है। दानमें शिवजीकी समानता करनेवाला कोई नहीं है तथा युद्धमें भी भगवान् शंकरके समान दूसरा कोई वीर नहीं है॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि मेघवाहनपर्वाख्याने पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत अनुशासनपर्वके अन्तर्गत दानधर्मपर्वमें मेघवाहन (इन्द्ररूपधारी महादेव)-की महिमाके प्रतिपादक पर्वकी कथामें पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १५॥

षोडशोऽध्यायः

उपमन्यु-श्रीकृष्ण-संवाद—महात्मा तण्डिद्वारा की गयी महादेवजीकी स्तुति, प्रार्थना और उसका फल

उपमन्युरुवाच

ऋषिरासीत् कृते तात तण्डिरित्येव विश्रुतः।
दशवर्षसहस्राणि तेन देवः समाधिना॥ १॥
आराधितोऽभूद् भक्तेन तस्योदर्कं निशामय।
स दृष्टवान् महादेवमस्तौषीच्च स्तवैर्विभुम्॥ २॥

उपमन्यु कहते हैं—तात! सत्ययुगमें तण्डि नामसे विख्यात एक ऋषि थे जिन्होंने भक्तिभावसे ध्यानके द्वारा दस हजार वर्षोंतक महादेवजीकी आराधना की थी। उन्हें जो फल प्राप्त हुआ था, उसे बता रहा हूँ, सुनिये। उन्होंने महादेवजीका दर्शन किया और स्तोत्रोंद्वारा उन प्रभुकी स्तुति की॥ १-२॥

इति तण्डिस्तपोयोगात् परमात्मानमव्ययम्।
चिन्तयित्वा महात्मानमिदमाह सुविस्मितः॥ ३॥

इस तरह तण्डिने तपस्यामें संलग्न होकर अविनाशी परमात्मा महामना शिवका चिन्तन करके अत्यन्त विस्मित हो इस प्रकार कहा था—॥ ३॥

यं पठन्ति सदा सांख्याश्चिन्तयन्ति च योगिनः।
परं प्रधानं पुरुषमधिष्ठातारमीश्वरम्॥ ४॥
उत्पत्तौ च विनाशे च कारणं यं विदुर्बुधाः।
देवासुरमुनीनां च परं यस्मान्न विद्यते॥ ५॥
अजं तमहमीशानमनादिनिधनं प्रभुम्।
अत्यन्तसुखिनं देवमनघं शरणं व्रजे॥ ६॥

'सांख्यशास्त्रके विद्वान् पर, प्रधान, पुरुष, अधिष्ठाता और ईश्वर कहकर सदा जिनका गुणगान करते हैं, योगीजन जिनके चिन्तनमें लगे रहते हैं, विद्वान् पुरुष जिन्हें जगत्की उत्पत्ति और विनाशका कारण समझते हैं, देवताओं, असुरों और मुनियोंमें भी जिनसे श्रेष्ठ दूसरा कोई नहीं है, उन अजन्मा, अनादि, अनन्त, अनघ और अत्यन्त सुखी, प्रभावशाली ईश्वर महादेवजीकी मैं शरण लेता हूँ'॥ ४—६॥

एवं ब्रुवन्नेव तदा ददर्श तपसां निधिम्।
तमव्ययमनौपम्यमचिन्त्यं शाश्वतं ध्रुवम्॥ ७॥
निष्कलं सकलं ब्रह्म निर्गुणं गुणगोचरम्।
योगिनां परमानन्दमक्षरं मोक्षसंज्ञितम्॥ ८॥

इतना कहते ही तण्डिने उन तपोनिधि, अविकारी, अनुपम, अचिन्त्य, शाश्वत, ध्रुव, निष्कल, सकल, निर्गुण एवं सगुण ब्रह्मका दर्शन प्राप्त किया, जो योगियोंके परमानन्द, अविनाशी एवं मोक्षस्वरूप हैं॥ ७-८॥

मनोरिन्द्राग्निमरुतां विश्वस्य ब्रह्मणो गतिम्।
अग्राह्यमचलं शुद्धं बुद्धिग्राह्यं मनोमयम्॥ ९॥

वे ही मनु, इन्द्र, अग्नि, मरुद्गण, सम्पूर्ण विश्व तथा ब्रह्माजीकी भी गति हैं। मन और इन्द्रियोंके द्वारा उनका ग्रहण नहीं हो सकता। वे अग्राह्य, अचल, शुद्ध, बुद्धिके द्वारा अनुभव करने योग्य तथा मनोमय हैं॥ ९॥

दुर्विज्ञेयमसंख्येयं दुष्प्रापमकृतात्मभिः।
योनिं विश्वस्य जगतस्तमसः परतः परम्॥ १०॥

उनका ज्ञान होना अत्यन्त कठिन है। वे अप्रमेय हैं। जिन्होंने अपने अन्तःकरणको पवित्र एवं वशीभूत नहीं किया है, उनके लिये वे सर्वथा दुर्लभ हैं। वे ही सम्पूर्ण जगत्के कारण हैं। अज्ञानमय अन्धकारसे अत्यन्त परे हैं॥ १०॥

यः प्राणवन्तमात्मानं ज्योतिर्जीवस्थितं मनः।
तं देवं दर्शनाकाङ्क्षी बहून् वर्षगणानृषिः॥ ११॥
तपस्युग्रे स्थितो भूत्वा दृष्ट्वा तुष्टाव चेश्वरम्॥

जो देवता अपनेको प्राणवान्—जीवस्वरूप बनाकर उसमें मनोमय ज्योति बनकर स्थित हुए थे, उन्हींके दर्शनकी अभिलाषासे तण्डि मुनि बहुत वर्षोंतक उग्र तपस्यामें लगे रहे। जब उनका दर्शन प्राप्त कर लिया तब उन मुनीश्वरने जगदीश्वर शिवकी इस प्रकार स्तुति की॥ ११½॥

तण्डिरुवाच

पवित्राणां पवित्रस्त्वं गतिर्गतिमतां वर॥ १२॥
अत्युग्रं तेजसां तेजस्तपसां परमं तपः।

तण्डिने कहा—सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर! आप पवित्रोंमें भी परम पवित्र तथा गतिशील प्राणियोंकी उत्तम गति हैं। तेजोंमें अत्यन्त उग्र तेज और तपस्याओंमें उत्कृष्ट तप हैं॥ १२½॥

विश्वावसुहिरण्याक्षपुरुहूतनमस्कृत ॥ १३॥
भूरिकल्याणद विभो परं सत्यं नमोऽस्तु ते।

गन्धर्वराज विश्वावसु, दैत्यराज हिरण्याक्ष और देवराज इन्द्र भी आपकी वन्दना करते हैं। सबको महान् कल्याण प्रदान करनेवाले प्रभो! आप परम सत्य हैं। आपको नमस्कार है॥ १३½॥

जातीमरणभीरूणां यतीनां यततां विभो॥ १४॥
निर्वाणद सहस्रांशो नमस्तेऽस्तु सुखाश्रय।

विभो! जो जन्म-मरणसे भयभीत हो संसार-बन्धनसे मुक्त होनेके लिये प्रयत्न करते हैं, उन यतियोंको निर्वाण (मोक्ष) प्रदान करनेवाले आप ही हैं। आप ही सहस्रों किरणोंवाले सूर्य होकर तप रहे हैं। सुखके आश्रयरूप महेश्वर! आपको नमस्कार है॥ १४½॥

ब्रह्मा शतक्रतुर्विष्णुर्विश्वेदेवा महर्षयः॥ १५॥
न विदुस्त्वां तु तत्त्वेन कुतो वेत्स्यामहे वयम्।
त्वत्तः प्रवर्तते सर्वं त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्॥ १६॥

ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, विश्वेदेव तथा महर्षि भी आपको यथार्थरूपसे नहीं जानते हैं। फिर हम कैसे जान सकते हैं। आपसे ही सबकी उत्पत्ति होती है तथा आपमें ही यह सारा जगत् प्रतिष्ठित है॥ १५-१६॥

कालाख्यः पुरुषाख्यश्च ब्रह्माख्यश्च त्वमेव हि।
तनवस्ते स्मृतास्तिस्रः पुराणज्ञैः सुरर्षिभिः॥ १७॥

काल, पुरुष और ब्रह्म—इन तीन नामोंद्वारा आप ही प्रतिपादित होते हैं। पुराणवेत्ता देवर्षियोंने आपके ये तीन रूप बताये हैं॥ १७॥

अधिपौरुषमध्यात्ममधिभूताधिदैवतम् ।
अधिलोकाधिविज्ञानमधियज्ञस्त्वमेव हि॥ १८॥

अधिपौरुष, अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैवत, अधिलोक, अधिविज्ञान और अधियज्ञ आप ही हैं॥ १८॥

त्वां विदित्वात्मदेहस्थं दुर्विदं दैवतैरपि।
विद्वांसो यान्ति निर्मुक्ताः परं भावमनामयम्॥ १९॥

आप देवताओंके लिये भी दुर्ज्ञेय हैं। विद्वान् पुरुष आपको अपने ही शरीरमें स्थित अन्तर्यामी आत्माके रूपमें जानकर संसार-बन्धनसे मुक्त हो रोग-शोकसे रहित परमभावको प्राप्त होते हैं॥ १९॥

अनिच्छतस्तव विभो जन्ममृत्युरनेकतः।
द्वारं तु स्वर्गमोक्षाणामाक्षेप्ता त्वं ददासि च॥ २०॥

प्रभो! यदि आप स्वयं ही कृपा करके जीवका उद्धार करना न चाहें तो उसके बारंबार जन्म और मृत्यु होते रहते हैं। आप ही स्वर्ग और मोक्षके द्वार हैं। आप ही उनकी प्राप्तिमें बाधा डालनेवाले हैं तथा आप ही ये दोनों वस्तुएँ प्रदान करते हैं॥ २०॥

त्वं वै स्वर्गश्च मोक्षश्च कामः क्रोधस्त्वमेव च।
सत्त्वं रजस्तमश्चैव अधश्चोर्ध्वं त्वमेव हि॥ २१॥

आप ही स्वर्ग और मोक्ष हैं। आप ही काम और क्रोध हैं तथा आप ही सत्त्व, रज, तम, अधोलोक और ऊर्ध्वलोक हैं॥ २१॥

ब्रह्मा भवश्च विष्णुश्च स्कन्देन्द्रौ सविता यमः।
वरुणेन्दू मनुर्धाता विधाता त्वं धनेश्वरः॥ २२॥

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, स्कन्द, इन्द्र, सूर्य, यम, वरुण, चन्द्रमा, मनु, धाता, विधाता और धनाध्यक्ष कुबेर भी आप ही हैं॥ २२॥

भूर्वायुः सलिलाग्निश्च खं वाग्बुद्धिः स्थितिर्मतिः।
कर्म सत्यानृते चोभे त्वमेवास्ति च नास्ति च॥ २३॥

पृथ्वी, वायु, जल, अग्नि, आकाश, वाणी, बुद्धि, स्थिति, मति, कर्म, सत्य, असत्य तथा अस्ति और नास्ति भी आप ही हैं॥ २३॥

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च प्रकृतिभ्यः परं ध्रुवम्।
विश्वाविश्वपरोभावश्चिन्त्याचिन्त्यस्त्वमेव हि॥ २४॥

आप ही इन्द्रियाँ और इन्द्रियोंके विषय हैं। आप ही प्रकृतिसे परे निश्चल एवं अविनाशी तत्त्व हैं। आप ही विश्व और अविश्व—दोनोंसे परे विलक्षण भाव हैं तथा आप ही चिन्त्य और अचिन्त्य हैं॥ २४॥

यच्चैतत् परमं ब्रह्म यच्च तत् परमं पदम्।
या गतिः सांख्ययोगानां स भवान् नात्र संशयः॥ २५॥

जो यह परम ब्रह्म है, जो वह परमपद है तथा जो सांख्यवेत्ताओं और योगियोंकी गति है, वह आप ही हैं—इसमें संशय नहीं है॥ २५॥

नूनमद्य कृतार्थाः स्म नूनं प्राप्ताः सतां गतिम्।
यां गतिं प्रार्थयन्तीह ज्ञाननिर्मलबुद्धयः॥ २६॥

ज्ञानसे निर्मल बुद्धिवाले ज्ञानी पुरुष यहाँ जिस गतिको प्राप्त करना चाहते हैं, सत्पुरुषोंकी उसी गतिको निश्चित रूपसे हम प्राप्त हो गये हैं; अतः आज हम निश्चय ही कृतार्थ हो गये॥ २६॥

अहो मूढाः स्म सुचिरमिमं कालमचेतसा।
यन्न विद्मः परं देवं शाश्वतं यं विदुर्बुधाः॥ २७॥

अहो, हम अज्ञानवश इतने दीर्घकालतक मोहमें पड़े रहे हैं, क्योंकि जिन्हें विद्वान् पुरुष जानते हैं, उन्हीं सनातन परमदेवको हम अबतक नहीं जान सके थे॥ २७॥

सेयमासादिता साक्षात् त्वद्भक्तिर्जन्मभिर्मया।
भक्तानुग्रहकृद् देवो यं ज्ञात्वामृतमश्नुते॥ २८॥

अब अनेक जन्मोंके प्रयत्नसे मैंने यह साक्षात् आपकी भक्ति प्राप्त की है। आप ही भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले महान् देवता हैं, जिन्हें जानकर ज्ञानी पुरुष मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं॥ २८॥

देवासुरमुनीनां तु यच्च गुह्यं सनातनम्।
गुहायां निहितं ब्रह्म दुर्विज्ञेयं मुनेरपि॥ २९॥
स एष भगवान् देवः सर्वकृत् सर्वतोमुखः।
सर्वात्मा सर्वदर्शी च सर्वगः सर्ववेदिता॥ ३०॥

जो सनातन ब्रह्म देवताओं, असुरों और मुनियोंके लिये भी गुह्य है, जो हृदयगुहामें स्थित रहकर मननशील मुनिके लिये भी दुर्विज्ञेय बने हुए हैं, वही ये भगवान् हैं। ये ही सबकी सृष्टि करनेवाले देवता हैं। इनके सब ओर मुख हैं। ये सर्वात्मा, सर्वदर्शी, सर्वव्यापी और सर्वज्ञ हैं॥ २९-३०॥

देहकृद् देहभृद् देही देहभुग्देहिनां गतिः।
प्राणकृत् प्राणभृत् प्राणी प्राणदः प्राणिनां गतिः॥ ३१॥

आप शरीरके निर्माता और शरीरधारी हैं, इसीलिये देही कहलाते हैं। देहके भोक्ता और देहधारियोंकी परम गति हैं। आप ही प्राणोंके उत्पादक, प्राणधारी, प्राणी, प्राणदाता तथा प्राणियोंकी गति हैं॥ ३१॥

अध्यात्मगतिरिष्टानां ध्यायिनामात्मवेदिनाम्।
अपुनर्भवकामानां या गतिः सोऽयमीश्वरः॥ ३२॥

ध्यान करनेवाले प्रियभक्तोंकी जो अध्यात्मगति हैं तथा पुनर्जन्मकी इच्छा न रखनेवाले आत्मज्ञानी पुरुषोंकी जो गति बतायी गयी है, वह ये ईश्वर ही हैं॥ ३२॥

अयं च सर्वभूतानां शुभाशुभगतिप्रदः।
अयं च जन्ममरणे विदध्यात् सर्वजन्तुषु॥ ३३॥

ये ही समस्त प्राणियोंको शुभ और अशुभ गति प्रदान करनेवाले हैं। ये ही समस्त प्राणियोंको जन्म और मृत्यु प्रदान करते हैं॥ ३३॥

अयं संसिद्धिकामानां या गतिः सोऽयमीश्वरः।
भूराद्यान् सर्वभुवनानुत्पाद्य सदिवौकसः।
दधाति देवस्तनुभिरष्टाभिर्यो बिभर्ति च॥ ३४॥

संसिद्धि (मुक्ति)-की इच्छा रखनेवाले पुरुषोंकी जो परम गति है, वह ये ईश्वर ही हैं। देवताओंसहित भू आदि समस्त लोकोंको उत्पन्न करके ये महादेव ही (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, सूर्य, चन्द्र, यजमान—इन) अपनी आठ मूर्तियोंद्वारा उनका धारण और पोषण करते हैं॥ ३४॥

अतः प्रवर्तते सर्वमस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम्।
अस्मिंश्च प्रलयं याति अयमेकः सनातनः॥ ३५॥

इन्हींसे सबकी उत्पत्ति होती है और इन्हींमें सारा जगत् प्रतिष्ठित है और इन्हींमें सबका लय होता है। ये ही एक सनातन पुरुष हैं॥ ३५॥

अयं स सत्यकामानां सत्यलोकः परं सताम्।
अपवर्गश्च मुक्तानां कैवल्यं चात्मवेदिनाम्॥ ३६॥

ये ही सत्यकी इच्छा रखनेवाले सत्पुरुषोंके लिये सर्वोत्तम सत्यलोक हैं। ये ही मुक्त पुरुषोंके अपवर्ग (मोक्ष) और आत्मज्ञानियोंके कैवल्य हैं॥ ३६॥

अयं ब्रह्मादिभिः सिद्धैर्गुहायां गोपितः प्रभुः।
देवासुरमनुष्याणामप्रकाशो भवेदिति॥ ३७॥

देवता, असुर और मनुष्योंको इनका पता न लगने पाये, मानो इसीलिये ब्रह्मा आदि सिद्ध पुरुषोंने इन परमेश्वरको अपनी हृदयगुफामें छिपा रखा है॥ ३७॥

तं त्वां देवासुरनरास्तत्त्वेन न विदुर्भवम्।
मोहिताः खल्वनेनैव हृदिस्थेनाप्रकाशिना॥ ३८॥

हृदयमन्दिरमें गूढ़भावसे रहकर प्रकाशित न होनेवाले इन परमात्मदेवने सबको अपनी मायासे मोहित कर रखा है। इसीलिये देवता, असुर और मनुष्य आप महादेवको यथार्थ रूपसे नहीं जान पाते हैं॥ ३८॥

ये चैनं प्रतिपद्यन्ते भक्तियोगेन भाविताः।
तेषामेवात्मनाऽऽत्मानं दर्शयत्येष हृच्छयः॥ ३९॥

जो लोग भक्तियोगसे भावित होकर उन परमेश्वरकी शरण लेते हैं, उन्हींको यह हृदय-मन्दिरमें शयन करनेवाले भगवान् स्वयं अपना दर्शन देते हैं॥ ३९॥

यं ज्ञात्वा न पुनर्जन्म मरणं चापि विद्यते।
यं विदित्वा परं वेद्यं वेदितव्यं न विद्यते॥ ४०॥
यं लब्ध्वा परमं लाभं नाधिकं मन्यते बुधः।
यां सूक्ष्मां परमां प्राप्तिं गच्छन्नव्ययमक्षयम्॥ ४१॥
यं सांख्या गुणतत्त्वज्ञाः सांख्यशास्त्रविशारदाः।
सूक्ष्मज्ञानतराः सूक्ष्मं ज्ञात्वा मुच्यन्ति बन्धनैः॥ ४२॥
यं च वेदविदो वेद्यं वेदान्ते च प्रतिष्ठितम्।
प्राणायामपरा नित्यं यं विशन्ति जपन्ति च॥ ४३॥
ओंकाररथमारुह्य ते विशन्ति महेश्वरम्।
अयं स देवयानानामादित्यो द्वारमुच्यते॥ ४४॥

जिन्हें जान लेनेपर फिर जन्म और मरणका बन्धन नहीं रह जाता तथा जिनका ज्ञान प्राप्त हो जानेपर फिर दूसरे किसी उत्कृष्ट ज्ञेय तत्त्वका जानना शेष नहीं रहता है, जिन्हें प्राप्त कर लेनेपर विद्वान् पुरुष बड़े-से-बड़े लाभको भी उनसे अधिक नहीं मानता है, जिस सूक्ष्म परम पदार्थको पाकर ज्ञानी मनुष्य ह्रास और नाशसे रहित परमपदको प्राप्त कर लेता है, सत्त्व आदि तीन गुणों तथा चौबीस तत्त्वोंको जाननेवाले सांख्यज्ञान-विशारद सांख्ययोगी विद्वान् जिस सूक्ष्म तत्त्वको जानकर उस सूक्ष्मज्ञानरूपी नौकाके द्वारा संसारसमुद्रसे पार होते और सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त हो जाते हैं, प्राणायाम-परायण पुरुष वेदवेत्ताओंके जानने योग्य तथा वेदान्तमें प्रतिष्ठित जिस नित्य तत्त्वका ध्यान और जप करते हैं और उसीमें प्रवेश कर जाते हैं; वही ये महेश्वर हैं। ॐकाररूपी रथपर आरूढ़ होकर वे सिद्ध पुरुष इन्हींमें प्रवेश करते हैं। ये ही देवयानके द्वाररूप सूर्य कहलाते हैं॥ ४०—४४॥

अयं च पितृयानानां चन्द्रमा द्वारमुच्यते।
एष काष्ठा दिशश्चैव संवत्सरयुगादि च॥ ४५॥
दिव्यादिव्यः परो लाभ अयने दक्षिणोत्तरे।

ये ही पितृयान-मार्गके द्वार चन्द्रमा कहलाते हैं। काष्ठा, दिशा, संवत्सर और युग आदि भी ये ही हैं। दिव्य लाभ (देवलोकका सुख), अदिव्य लाभ (इस लोकका सुख), परम लाभ (मोक्ष), उत्तरायण और दक्षिणायन भी ये ही हैं॥ ४५½॥

एनं प्रजापतिः पूर्वमाराध्य बहुभिः स्तवैः॥ ४६॥
प्रजार्थं वरयामास नीललोहितसंज्ञितम्।

पूर्वकालमें प्रजापतिने नाना प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा इन्हीं नीललोहित नामवाले भगवान्‌की आराधना करके प्रजाकी सृष्टिके लिये वर प्राप्त किया था॥ ४६½॥

ऋग्भिर्यमनुशासन्ति तत्त्वे कर्मणि बह्वृचाः॥ ४७॥
यजुर्भिर्यत्त्रिधा वेद्यं जुह्वत्यध्वर्यवोऽध्वरे।
सामभिर्यं च गायन्ति सामगाः शुद्धबुद्धयः॥ ४८॥
ऋतं सत्यं परं ब्रह्म स्तुवन्त्याथर्वणा द्विजाः।
यज्ञस्य परमा योनिः पतिश्चायं परः स्मृतः॥ ४९॥

ऋग्वेदके विद्वान् तात्त्विक यज्ञकर्ममें ऋग्वेदके मन्त्रोंद्वारा जिनकी महिमाका गान करते हैं, यजुर्वेदके ज्ञाता द्विज यज्ञमें यजुर्मन्त्रोंद्वारा दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य और आहवनीय—इन त्रिविध रूपोंसे जाननेयोग्य जिन महादेवजीके उद्देश्यसे आहुति देते हैं तथा शुद्ध बुद्धिसे युक्त सामवेदके गानेवाले विद्वान् साममन्त्रोंद्वारा जिनकी स्तुति गाते हैं, अथर्ववेदी ब्राह्मण ऋत, सत्य एवं परब्रह्मनामसे जिनकी स्तुति करते हैं, जो यज्ञके परम कारण हैं, वे ही ये परमेश्वर समस्त यज्ञोंके परमपति माने गये हैं॥ ४७—४९॥

रात्र्यहःश्रोत्रनयनः पक्षमासशिरोभुजः।
ऋतुवीर्यस्तपोधैर्यो ह्यब्दगुह्योरुपादवान्॥ ५०॥

रात और दिन इनके कान और नेत्र हैं, पक्ष और मास इनके मस्तक और भुजाएँ हैं, ऋतु वीर्य है, तपस्या धैर्य है तथा वर्ष गुह्य-इन्द्रिय, ऊरु और पैर हैं॥ ५०॥

मृत्युर्यमो हुताशश्च कालः संहारवेगवान्।
कालस्य परमा योनिः कालश्चायं सनातनः॥ ५१॥

मृत्यु, यम, अग्नि, संहारके लिये वेगशाली काल, कालके परम कारण तथा सनातन काल भी—ये महादेव ही हैं॥ ५१॥

चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ ग्रहाश्च सह वायुना।
ध्रुवः सप्तर्षयश्चैव भुवनाः सप्त एव च॥ ५२॥
प्रधानं महदव्यक्तं विशेषान्तं सवैकृतम्।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं भूतादि सदसच्च यत्॥ ५३॥
अष्टौ प्रकृतयश्चैव प्रकृतिभ्यश्च यः परः।

चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र, ग्रह, वायु, ध्रुव, सप्तर्षि, सात

भुवन, मूल प्रकृति, महत्तत्त्व, विकारोंके सहित विशेषपर्यन्त समस्त तत्त्व, ब्रह्माजीसे लेकर कीटपर्यन्त सम्पूर्ण जगत्, भूतादि, सत् और असत् आठ प्रकृतियाँ तथा प्रकृतिसे परे जो पुरुष है, इन सबके रूपमें ये महादेवजी ही विराजमान हैं॥ ५२-५३½ ॥

अस्य देवस्य यद् भागं कृत्स्नं सम्परिवर्तते॥ ५४॥
एतत् परममानन्दं यत् तच्छाश्वतमेव च।
एषा गतिर्विरक्तानामेष भावः परः सताम्॥ ५५॥

इन महादेवजीका अंशभूत जो सम्पूर्ण जगत् चक्रकी भाँति निरन्तर चलता रहता है, वह भी ये ही हैं। ये परमानन्दस्वरूप हैं। जो शाश्वत ब्रह्म है, वह भी ये ही हैं। ये ही विरक्तोंकी गति हैं और ये ही सत्पुरुषोंके परमभाव हैं॥ ५४-५५॥

एतत् पदमनुद्विग्नमेतद् ब्रह्म सनातनम्।
शास्त्रवेदाङ्गविदुषामेतद् ध्यानं परं पदम्॥ ५६॥

ये ही उद्वेगरहित परमपद हैं। ये ही सनातन ब्रह्म हैं। शास्त्रों और वेदाङ्गोंके ज्ञाता पुरुषोंके लिये ये ही ध्यान करनेके योग्य परमपद हैं॥ ५६॥

इयं सा परमा काष्ठा इयं सा परमा कला।
इयं सा परमा सिद्धिरियं सा परमा गतिः॥ ५७॥
इयं सा परमा शान्तिरियं सा निर्वृतिः परा।
यं प्राप्य कृतकृत्याः स्म इत्यमन्यन्त योगिनः॥ ५८॥

यही वह पराकाष्ठा, यही वह परम कला, यही वह परम सिद्धि और यही वह परम गति हैं एवं यही वह परम शान्ति और वह परम आनन्द भी हैं, जिसको पाकर योगीजन अपनेको कृतकृत्य मानते हैं॥

इयं तुष्टिरियं सिद्धिरियं श्रुतिरियं स्मृतिः।
अध्यात्मगतिरिष्टानां विदुषां प्राप्तिरव्यया॥ ५९॥

यह तुष्टि, यह सिद्धि, यह श्रुति, यह स्मृति, भक्तोंकी यह अध्यात्मगति तथा ज्ञानी पुरुषोंकी यह अक्षय प्राप्ति (पुनरावृत्तिरहित मोक्षलाभ) आप ही हैं॥

यजतां कामयानानां मखैर्विपुलदक्षिणैः।
या गतिर्यज्ञशीलानां सा गतिस्त्वं न संशयः॥ ६०॥

प्रचुर दक्षिणावाले यज्ञोंद्वारा सकाम भावसे यजन करनेवाले यजमानोंकी जो गति होती है, वह गति आप ही हैं। इसमें संशय नहीं है॥ ६०॥

सम्यग् योगजपैः शान्तिर्नियमैर्देहतापनैः।
तप्यतां या गतिर्देव परमा सा गतिर्भवान्॥ ६१॥

देव! उत्तम योग-जप तथा शरीरको सुखा देनेवाले नियमोंद्वारा जो शान्ति मिलती है और तपस्या करनेवाले पुरुषोंको जो दिव्य गति प्राप्त होती है, वह परम गति आप ही हैं॥ ६१॥

कर्मन्यासकृतानां च विरक्तानां ततस्ततः।
या गतिर्ब्रह्मसदने सा गतिस्त्वं सनातन॥ ६२॥

सनातन देव! कर्म-संन्यासियोंको और विरक्तोंको ब्रह्मलोकमें जो उत्तम गति प्राप्त होती है, वह आप ही हैं॥ ६२॥

अपुनर्भवकामानां वैराग्ये वर्ततां च या।
प्रकृतीनां लयानां च सा गतिस्त्वं सनातन॥ ६३॥

सनातन परमेश्वर! जो मोक्षकी इच्छा रखकर वैराग्यके मार्गपर चलते हैं उन्हें, और जो प्रकृतिमें लयको प्राप्त होते हैं उन्हें, जो गति उपलब्ध होती है, वह आप ही हैं॥ ६३॥

ज्ञानविज्ञानयुक्तानां निरुपाख्या निरञ्जना।
कैवल्या या गतिर्देव परमा सा गतिर्भवान्॥ ६४॥

देव! ज्ञान और विज्ञानसे युक्त पुरुषोंको जो सारूप्य आदि नामसे रहित, निरञ्जन एवं कैवल्यरूप परमगति प्राप्त होती है, वह आप ही हैं॥ ६४॥

वेदशास्त्रपुराणोक्ताः पञ्चैता गतयः स्मृताः।
त्वत्प्रसादाद्धि लभ्यन्ते न लभ्यन्तेऽन्यथा विभो॥ ६५॥

प्रभो! वेद-शास्त्र और पुराणोंमें जो ये पाँच गतियाँ बतायी गयी हैं, ये आपकी कृपासे ही प्राप्त होती हैं, अन्यथा नहीं॥ ६५॥

इति तण्डिस्तपोराशिस्तुष्टावेशानमात्मना।
जगौ च परमं ब्रह्म यत् पुरा लोककृज्जगौ॥ ६६॥

इस प्रकार तपस्याकी निधिरूप तण्डिने अपने मनसे महादेवजीकी स्तुति की और पूर्वकालमें ब्रह्माजीने जिस परम ब्रह्मस्वरूप स्तोत्रका गान किया था, उसीका स्वयं भी गान किया॥ ६६॥

उपमन्युरुवाच

एवं स्तुतो महादेवस्तण्डिना ब्रह्मवादिना।
उवाच भगवान् देव उमया सहितः प्रभुः॥ ६७॥

उपमन्यु कहते हैं—ब्रह्मवादी तण्डिके इस प्रकार स्तुति करनेपर पार्वतीसहित प्रभावशाली भगवान् महादेव उनसे बोले—॥ ६७॥

ब्रह्मा शतक्रतुर्विष्णुर्विश्वेदेवा महर्षयः।
न विदुस्त्वामिति ततस्तुष्टः प्रोवाच तं शिवः॥ ६८॥

तण्डिने स्तुति करते हुए यह बात कही थी कि 'ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, विश्वेदेव और महर्षि भी आपको यथार्थरूपसे नहीं जानते हैं', इससे भगवान् शंकर बहुत

संतुष्ट हुए और बोले—॥ ६८ ॥

श्रीभगवानुवाच

अक्षयश्चाव्ययश्चैव भविता दुःखवर्जितः।
यशस्वी तेजसा युक्तो दिव्यज्ञानसमन्वितः॥ ६९॥

भगवान् श्रीशिवने कहा—ब्रह्मन्! तुम अक्षय, अविकारी , दुःखरहित, यशस्वी, तेजस्वी एवं दिव्यज्ञानसे सम्पन्न होओगे॥ ६९ ॥

ऋषीणामभिगम्यश्च सूत्रकर्ता सुतस्तव।
मत्प्रसादाद् द्विजश्रेष्ठ भविष्यति न संशयः॥ ७०॥
कं वा कामं ददाम्यद्य ब्रूहि यद् वत्स काङ्क्षसे।

द्विजश्रेष्ठ! मेरी कृपासे तुम्हें एक विद्वान् पुत्र प्राप्त होगा, जिसके पास ऋषिलोग भी शिक्षा ग्रहण करनेके लिये जायँगे। वह कल्पसूत्रका निर्माण करेगा, इसमें संशय नहीं है। वत्स! बोलो, तुम क्या चाहते हो? अब मैं तुम्हें कौन-सा मनोवांछित वर प्रदान करूँ?॥ ७०½ ॥

प्राञ्जलिः स उवाचेदं त्वयि भक्तिर्दृढास्तु मे॥ ७१॥

तब तण्डिने हाथ जोड़कर कहा—'प्रभो! आपके चरणारविन्दमें मेरी सुदृढ़ भक्ति हो'॥ ७१ ॥

उपमन्युरुवाच

एतान् दत्त्वा वरान् देवो वन्द्यमानः सुरर्षिभिः।
स्तूयमानश्च विबुधैस्तत्रैवान्तरधीयत॥ ७२॥

उपमन्युने कहा—देवर्षियोंद्वारा वन्दित और देवताओंद्वारा प्रशंसित होते हुए महादेवजी इन वरोंको देकर वहीं अन्तर्धान हो गये॥ ७२ ॥

अन्तर्हिते भगवति सानुगे यादवेश्वर।
ऋषिराश्रममागम्य ममैतत् प्रोक्तवानिह॥ ७३॥

यादवेश्वर! जब पार्षदोंसहित भगवान् अन्तर्धान हो गये, तब ऋषिने मेरे आश्रमपर आकर यहाँ मुझसे ये सब बातें बतायीं॥ ७३ ॥

यानि च प्रथितान्यादौ तण्डिराख्यातवान् मम।
नामानि मानवश्रेष्ठ तानि त्वं शृणु सिद्धये॥ ७४॥

मानवश्रेष्ठ! तण्डिमुनिने जिन आदिकालके प्रसिद्ध नामोंका मेरे सामने वर्णन किया, उन्हें आप भी सुनिये। वे सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं॥ ७४ ॥

दशनामसहस्राणि देवेष्वाह पितामहः।
शर्वस्य शास्त्रेषु तथा दशनामशतानि च॥ ७५॥

पितामह ब्रह्माने पूर्वकालमें देवताओंके निकट महादेवजीके दस हजार नाम बताये थे और शास्त्रोंमें भी उनके सहस्र नाम वर्णित हैं॥ ७५ ॥

गुह्यानीमानि नामानि तण्डिर्भगवतोऽच्युत।
देवप्रसादाद् देवेशः पुरा प्राह महात्मने॥ ७६॥

अच्युत! पहले देवेश्वर ब्रह्माजीने महादेवजीकी कृपासे महात्मा तण्डिके निकट जिन नामोंका वर्णन किया था, महर्षि तण्डिने भगवान् महादेवके उन्हीं समस्त गोपनीय नामोंका मेरे समक्ष प्रतिपादन किया था॥ ७६ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि मेघवाहनपर्वाख्याने षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत अनुशासनपर्वके अन्तर्गत दानधर्मपर्वमें मेघवाहनपर्वकी कथाविषयक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

शिवसहस्रनामस्तोत्र और उसके पाठका फल

वासुदेव उवाच

ततः स प्रयतो भूत्वा मम तात युधिष्ठिर।
प्राञ्जलिः प्राह विप्रर्षिर्नामसंग्रहमादितः॥ १॥

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—तात युधिष्ठिर! तदनन्तर ब्रह्मर्षि उपमन्युने मन और इन्द्रियोंको एकाग्र करके पवित्र हो हाथ जोड़ मेरे समक्ष वह नाम-संग्रह आदिसे ही कहना आरम्भ किया॥ १ ॥

उपमन्युरुवाच

ब्रह्मप्रोक्तैर्ऋषिप्रोक्तैर्वेदवेदाङ्गसम्भवैः ।
सर्वलोकेषु विख्यातं स्तुत्यं स्तोष्यामि नामभिः॥ २॥

उपमन्यु बोले—मैं ब्रह्माजीके कहे हुए, ऋषियोंके बताये हुए तथा वेद-वेदाङ्गोंसे प्रकट हुए नामोंद्वारा सर्वलोकविख्यात एवं स्तुतिके योग्य भगवान्‌की स्तुति करूँगा॥ २ ॥

महद्भिर्विहितैः सत्यैः सिद्धैः सर्वार्थसाधकैः।
ऋषिणा तण्डिना भक्त्या कृतैर्वेदकृतात्मना॥ ३॥
यथोक्तैः साधुभिः ख्यातैर्मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
प्रवरं प्रथमं स्वर्ग्यं सर्वभूतहितं शुभम्॥ ४॥
श्रुतैः सर्वत्र जगति ब्रह्मलोकावतारितैः।
सत्यैस्तत् परमं ब्रह्म ब्रह्मप्रोक्तं सनातनम्॥ ५॥
वक्ष्ये यदुकुलश्रेष्ठ शृणुष्वावहितो मम।
वरयैनं भवं देवं भक्तस्त्वं परमेश्वरम्॥ ६॥

इन सब नामोंका आविष्कार महापुरुषोंने किया है तथा वेदोंमें दत्तचित्त रहनेवाले महर्षि तण्डिने भक्तिपूर्वक इनका संग्रह किया है। इसलिये ये सभी नाम सत्य, सिद्ध तथा सम्पूर्ण मनोरथोंके साधक हैं। विख्यात श्रेष्ठ पुरुषों तथा तत्त्वदर्शी मुनियोंने इन सभी नामोंका यथावत्‌रूपसे प्रतिपादन किया है। महर्षि तण्डिने ब्रह्मलोकसे मर्त्यलोकमें इन नामोंको उतारा है; इसलिये ये सत्यनाम सम्पूर्ण जगत्‌में आदरपूर्वक सुने गये हैं। यदुकुलतिलक श्रीकृष्ण! यह ब्रह्माजीका कहा हुआ सनातन शिव-स्तोत्र अन्य स्तोत्रोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ है और उत्तम वेदमय है। सब स्तोत्रोंमें इसका प्रथम स्थान है। यह स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला, सम्पूर्ण भूतोंके लिये हितकर एवं शुभकारक है। इसका मैं आपसे वर्णन करूँगा। आप सावधान होकर मेरे मुखसे इसका श्रवण करें। आप परमेश्वर महादेवजीके भक्त हैं; अतः इस शिवस्वरूप स्तोत्रका वरण करें॥ ३—६॥

तेन ते श्रावयिष्यामि यत् तद् ब्रह्म सनातनम्।
न शक्यं विस्तरात् कृत्स्नं वक्तुं सर्वस्य केनचित्॥ ७॥
युक्तेनापि विभूतीनामपि वर्षशतैरपि।
यस्यादिर्मध्यमन्तं च सुरैरपि न गम्यते॥ ८॥
कस्तस्य शक्नुयाद् वक्तुं गुणान् कात्स्न्र्येन माधव।

शिवभक्त होनेके ही कारण मैं यह सनातन वेदस्वरूप स्तोत्र आपको सुनाता हूँ। महादेवजीके इस सम्पूर्ण नामसमूहका पूर्णरूपसे विस्तारपूर्वक वर्णन तो कोई कर ही नहीं सकता। कोई व्यक्ति योगयुक्त होनेपर भी भगवान् शिवकी विभूतियोंका सैकड़ों वर्षोंमें भी वर्णन नहीं कर सकता। माधव! जिनके आदि, मध्य और अन्तका पता देवता भी नहीं पाते हैं, उनके गुणोंका पूर्णरूपसे वर्णन कौन कर सकता है?॥ ७-८½॥

किं तु देवस्य महतः संक्षिप्तार्थपदाक्षरम्॥ ९॥
शक्तितश्चरितं वक्ष्ये प्रसादात् तस्य धीमतः।
अप्राप्य तु ततोऽनुज्ञां न शक्यः स्तोतुमीश्वरः॥ १०॥

परंतु मैं अपनी शक्तिके अनुसार उन बुद्धिमान् महादेवजीकी ही कृपासे संक्षिप्त अर्थ, पद और अक्षरोंसे युक्त उनके चरित्र एवं स्तोत्रका वर्णन करूँगा। उनकी आज्ञा प्राप्त किये बिना उन महेश्वरकी स्तुति नहीं की जा सकती है॥ ९-१०॥

यदा तेनाभ्यनुज्ञातः स्तुतो वै स तदा मया।
अनादिनिधनस्याहं जगद्योनेर्महात्मनः॥ ११॥
नाम्नां कंचित् समुद्देशं वक्ष्याम्यव्यक्तयोनिनः।

जब उनकी आज्ञा प्राप्त हुई है, तभी मैंने उनकी स्तुति की है। आदि-अन्तसे रहित तथा जगत्‌के कारणभूत अव्यक्तयोनि महात्मा शिवके नामोंका कुछ संक्षिप्त संग्रह मैं बता रहा हूँ॥ ११½॥

वरदस्य वरेण्यस्य विश्वरूपस्य धीमतः॥ १२॥
शृणु नाम्नां च यं कृष्ण यदुक्तं पद्मयोनिना।

श्रीकृष्ण! जो वरदायक, वरेण्य (सर्वश्रेष्ठ), विश्वरूप और बुद्धिमान् हैं, उन भगवान् शिवका पद्मयोनि ब्रह्माजीके द्वारा वर्णित नाम-संग्रह श्रवण करो॥

दशनामसहस्राणि यान्याह प्रपितामहः॥ १३॥
तानि निर्मथ्य मनसा दध्नो घृतमिवोद्धृतम्।

प्रपितामह ब्रह्माजीने जो दस हजार नाम बताये थे, उन्हींको मनरूपी मथानीसे मथकर मथे हुए दहीसे घीकी भाँति यह सहस्रनामस्तोत्र निकाला गया है॥

गिरेः सारं यथा हेम पुष्पसारं यथा मधु॥ १४॥
घृतात् सारं यथा मण्डस्तथैतत् सारमुद्धृतम्।

जैसे पर्वतका सार सुवर्ण, फूलका सार मधु और घीका सार मण्ड है, उसी प्रकार यह दस हजार नामोंका सार उद्धृत किया गया है॥ १४½॥

सर्वपापापहमिदं चतुर्वेदसमन्वितम्॥ १५॥
प्रयत्नेनाधिगन्तव्यं धार्यं च प्रयतात्मना।
माङ्गल्यं पौष्टिकं चैव रक्षोघ्नं पावनं महत्॥ १६॥

यह सहस्रनाम सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला और चारों वेदोंके समन्वयसे युक्त है। मनको वशमें करके प्रयत्नपूर्वक इसका ज्ञान प्राप्त करे और सदा अपने मनमें इसको धारण करे। यह मंगलजनक, पुष्टिकारक, राक्षसोंका विनाशक तथा परम पावन है॥

इदं भक्ताय दातव्यं श्रद्दधानास्तिकाय च।
नाश्रद्दधानरूपाय नास्तिकायाजितात्मने॥ १७॥

जो भक्त हो, श्रद्धालु और आस्तिक हो, उसीको इसका उपदेश देना चाहिये। अश्रद्धालु, नास्तिक और अजितात्मा पुरुषको इसका उपदेश नहीं देना चाहिये॥

यश्चाभ्यसूयते देवं कारणात्मानमीश्वरम्।
स कृष्ण नरकं याति सह पूर्वैः सहात्मजैः॥ १८॥

श्रीकृष्ण! जो जगत्‌के कारणरूप ईश्वर महादेवके प्रति दोषदृष्टि रखता है, वह पूर्वजों और अपनी संतानके सहित नरकमें पड़ता है॥ १८॥

इदं ध्यानमिदं योगमिदं ध्येयमनुत्तमम्।
इदं जप्यमिदं ज्ञानं रहस्यमिदमुत्तमम्॥ १९॥

यह सहस्रनामस्तोत्र ध्यान है, यह योग है, यह

सर्वोत्तम ध्येय है, यह जपनीय मन्त्र है, यह ज्ञान है और यह उत्तम रहस्य है॥ १९॥

यं ज्ञात्वा अन्तकालेऽपि गच्छेत परमां गतिम्।
पवित्रं मङ्गलं मेध्यं कल्याणमिदमुत्तमम्॥ २०॥
इदं ब्रह्मा पुरा कृत्वा सर्वलोकपितामहः।
सर्वस्तवानां राजत्वे दिव्यानां समकल्पयत्॥ २१॥
तदाप्रभृति चैवायमीश्वरस्य महात्मनः।
स्तवराज इति ख्यातो जगत्यमरपूजितः॥ २२॥

जिसको अन्तकालमें भी जान लेनेपर मनुष्य परमगतिको पा लेता है, वह यह सहस्रनामस्तोत्र परम पवित्र, मंगलकारक, बुद्धिवर्द्धक, कल्याणमय तथा उत्तम है। सम्पूर्ण लोकोंके पितामह ब्रह्माजीने पूर्वकालमें इस स्तोत्रका आविष्कार करके इसे समस्त दिव्यस्तोत्रोंके राजाके पदपर प्रतिष्ठित किया था। तबसे महात्मा ईश्वर महादेवका यह देवपूजित स्तोत्र संसारमें 'स्तवराज' के नामसे विख्यात हुआ॥ २०—२२॥

ब्रह्मलोकादयं स्वर्गे स्तवराजोऽवतारितः।
यतस्तण्डिः पुरा प्राप तेन तण्डिकृतोऽभवत्॥ २३॥

ब्रह्मलोकसे यह स्तवराज स्वर्गलोकमें उतारा गया। पहले इसे तण्डिमुनिने प्राप्त किया था, इसलिये यह 'तण्डिकृत सहस्रनामस्तवराज' के रूपमें प्रसिद्ध हुआ॥

स्वर्गाच्चैवात्र भूर्लोकं तण्डिना ह्यवतारितः।
सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्वपापप्रणाशनम्॥ २४॥
निगदिष्ये महाबाहो स्तवानामुत्तमं स्तवम्।

तण्डिने स्वर्गसे उसे इस भूतलपर उतारा था। यह सम्पूर्ण मंगलोंका भी मंगल तथा समस्त पापोंका नाश करनेवाला है। महाबाहो! सब स्तोत्रोंमें उत्तम इस सहस्रनामस्तोत्रका मैं आपसे वर्णन करूँगा॥ २४½॥

ब्रह्मणामपि यद् ब्रह्म पराणामपि यत् परम्॥ २५॥
तेजसामपि यत् तेजस्तपसामपि यत् तपः।
शान्तानामपि यः शान्तो द्युतीनामपि या द्युतिः॥ २६॥
दान्तानामपि यो दान्तो धीमतामपि या च धीः।
देवानामपि यो देव ऋषीणामपि यस्त्वृषिः॥ २७॥
यज्ञानामपि यो यज्ञः शिवानामपि यः शिवः।
रुद्राणामपि यो रुद्रः प्रभा प्रभवतामपि॥ २८॥
योगिनामपि यो योगी कारणानां च कारणम्।
यतो लोकाः सम्भवन्ति न भवन्ति यतः पुनः॥ २९॥
सर्वभूतात्मभूतस्य हरस्यामिततेजसः।
अष्टोत्तरसहस्रं तु नाम्नां शर्वस्य मे शृणु।
यच्छ्रुत्वा मनुजव्याघ्र सर्वान् कामानवाप्स्यसि॥ ३०॥

जो वेदोंके भी वेद, उत्तम वस्तुओंमें भी परम उत्तम, तेजके भी तेज, तपके भी तप, शान्त पुरुषोंमें भी परम शान्त, कान्तिकी भी कान्ति, जितेन्द्रियोंमें भी परम जितेन्द्रिय, बुद्धिमानोंकी भी बुद्धि, देवताओंके भी देवता, ऋषियोंके भी ऋषि, यज्ञोंके भी यज्ञ, कल्याणोंके भी कल्याण, रुद्रोंके भी रुद्र, प्रभावशाली ईश्वरोंकी भी प्रभा (ऐश्वर्य), योगियोंके भी योगी तथा कारणोंके भी कारण हैं। जिनसे सम्पूर्ण लोक उत्पन्न होते और फिर उन्हींमें विलीन हो जाते हैं, जो सम्पूर्ण भूतोंके आत्मा हैं, उन्हीं अमित तेजस्वी भगवान् शिवके एक हजार आठ नामोंका वर्णन मुझसे सुनिये। पुरुषसिंह! इसका श्रवणमात्र करके आप अपनी सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेंगे॥ २५—३०॥

स्थिरः स्थाणुः प्रभुर्भीमः प्रवरो वरदो वरः।
सर्वात्मा सर्वविख्यातः सर्वः सर्वकरो भवः॥ ३१॥

१ स्थिरः—चंचलतारहित, कूटस्थ एवं नित्य, **२ स्थाणुः**—गृहके आधारभूत खम्भके समान समस्त जगत्के आधारस्तम्भ, **३ प्रभुः**—समर्थ ईश्वर, **४ भीमः**—संहारकारी होनेके कारण भयंकर, **५ प्रवरः**—सर्वश्रेष्ठ, **६ वरदः**—अभीष्ट वर देनेवाले, **७ वरः**—वरण करने योग्य, वरस्वरूप, **८ सर्वात्मा**—सबके आत्मा, **९ सर्वविख्यातः**—सर्वत्र प्रसिद्ध, **१० सर्वः**—विश्वात्मा होनेके कारण सर्वस्वरूप, **११ सर्वकरः**—सम्पूर्ण जगत्के स्रष्टा, **१२ भवः**—सबकी उत्पत्तिके स्थान॥ ३१॥

जटी चर्मी शिखण्डी च सर्वाङ्गः सर्वभावनः।
हरश्च हरिणाक्षश्च सर्वभूतहरः प्रभुः॥ ३२॥

१३ जटी—जटाधारी, **१४ चर्मी**—व्याघ्रचर्म धारण करनेवाले, **१५ शिखण्डी**—शिखाधारी, **१६ सर्वाङ्गः**—सम्पूर्ण अंगोंसे सम्पन्न, **१७ सर्वभावनः**—सबके उत्पादक, **१८ हरः**—पापहारी, **१९ हरिणाक्षः**—मृगके समान विशाल नेत्रवाले, **२० सर्वभूतहरः**—सम्पूर्ण भूतोंका संहार करनेवाले, **२१ प्रभुः**—स्वामी॥

प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च नियतः शाश्वतो ध्रुवः।
श्मशानवासी भगवान् खचरो गोचरोऽर्दनः॥ ३३॥

२२ प्रवृत्तिः—प्रवृत्तिमार्ग, **२३ निवृत्तिः**—निवृत्तिमार्ग, **२४ नियतः**—नियमपरायण, **२५ शाश्वतः**—नित्य, **२६ ध्रुवः**—अचल, **२७ श्मशानवासी**—श्मशानभूमिमें निवास करनेवाले, **२८ भगवान्**—सम्पूर्ण ऐश्वर्य, ज्ञान, यज्ञ, श्री, वैराग्य और धर्मसे

सम्पन्न, २९ **खचरः**—आकाशमें विचरनेवाले, ३० **गोचरः**—पृथ्वीपर विचरनेवाले, ३१ **अर्दनः**—पापियोंको पीड़ा देनेवाले॥ ३३॥

अभिवाद्यो महाकर्मा तपस्वी भूतभावनः।
उन्मत्तवेषप्रच्छन्नः सर्वलोकप्रजापतिः॥ ३४॥

३२ **अभिवाद्यः**—नमस्कारके योग्य, ३३ **महाकर्मा**—महान् कर्म करनेवाले, ३४ **तपस्वी**—तपस्यामें संलग्न, ३५ **भूतभावनः**—संकल्पमात्रसे आकाश आदि भूतोंकी सृष्टि करनेवाले, ३६ **उन्मत्तवेषप्रच्छन्नः**—उन्मत्त वेषमें छिपे रहनेवाले, ३७ **सर्वलोकप्रजापतिः**—सम्पूर्ण लोकोंकी प्रजाओंके पालक॥ ३४॥

महारूपो महाकायो वृषरूपो महायशाः।
महात्मा सर्वभूतात्मा विश्वरूपो महाहनुः॥ ३५॥

३८ **महारूपः**—महान् रूपवाले, ३९ **महाकायः**—विराट्रूप, ४० **वृषरूपः**—धर्मस्वरूप, ४१ **महायशाः**—महान् यशस्वी, ४२ **महात्मा**—,४३ **सर्वभूतात्मा**—सम्पूर्ण भूतोंके आत्मा, ४४ **विश्वरूपः**—सम्पूर्ण विश्व जिनका रूप है वे, ४५ **महाहनुः**—विशाल ठोढ़ीवाले॥ ३५॥

लोकपालोऽन्तर्हितात्मा प्रसादो हयगर्दभिः।
पवित्रं च महांश्चैव नियमो नियमाश्रितः॥ ३६॥

४६ **लोकपालः**—लोकरक्षक, ४७ **अन्तर्हितात्मा**—अदृश्य स्वरूपवाले, ४८ **प्रसादः**—प्रसन्नतासे परिपूर्ण, ४९ **हयगर्दभिः**—खच्चर जुते रथपर चलनेवाले, ५० **पवित्रम्**—शुद्ध वस्तुरूप, ५१ **महान्**—पूजनीय, ५२ **नियमः**—शौच-संतोष आदि नियमोंके पालनसे प्राप्त होने योग्य, ५३ **नियमाश्रितः**—नियमोंके आश्रयभूत॥ ३६॥

सर्वकर्मा स्वयम्भूत आदिरादिकरो निधिः।
सहस्राक्षो विशालाक्षः सोमो नक्षत्रसाधकः॥ ३७॥

५४ **सर्वकर्मा**—सारा जगत् जिनका कर्म है वे, ५५ **स्वयम्भूतः**—नित्यसिद्ध, ५६ **आदिः**—सबसे प्रथम, ५७ **आदिकरः**—आदि पुरुष हिरण्यगर्भकी सृष्टि करनेवाले, ५८ **निधिः**—अक्षय ऐश्वर्यके भण्डार, ५९ **सहस्राक्षः**—सहस्रों नेत्रवाले, ६० **विशालाक्षः**—विशाल नेत्रवाले, ६१ **सोमः**—चन्द्रस्वरूप, ६२ **नक्षत्रसाधकः**—नक्षत्रोंके साधक॥ ३७॥

चन्द्रः सूर्यः शनिः केतुर्ग्रहो ग्रहपतिर्वरः।
अत्रिरत्र्या नमस्कर्ता मृगबाणार्पणोऽनघः॥ ३८॥

६३ **चन्द्रः**—चन्द्रमारूपसे आह्लादकारी, ६४ **सूर्यः**—सबकी उत्पत्तिके हेतुभूत सूर्य, ६५ **शनिः**—, ६६ **केतुः**—, ६७ **ग्रहः**—चन्द्रमा और सूर्यपर ग्रहण लगानेवाला राहु, ६८ **ग्रहपतिः**—ग्रहोंके पालक, ६९ **वरः**—वरणीय, ७० **अत्रिः**—अत्रि ऋषिस्वरूप, ७१ **अत्र्या नमस्कर्ता**—अत्रिपत्नी अनसूयाको दुर्वासारूपसे नमस्कार करनेवाले, ७२ **मृगबाणार्पणः**—मृगरूपधारी यज्ञपर बाण चलानेवाले, ७३ **अनघः**—पापरहित॥ ३८॥

महातपा घोरतपा अदीनो दीनसाधकः।
संवत्सरकरो मन्त्रः प्रमाणं परमं तपः॥ ३९॥

७४ **महातपाः**—महान् तपस्वी, ७५ **घोरतपाः**—भयंकर तपस्या करनेवाले, ७६ **अदीनः**—उदार, ७७ **दीनसाधकः**—शरणमें आये हुए दीन-दुखियोंका मनोरथ सिद्ध करनेवाले, ७८ **संवत्सरकरः**—संवत्सरका निर्माता, ७९ **मन्त्रः**—प्रणव आदि मन्त्ररूप, ८० **प्रमाणम्**—प्रमाणस्वरूप, ८१ **परमं तपः**—उत्कृष्ट तपःस्वरूप॥ ३९॥

योगी योज्यो महाबीजो महारेता महाबलः।
सुवर्णरेताः सर्वज्ञः सुबीजो बीजवाहनः॥ ४०॥

८२ **योगी**—योगनिष्ठ, ८३ **योज्यः**—मनोयोगके आश्रय, ८४ **महाबीजः**—महान् कारणरूप, ८५ **महारेताः**—महावीर्यशाली, ८६ **महाबलः**—महान् शक्तिसे सम्पन्न, ८७ **सुवर्णरेताः**—अग्निरूप, ८८ **सर्वज्ञः**—सब कुछ जाननेवाले, ८९ **सुबीजः**—उत्तम बीजरूप, ९० **बीजवाहनः**—जीवोंके संस्काररूप बीजको वहन करनेवाले॥ ४०॥

दशबाहुस्त्वनिमिषो नीलकण्ठ उमापतिः।
विश्वरूपः स्वयं श्रेष्ठो बलवीरोऽबलो गणः॥ ४१॥

९१ **दशबाहुः**—दस भुजाओंसे युक्त, ९२ **अनिमिषः**—कभी पलक न गिरानेवाले, ९३ **नीलकण्ठः**—जगत्की रक्षाके लिये हालाहल विषका पान करके उसके नील चिह्नको कण्ठमें धारण करनेवाले, ९४ **उमापतिः**—गिरिराजकुमारी उमाके पतिदेव, ९५ **विश्वरूपः**—जगत्स्वरूप, ९६ **स्वयं श्रेष्ठः**—स्वतःसिद्ध श्रेष्ठतासे सम्पन्न, ९७ **बलवीरः**—बलके द्वारा वीरता प्रकट करनेवाले, ९८ **अबलो गणः**—निर्बल समुदायरूप॥ ४१॥

गणकर्ता गणपतिर्दिग्वासाः काम एव च।
मन्त्रवित् परमो मन्त्रः सर्वभावकरो हरः॥ ४२॥

९९ **गणकर्ता**—अपने पार्षदगणोंका संघटन करनेवाले, १०० **गणपतिः**—प्रमथगणोंके स्वामी,

१०१ **दिग्वासाः**—दिगम्बर, १०२ **कामः**—कमनीय, १०३ **मन्त्रवित्**—मन्त्रवेत्ता, १०४ **परमो मन्त्रः**—उत्कृष्ट मन्त्ररूप, १०५ **सर्वभावकरः**—समस्त पदार्थोंकी सृष्टि करनेवाले, १०६ **हरः**—दुःख हरण करनेवाले॥ ४२॥

कमण्डलुधरो धन्वी बाणहस्तः कपालवान्।
अशनी शतघ्नी खड्गी पट्टिशी चायुधी महान्॥ ४३॥

१०७ **कमण्डलुधरः**—एक हाथमें कमण्डलु धारण करनेवाले, १०८ **धन्वी**—दूसरे हाथमें धनुष धारण करनेवाले, १०९ **बाणहस्तः**—तीसरे हाथमें बाण लिये रहनेवाले, ११० **कपालवान्**—चौथे हाथमें कपालधारी, १११ **अशनी**—पाँचवें हाथमें वज्र धारण करनेवाले, ११२ **शतघ्नी**—छठे हाथमें शतघ्नी रखनेवाले, ११३ **खड्गी**—सातवेंमें खड्गधारी, ११४ **पट्टिशी**—आठवेंमें पट्टिश धारण करनेवाले, ११५ **आयुधी**—नवें हाथमें अपने सामान्य आयुध त्रिशूलको लिये रहनेवाले, ११६ **महान्**—सर्वश्रेष्ठ॥ ४३॥

स्रुवहस्तः सुरूपश्च तेजस्तेजस्करो निधिः।
उष्णीषी च सुवक्त्रश्च उदग्रो विनतस्तथा॥ ४४॥

११७ **स्रुवहस्तः**—दसवें हाथमें स्रुवा धारण करनेवाले, ११८ **सुरूपः**—सुन्दर रूपवाले, ११९ **तेजः**—तेजस्वी, १२० **तेजस्करो निधिः**—भक्तोंके तेजकी वृद्धि करनेवाले निधिरूप, १२१ **उष्णीषी**—सिरपर साफा धारण करनेवाले, १२२ **सुवक्त्रः**—सुन्दर मुखवाले, १२३ **उदग्रः**—ओजस्वी, १२४ **विनतः**—विनयशील॥ ४४॥

दीर्घश्च हरिकेशश्च सुतीर्थः कृष्ण एव च।
शृगालरूपः सिद्धार्थो मुण्डः सर्वशुभङ्करः॥ ४५॥

१२५ **दीर्घः**—ऊँचे कदवाले, १२६ **हरिकेशः**—ब्रह्मा, विष्णु, महेशस्वरूप, १२७ **सुतीर्थः**—उत्तम तीर्थस्वरूप, १२८ **कृष्णः**—सच्चिदानन्दस्वरूप, १२९ **शृगालरूपः**—सियारका रूप धारण करनेवाले, १३० **सिद्धार्थः**—जिनके सभी प्रयोजन सिद्ध हैं, १३१ **मुण्डः**—मूँड़ मुड़ाये हुए, भिक्षुस्वरूप, १३२ **सर्वशुभंकरः**—समस्त प्राणियोंका हित करनेवाले॥ ४५॥

अजश्च बहुरूपश्च गन्धधारी कपर्द्यपि।
ऊर्ध्वरेता ऊर्ध्वलिङ्ग ऊर्ध्वशायी नभःस्थलः॥ ४६॥

१३३ **अजः**—अजन्मा, १३४ **बहुरूपः**—बहुत-से रूप धारण करनेवाले, १३५ **गन्धधारी**—कुंकुम और कस्तूरी आदि सुगन्धित पदार्थ धारण करनेवाले, १३६ **कपर्दी**—जटाजूटधारी, १३७ **ऊर्ध्वरेताः**—अखण्डित ब्रह्मचर्यवाले, १३८ **ऊर्ध्वलिङ्गः**—, १३९ **ऊर्ध्वशायी**—आकाशमें शयन करनेवाले, १४० **नभः स्थलः**—आकाश जिनका वासस्थान है वे॥

त्रिजटी चीरवासाश्च रुद्रः सेनापतिर्विभुः।
अहश्चरो नक्तंचरस्तिग्ममन्युः सुवर्चसः॥ ४७॥

१४१ **त्रिजटी**—तीन जटा धारण करनेवाले, १४२ **चीरवासाः**—वल्कल वस्त्र पहननेवाले, १४३ **रुद्रः**—दुःखको दूर भगानेवाले, १४४ **सेनापतिः**—सेनानायक, १४५ **विभुः**—सर्वव्यापी, १४६ **अहश्चरः**—दिनमें विचरनेवाले, १४७ **नक्तंचरः**—रातमें विचरनेवाले, १४८ **तिग्ममन्युः**—तीखे क्रोधवाले, १४९ **सुवर्चसः**—सुन्दर तेजवाले॥ ४७॥

गजहा दैत्यहा कालो लोकधाता गुणाकरः।
सिंहशार्दूलरूपश्च आर्द्रचर्माम्बरावृतः॥ ४८॥

१५० **गजहा**—गजरूपधारी महान् असुरको मारनेवाले, १५१ **दैत्यहा**—अन्धक आदि दैत्योंका वध करनेवाले, १५२ **कालः**—मृत्यु अथवा संवत्सर आदि समय, १५३ **लोकधाता**—समस्त जगत्का धारण-पोषण करनेवाले, १५४ **गुणाकरः**—सद्गुणोंकी खान, १५५ **सिंहशार्दूलरूपः**—सिंह-व्याघ्र आदिका रूप धारण करनेवाले, १५६ **आर्द्रचर्माम्बरावृतः**—गजासुरके गीले चर्मको ही वस्त्र बनाकर उससे अपने-आपको आच्छादित करनेवाले॥ ४८॥

कालयोगी महानादः सर्वकामश्चतुष्पथः।
निशाचरः प्रेतचारी भूतचारी महेश्वरः॥ ४९॥

१५७ **कालयोगी**—कालको भी योगबलसे जीतनेवाले, १५८ **महानादः**—अनाहत ध्वनिरूप, १५९ **सर्वकामः**—सम्पूर्ण कामनाओंसे सम्पन्न, १६० **चतुष्पथः**—जिनकी प्राप्तिके ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग और अष्टाङ्गयोग—ये चार मार्ग हैं वे महादेव, १६१ **निशाचरः**—रात्रिके समय विचरनेवाले, १६२ **प्रेतचारी**—प्रेतोंके साथ विचरण करनेवाले, १६३ **भूतचारी**—भूतोंके साथ विचरनेवाले, १६४ **महेश्वरः**—इन्द्र आदि लोकेश्वरोंसे भी महान्॥

बहुभूतो बहुधरः स्वर्भानुरमितो गतिः।
नृत्यप्रियो नित्यनर्तो नर्तकः सर्वलालसः॥ ५०॥

१६५ **बहुभूतः**—सृष्टिकालमें एकसे अनेक होनेवाले, १६६ **बहुधरः**—बहुतोंको धारण करनेवाले, १६७ **स्वर्भानुः**—, १६८ **अमितः**—अनन्त, १६९ **गतिः**—

भक्तों और मुक्तात्माओंके प्राप्त होने योग्य, **१७० नृत्यप्रियः**—ताण्डव नृत्य जिन्हें प्रिय है वे शिव, **१७१ नित्यनर्तः**—निरन्तर नृत्य करनेवाले, **१७२ नर्तकः**—नाचने-नचानेवाले, **१७३ सर्वलालसः**—सबपर प्रेम रखनेवाले॥ ५०॥

घोरो महातपाः पाशो नित्यो गिरिरुहो नभः।
सहस्रहस्तो विजयो व्यवसायो ह्यतन्द्रितः॥ ५१॥

१७४ घोरः—भयंकर रूपधारी, **१७५ महातपाः**—महान् तप करनेवाले, **१७६ पाशः**—अपनी मायारूपी पाशसे बाँधनेवाले, **१७७ नित्यः**—विनाशरहित, **१७८ गिरिरुहः**—पर्वतपर आरूढ़—कैलाशवासी, **१७९ नभः**—आकाशके समान असङ्ग, **१८० सहस्रहस्तः**—हजारों हाथोंवाले, **१८१ विजयः**—विजेता, **१८२ व्यवसायः**—दृढ़निश्चयी, **१८३ अतन्द्रितः**—आलस्यरहित॥ ५१॥

अधर्षणो धर्षणात्मा यज्ञहा कामनाशकः।
दक्षयागापहारी च सुसहो मध्यमस्तथा॥ ५२॥

१८४ अधर्षणः—अजेय, **१८५ धर्षणात्मा**—भयरूप, **१८६ यज्ञहा**—दक्षके यज्ञका विध्वंस करनेवाले, **१८७ कामनाशकः**—कामदेवको नष्ट करनेवाले, **१८८ दक्षयागापहारी**—दक्षके यज्ञका अपहरण करनेवाले, **१८९—सुसहः**—अति सहनशील, **१९० मध्यमः**—मध्यस्थ॥ ५२॥

तेजोऽपहारी बलहा मुदितोऽर्थोऽजितोऽवरः।
गम्भीरघोषो गम्भीरो गम्भीरबलवाहनः॥ ५३॥

१९१ तेजोपहारी—दूसरोंके तेजको हर लेनेवाले, **१९२ बलहा**—बलनामक दैत्यका वध करनेवाले, **१९३ मुदितः**—आनन्दस्वरूप, **१९४ अर्थः**—अर्थस्वरूप, **१९५ अजितः**—अपराजित, **१९६ अवरः**—जिनसे श्रेष्ठ दूसरा कोई नहीं है वे भगवान् शिव, **१९७ गम्भीरघोषः**—गम्भीर घोष करनेवाले, **१९८ गम्भीरः**—गाम्भीर्ययुक्त, **१९९ गम्भीरबलवाहनः**—अगाध बलशाली वृषभपर सवारी करनेवाले॥ ५३॥

न्यग्रोधरूपो न्यग्रोधो वृक्षकर्णस्थितिर्विभुः।
सुतीक्ष्णदशनश्चैव महाकायो महाननः॥ ५४॥

२०० न्यग्रोधरूपः—वटवृक्षस्वरूप, **२०१ न्यग्रोधः**—वटनिकटनिवासी, **२०२ वृक्षकर्णस्थितिः**—वटवृक्षके पत्तेपर शयन करनेवाले बालमुकुन्दरूप, **२०३ विभुः**—विविध रूपोंसे प्रकट होनेवाले, **२०४ सुतीक्ष्णदशनः**—अत्यन्त तीखे दाँतवाले, **२०५ महाकायः**—बड़े डीलडौलवाले, **२०६ महाननः**—विशाल मुखवाले॥ ५४॥

विष्वक्सेनो हरिर्यज्ञः संयुगापीडवाहनः।
तीक्ष्णतापश्च हर्यश्वः सहायः कर्मकालवित्॥ ५५॥

२०७ विष्वक्सेनः—दैत्योंकी सेनाको सब ओर भगा देनेवाले, **२०८ हरिः**—आपत्तियोंको हर लेनेवाले, **२०९ यज्ञः**—यज्ञरूप, **२१० संयुगापीडवाहनः**—युद्धमें पीड़ारहित वाहनवाले, **२११ तीक्ष्णतापः**—दुःसह तापरूप सूर्य, **२१२ हर्यश्वः**—हरे रंगके घोड़ोंसे युक्त, **२१३ सहायः**—जीवमात्रके सखा, **२१४ कर्मकालवित्**—कर्मोंके कालको ठीक-ठीक जाननेवाले॥ ५५॥

विष्णुप्रसादितो यज्ञः समुद्रो वडवामुखः।
हुताशनसहायश्च प्रशान्तात्मा हुताशनः॥ ५६॥

२१५ विष्णुप्रसादितः—भगवान् विष्णुने जिन्हें आराधना करके प्रसन्न किया था वे शिव, **२१६ यज्ञः**—विष्णुस्वरूप (यज्ञो वै विष्णुः), **२१७ समुद्रः**—महासागररूप, **२१८ वडवामुखः**—समुद्रमें स्थित बड़वानलरूप, **२१९ हुताशनसहायः**—अग्निके सखा वायुरूप, **२२० प्रशान्तात्मा**—शान्तचित्त, **२२१ हुताशनः**—अग्नि॥ ५६॥

उग्रतेजा महातेजा जन्यो विजयकालवित्।
ज्योतिषामयनं सिद्धिः सर्वविग्रह एव च॥ ५७॥

२२२ उग्रतेजाः—भयंकर तेजवाले, **२२३ महातेजाः**—महान् तेजसे सम्पन्न, **२२४ जन्यः**—संसारके जन्मदाता, **२२५ विजयकालवित्**—विजयके समयका ज्ञान रखनेवाले, **२२६ ज्योतिषामयनम्**—ज्योतिषोंका स्थान, **२२७ सिद्धिः**—सिद्धिस्वरूप, **२२८ सर्वविग्रहः**—सर्वस्वरूप॥ ५७॥

शिखी मुण्डी जटी ज्वाली मूर्तिजो मूर्द्धगो बली।
वेणवी पणवी ताली खली कालकटंकटः॥ ५८॥

२२९ शिखी—शिखाधारी गृहस्थस्वरूप, **२३० मुण्डी**—शिखारहित संन्यासी, **२३१ जटी**—जटाधारी वानप्रस्थ, **२३२ ज्वाली**—अग्निकी प्रज्वलित ज्वालामें समिधाकी आहुति देनेवाले ब्रह्मचारी, **२३३ मूर्तिजः**—शरीर रूपसे प्रकट होनेवाले, **२३४ मूर्द्धगः**—मूर्द्धा—सहस्रार चक्रमें ध्येय रूपसे विद्यमान, **२३५ बली**—बलिष्ठ, **२३६ वेणवी**—वंशी बजानेवाले श्रीकृष्ण, **२३७ पणवी**—पणव नामक वाद्य बजानेवाले, **२३८ ताली**—ताल देनेवाले,

२३९ **खली**—खलिहानके स्वामी, २४० **काल-कटंकटः**—यमराजके मायाको आवृत करनेवाले॥ ५८॥

नक्षत्रविग्रहमतिर्गुणबुद्धिर्लयोऽगमः ।
प्रजापतिर्विश्वबाहुर्विभागः सर्वगोऽमुखः॥ ५९॥

२४१ **नक्षत्रविग्रहमतिः**—नक्षत्र—ग्रह-तारा आदिकी गतिको जाननेवाले, २४२ **गुणबुद्धिः**—गुणोंमें बुद्धि लगानेवाले, २४३ **लयः**—प्रलयके स्थान, २४४ **अगमः**—जाननेमें न आनेवाला, २४५ **प्रजापतिः**—प्रजाके स्वामी, २४६ **विश्वबाहुः**—सब ओर भुजावाले, २४७ **विभागः**—विभागस्वरूप, २४८ **सर्वगः**—सर्वव्यापी, २४९ **अमुखः**—बिना मुखवाला॥ ५९॥

विमोचनः सुसरणो हिरण्यकवचोद्भवः।
मेढ्रजो बलचारी च महीचारी स्रुतस्तथा॥ ६०॥

२५० **विमोचनः**—संसार-बन्धनसे छुड़ानेवाले, २५१ **सुसरणः**—श्रेष्ठ आश्रय, २५२ **हिरण्य-कवचोद्भवः**—हिरण्यगर्भकी उत्पत्तिका स्थान, २५३ **मेढ्रजः**—, २५४ **बलचारी**—बलका संचार करनेवाले, २५५ **महीचारी**—सारी पृथ्वीपर विचरनेवाले, २५६ **स्रुतः**—सर्वत्र पहुँचे हुए॥ ६०॥

सर्वतूर्यनिनादी च सर्वातोद्यपरिग्रहः।
व्यालरूपो गुहावासी गुहो माली तरङ्गवित्॥ ६१॥

२५७ **सर्वतूर्यनिनादी**—सब प्रकारके बाजे बजानेवाले, २५८ **सर्वातोद्यपरिग्रहः**—सम्पूर्ण वाद्योंका संग्रह करनेवाले, २५९ **व्यालरूपः**—शेषनागस्वरूप, २६० **गुहावासी**—सबकी हृदयगुफामें निवास करनेवाले, २६१ **गुहः**—कार्तिकेयस्वरूप, २६२ **माली**—मालाधारी, २६३ **तरङ्गवित्**—क्षुधा-पिपासा आदि छहों ऊर्मियोंके ज्ञाता साक्षी॥ ६१॥

त्रिदशस्त्रिकालधृक् कर्मसर्वबन्धविमोचनः।
बन्धनस्त्वसुरेन्द्राणां युधि शत्रुविनाशनः॥ ६२॥

२६४ **त्रिदशः**—प्राणियोंकी तीन दशाओं—जन्म, स्थिति और विनाशके हेतुभूत, २६५ **त्रिकालधृक्**—भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालोंको धारण करनेवाले, २६६ **कर्मसर्वबन्धविमोचनः**—कर्मोंके समस्त बन्धनोंको काटनेवाले, २६७ **असुरेन्द्राणां बन्धनः**—बलि आदि असुरपतियोंको बाँध लेनेवाले, २६८ **युधिशत्रुविनाशनः**—युद्धमें शत्रुओंका विनाश करनेवाले॥ ६२॥

सांख्यप्रसादो दुर्वासाः सर्वसाधुनिषेवितः।
प्रस्कन्दनो विभागज्ञोऽतुल्यो यज्ञविभागवित्॥ ६३॥

२६९ **सांख्यप्रसादः**—आत्मा और अनात्माके विवेकरूप सांख्यज्ञानसे प्रसन्न होनेवाले, २७० **दुर्वासाः**—अत्रि और अनसूयाके पुत्र रुद्रावतार दुर्वासा मुनि, २७१ **सर्वसाधुनिषेवितः**—समस्त साधुपुरुषोंद्वारा सेवित, २७२ **प्रस्कन्दनः**—ब्रह्मादिको भी स्थानभ्रष्ट करनेवाले, २७३ **विभागज्ञः**—प्राणियोंके कर्म और फलोंके विभागको यथोचितरूपसे जाननेवाले, २७४ **अतुल्यः**—तुलनारहित, २७५ **यज्ञविभागवित्**—यज्ञसम्बन्धी हविष्यके विभिन्न भागोंका ज्ञान रखनेवाले॥ ६३॥

सर्ववासः सर्वचारी दुर्वासा वासवोऽमरः।
हैमो हेमकरोऽयज्ञः सर्वधारी धरोत्तमः॥ ६४॥

२७६ **सर्ववासः**—सर्वत्र निवास करनेवाले, २७७ **सर्वचारी**—सर्वत्र विचरनेवाले, २७८ **दुर्वासाः**—अनन्त और अपार होनेके कारण जिनको वस्त्रसे आच्छादित करना दुर्लभ है, २७९ **वासवः**—इन्द्रस्वरूप, २८० **अमरः**—अविनाशी, २८१ **हैमः**—हिमसमूह—हिमालयरूप, २८२ **हेमकरः**—सुवर्णके उत्पादक, २८३ **अयज्ञः**—कर्मरहित, २८४ **सर्वधारी**—सबको धारण करनेवाले, २८५ **धरोत्तमः**—धारण करनेवालोंमें सबसे उत्तम—अखिल ब्रह्माण्डको धारण करनेवाले॥ ६४॥

लोहिताक्षो महाक्षश्च विजयाक्षो विशारदः।
संग्रहो निग्रहः कर्ता सर्पचीरनिवासनः॥ ६५॥

२८६ **लोहिताक्षः**—रक्तनेत्र, २८७ **महाक्षः**—बड़े नेत्रवाले, २८८ **विजयाक्षः**—विजयशील रथवाले, २८९ **विशारदः**—विद्वान्, २९० **संग्रहः**—संग्रह करनेवाले, २९१ **निग्रहः**—उद्दण्डोंको दण्ड देनेवाले, २९२ **कर्ता**—सबके उत्पादक, २९३ **सर्पचीर-निवासनः**—सर्पमय चीर धारण करनेवाले॥ ६५॥

मुख्योऽमुख्यश्च देहश्च काहलिः सर्वकामदः।
सर्वकालप्रसादश्च सुबलो बलरूपधृक्॥ ६६॥
सर्वकामवरश्चैव सर्वदः सर्वतोमुखः।
आकाशनिर्विरूपश्च निपाती ह्यवशः खगः॥ ६७॥

२९४ **मुख्यः**—सर्वश्रेष्ठ, २९५ **अमुख्यः**—जिससे बढ़कर मुख्य दूसरा कोई न हो वह, २९६ **देहः**—देहस्वरूप, २९७ **काहलिः**—काहल नामक वाद्यविशेषको बजानेवाले, २९८ **सर्वकामदः**—सम्पूर्ण कामनाओंके दाता, २९९ **सर्वकालप्रसादः**—सर्वदा कृपा करनेवाले, ३०० **सुबलः**—उत्तम बलसे सम्पन्न, ३०१ **बलरूपधृक्**—बल और रूपके आधार, ३०२ **सर्वकामवरः**—सम्पूर्ण कमनीय पदार्थोंमें श्रेष्ठ—मोक्षस्वरूप, ३०३ **सर्वदः**—सब कुछ देनेवाले,

३०४ **सर्वतोमुखः**—सब ओर मुखवाले, ३०५ **आकाशनिर्विरूपः**—आकाशकी भाँति जिनसे नाना प्रकारके रूप प्रकट होते हैं वे, ३०६ **निपाती**—पापियोंको नरकमें गिरानेवाले, ३०७ **अवशः**—जिनके ऊपर किसीका वश नहीं चलता वे, ३०८ **खगः**—आकाशगामी॥ ६६-६७॥

रौद्ररूपोंऽशुरादित्यो बहुरश्मिः सुवर्चसी।
वसुवेगो महावेगो मनोवेगो निशाचरः॥ ६८॥

३०९ **रौद्ररूपः**—भयंकर रूपधारी, ३१० **अंशुः**—किरणस्वरूप, ३११ **आदित्यः**—अदितिपुत्र, ३१२ **बहुरश्मिः**—असंख्य किरणोंवाले, सूर्यरूप, ३१३ **सुवर्चसी**—उत्तम तेजसे सम्पन्न, ३१४ **वसुवेगः**—वायुके समान वेगवाले, ३१५ **महावेगः**—वायुसे भी अधिक वेगशाली, ३१६ **मनोवेगः**—मनके समान वेगवाले, ३१७ **निशाचरः**—रात्रिमें विचरनेवाले॥ ६८॥

सर्ववासी श्रियावासी उपदेशकरोऽकरः।
मुनिरात्मनिरालोकः सम्भग्नश्च सहस्रदः॥ ६९॥

३१८ **सर्ववासी**—सम्पूर्ण प्राणियोंमें आत्मारूपसे निवास करनेवाले, ३१९ **श्रियावासी**—लक्ष्मीके साथ निवास करनेवाले विष्णुरूप, ३२० **उपदेशकरः**—जिज्ञासुओंको तत्त्वका और काशीमें मरे हुए जीवोंको तारकमन्त्रका उपदेश करनेवाले, ३२१ **अकरः**—कर्तृत्वके अभिमानसे रहित, ३२२ **मुनिः**—मननशील, ३२३ **आत्मनिरालोकः**—देह आदिकी उपाधिसे अलग होकर आलोचना करनेवाले, ३२४ **सम्भग्नः**—सम्यक् रूपसे सेवित, ३२५ **सहस्रदः**—हजारोंका दान करनेवाले॥ ६९॥

पक्षी च पक्षरूपश्च अतिदीप्तो विशाम्पतिः।
उन्मादो मदनः कामो ह्यश्वत्थोऽर्थकरो यशः॥ ७०॥

३२६ **पक्षी**—गरुड़रूपधारी, ३२७ **पक्षरूपः**—शुक्लपक्षस्वरूप, ३२८ **अतिदीप्तः**—अत्यन्त तेजस्वी, ३२९ **विशाम्पतिः**—प्रजाओंके स्वामी, ३३० **उन्मादः**—प्रेममें उन्मत्त, ३३१ **मदनः**—कामदेवरूप, ३३२ **कामः**—कमनीय विषय, ३३३ **अश्वत्थः**—संसार-वृक्षरूप, ३३४ **अर्थकरः**—धन आदि देनेवाले, ३३५ **यशः**—यशस्वरूप॥ ७०॥

वामदेवश्च वामश्च प्राग् दक्षिणश्च वामनः।
सिद्धयोगी महर्षिश्च सिद्धार्थः सिद्धसाधकः॥ ७१॥

३३६ **वामदेवः**—वामदेव ऋषिस्वरूप, ३३७ **वामः**—पापियोंके प्रतिकूल, ३३८ **प्राक्**—सबके आदि, ३३९ **दक्षिणः**—कुशल, ३४० **वामनः**—बलिको बाँधनेवाले वामन रूपधारी, ३४१ **सिद्धयोगी**—सनत्कुमार आदि सिद्ध महात्मा, ३४२ **महर्षिः**—वसिष्ठ आदि, ३४३ **सिद्धार्थः**—आप्तकाम, ३४४ **सिद्धसाधकः**—सिद्ध और साधकरूप॥ ७१॥

भिक्षुश्च भिक्षुरूपश्च विपणो मृदुरव्ययः।
महासेनो विशाखश्च षष्टिभागो गवां पतिः॥ ७२॥

३४५ **भिक्षुः**—संन्यासी, ३४६ **भिक्षुरूपः**—श्रीराम-कृष्ण आदिकी बालछविका दर्शन करनेके लिये भिक्षुरूप धारण करनेवाले, ३४७ **विपणः**—व्यवहारसे अतीत, ३४८ **मृदुः**—कोमल स्वभाववाले, ३४९ **अव्ययः**—अविनाशी, ३५० **महासेनः**—देवसेनापति कार्तिकेयरूप, ३५१ **विशाखः**—कार्तिकेयके सहायक, ३५२ **षष्टिभागः**—प्रभव आदि साठ भागोंमें विभक्त संवत्सररूप, ३५३ **गवाम्पतिः**—इन्द्रियोंके स्वामी॥ ७२॥

वज्रहस्तश्च विष्कम्भी चमूस्तम्भन एव च।
वृत्तावृत्तकरस्तालो मधुर्मधुकलोचनः॥ ७३॥

३५४ **वज्रहस्तः**—हाथमें वज्र धारण करनेवाले इन्द्ररूप, ३५५ **विष्कम्भी**—विस्तारयुक्त, ३५६ **चमूस्तम्भनः**—दैत्यसेनाको स्तब्ध करनेवाले, ३५७ **वृत्तावृत्तकरः**—युद्धमें रथके द्वारा मण्डल बनाना वृत्त कहलाता है और शत्रुसेनाको विदीर्ण करके अक्षत शरीरसे लौट आना आवृत्त कहलाता है। इन दोनोंको कुशलतापूर्वक करनेवाले, ३५८ **तालः**—संसारसागरके तल प्रदेश—आधार-स्थान अर्थात् शुद्ध ब्रह्मको जाननेवाले, ३५९ **मधुः**—वसन्त ऋतुरूप, ३६० **मधुकलोचनः**—मधुके समान पिंगल नेत्रवाले॥ ७३॥

वाचस्पत्यो वाजसनो नित्यमाश्रमपूजितः।
ब्रह्मचारी लोकचारी सर्वचारी विचारवित्॥ ७४॥

३६१ **वाचस्पत्यः**—पुरोहितका काम करनेवाले, ३६२ **वाजसनः**—शुक्ल यजुर्वेदकी माध्यन्दिनी शाखाके प्रवर्तक, ३६३ **नित्यमाश्रमपूजितः**—सदा आश्रमोंद्वारा पूजित होनेवाले, ३६४ **ब्रह्मचारी**—ब्रह्मनिष्ठ, ३६५ **लोकचारी**—सम्पूर्ण लोकोंमें विचरनेवाले, ३६६ **सर्वचारी**—सर्वत्र गमन करनेवाले, ३६७ **विचारवित्**—विचारोंके ज्ञाता॥ ७४॥

ईशान ईश्वरः कालो निशाचारी पिनाकवान्।
निमित्तस्थो निमित्तं च नन्दिर्नन्दिकरो हरिः॥ ७५॥

३६८ **ईशानः**—नियन्ता, ३६९ **ईश्वरः**—सबके

शासक, ३७० **कालः**—कालस्वरूप, ३७१ **निशाचारी**—प्रलयकालकी रातमें विचरनेवाले, ३७२ **पिनाकवान्**—पिनाक नामक धनुष धारण करनेवाले, ३७३ **निमित्तस्थः**—अन्तर्यामी, ३७४ **निमित्तम्**—निमित्त कारणरूप, ३७५ **नन्दिः**—ज्ञानसम्पत्तिरूप, ३७६ **नन्दिकरः**—ज्ञानरूपीसम्पत्ति देनेवाले, ३७७ **हरिः**—विष्णुस्वरूप॥

नन्दीश्वरश्च नन्दी च नन्दनो नन्दिवर्द्धनः।
भगहारी निहन्ता च कालो ब्रह्मा पितामहः॥ ७६॥

३७८ **नन्दीश्वरः**—नन्दी नामक पार्षदके स्वामी, ३७९ **नन्दी**—नन्दी नामक गणरूप, ३८० **नन्दनः**—परम आनन्द प्रदान करनेवाले, ३८१ **नन्दिवर्द्धनः**—समृद्धि बढ़ानेवाले, ३८२ **भगहारी**—ऐश्वर्यका अपहरण करनेवाले, ३८३ **निहन्ता**—मृत्युरूपसे सबको मारनेवाले, ३८४ **कालः**—चौंसठ कलाओंके निवासस्थान, ३८५ **ब्रह्मा**—लोकस्रष्टा ब्रह्मा, ३८६ **पितामहः**—प्रजापतिके भी पिता॥ ७६॥

चतुर्मुखो महालिङ्गश्चारुलिङ्गस्तथैव च।
लिङ्गाध्यक्षः सुराध्यक्षो योगाध्यक्षो युगावहः॥ ७७॥

३८७ **चतुर्मुखः**—चार मुखवाले, ३८८ **महालिङ्गः**—महालिंगस्वरूप, ३८९ **चारुलिङ्गः**—रमणीय वेषधारी, ३९० **लिङ्गाध्यक्षः**—प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंके अध्यक्ष, ३९१ **सुराध्यक्षः**—देवताओंके अधिपति, ३९२ **योगाध्यक्षः**—योगके अध्यक्ष, ३९३ **युगावहः**—चारों युगोंके निर्वाहक॥ ७७॥

बीजाध्यक्षो बीजकर्ता अध्यात्मानुगतो बलः।
इतिहासः सकल्पश्च गौतमोऽथ निशाकरः॥ ७८॥

३९४ **बीजाध्यक्षः**—कारणोंके अध्यक्ष, ३९५ **बीजकर्ता**—कारणोंके उत्पादक, ३९६ **अध्यात्मानुगतः**—अध्यात्मशास्त्रका अनुसरण करनेवाले, ३९७ **बलः**—बलवान्, ३९८ **इतिहासः**—महाभारत आदि इतिहासरूप, ३९९ **सकल्पः**—कल्प—यज्ञोंके प्रयोग और विधिके विचारके साथ मीमांसा और न्यायका समूह, ४०० **गौतमः**—तर्कशास्त्रके प्रणेता मुनिस्वरूप, ४०१ **निशाकरः**—चन्द्रमारूप॥ ७८॥

दम्भो ह्यदम्भो वैदम्भो वश्यो वशकरः कलिः।
लोककर्ता पशुपतिर्महाकर्ता ह्यनौषधः॥ ७९॥

४०२ **दम्भः**—शत्रुओंका दमन करनेवाले, ४०३ **अदम्भः**—दम्भरहित, ४०४ **वैदम्भः**—दम्भरहित पुरुषोंके आत्मीय, ४०५ **वश्यः**—भक्तपराधीन, ४०६ **वशकरः**—दूसरोंको वशमें करनेकी शक्ति रखनेवाले, ४०७ **कलिः**—कलि नामक युग, ४०८ **लोककर्ता**—जगत्की सृष्टि करनेवाले, ४०९ **पशुपतिः**—पशुओं—जीवोंके स्वामी, ४१० **महाकर्ता**—पञ्च महाभूतादि सृष्टिकी रचना करनेवाले, ४११ **अनौषधः**—अन्न आदि ओषधियोंके सेवनसे रहित॥ ७९॥

अक्षरं परमं ब्रह्म बलवच्छक्र एव च।
नीतिर्ह्यनीतिः शुद्धात्मा शुद्धो मान्यो गतागतः॥ ८०॥

४१२ **अक्षरम्**—अविनाशी ब्रह्म, ४१३ **परमं ब्रह्म**—सर्वोत्कृष्ट परमात्मा, ४१४ **बलवत्**—शक्तिशाली, ४१५ **शक्रः**—इन्द्र, ४१६ **नीतिः**—न्यायस्वरूप, ४१७ **अनीतिः**—साम, दाम, दण्ड, भेदसे रहित, ४१८ **शुद्धात्मा**—शुद्धस्वरूप, ४१९ **शुद्धः**—परम पवित्र, ४२० **मान्यः**—सम्मानके योग्य, ४२१ **गतागतः**—गमनागमनशील संसारस्वरूप॥ ८०॥

बहुप्रसादः सुस्वप्नो दर्पणोऽथ त्वमित्रजित्।
वेदकारो मन्त्रकारो विद्वान् समरमर्दनः॥ ८१॥

४२२ **बहुप्रसादः**—भक्तोंपर अधिक कृपा करनेवाले, ४२३ **सुस्वप्नः**—सुन्दर स्वप्नवाले, ४२४ **दर्पणः**—दर्पणके समान स्वच्छ, ४२५ **अमित्रजित्**—बाहर-भीतरके शत्रुओंको जीतनेवाले, ४२६ **वेदकारः**—वेदोंका कर्ता, ४२७ **मन्त्रकारः**—मन्त्रोंका आविष्कार करनेवाले, ४२८ **विद्वान्**—सर्वज्ञ, ४२९ **समरमर्दनः**—समरांगणमें शत्रुओंका संहार करनेवाले॥ ८१॥

महामेघनिवासी च महाघोरो वशी करः।
अग्निज्वालो महाज्वालो अतिधूम्रो हुतो हविः॥ ८२॥

४३० **महामेघनिवासी**—प्रलयकालिक महामेघोंमें निवास करनेवाले, ४३१ **महाघोरः**—प्रलय करनेवाले, ४३२ **वशी**—सबको वशमें रखनेवाले, ४३३ **करः**—संहारकारी, ४३४ **अग्निज्वालः**—अग्निकी ज्वालाके समान तेजवाले, ४३५ **महाज्वालः**—अग्निसे भी महान् तेजवाले, ४३६ **अतिधूम्रः**—कालाग्निरूपसे सबके दाहकालमें अत्यन्त धूम्र वर्णवाले, ४३७ **हुतः**—आहुति पाकर प्रसन्न होनेवाले अग्निरूप, ४३८ **हविः**—घी-दूध आदि हवनीय पदार्थरूप॥ ८२॥

वृषणः शङ्करो नित्यं वर्चस्वी धूमकेतनः।
नीलस्तथाङ्गलुब्धश्च शोभनो निरवग्रहः॥ ८३॥

४३९ **वृषणः**—कर्मफलकी वर्षा करनेवाले धर्मस्वरूप, ४४० **शङ्करः**—कल्याणकारी, ४४१ **नित्यं वर्चस्वी**—सदा तेजसे जगमगाते रहनेवाले,

४४२ **धूमकेतनः**—अग्निस्वरूप, ४४३ **नीलः**—श्यामवर्ण श्रीहरि, ४४४ **अङ्गलुब्धः**—अपने श्रीअङ्गके सौन्दर्यपर स्वयं ही लुभाये रहनेवाले, ४४५ **शोभनः**—शोभाशाली, ४४६ **निरवग्रहः**—प्रतिबन्धरहित॥ ८३॥

स्वस्तिदः स्वस्तिभावश्च भागी भागकरो लघुः।
उत्सङ्गश्च महाङ्गश्च महागर्भपरायणः॥ ८४॥

४४७ **स्वस्तिदः**—कल्याणदायक, ४४८ **स्वस्तिभावः**—कल्याणमयी सत्ता, ४४९ **भागी**—यज्ञमें भाग लेनेवाले, ४५० **भागकरः**—यज्ञके हविष्यका विभाजन करनेवाले, ४५१ **लघुः**—शीघ्रकारी, ४५२ **उत्सङ्गः**—संगरहित, ४५३ **महाङ्गः**—महान् अंगवाले, ४५४ **महागर्भपरायणः**—हिरण्यगर्भके परम आश्रय॥ ८४॥

कृष्णवर्णः सुवर्णश्च इन्द्रियं सर्वदेहिनाम्।
महापादो महाहस्तो महाकायो महायशाः॥ ८५॥

४५५ **कृष्णवर्णः**—श्यामवर्ण विष्णुस्वरूप, ४५६ **सुवर्णः**—उत्तम वर्णवाले, ४५७ **सर्वदेहिनाम् इन्द्रियम्**—समस्त देहधारियोंके इन्द्रियसमुदायरूप, ४५८ **महापादः**—लंबे पैरोंवाले त्रिविक्रमस्वरूप, ४५९ **महाहस्तः**—लंबे हाथवाले, ४६० **महाकायः**—विश्वरूप, ४६१ **महायशाः**—महान् सुयशवाले॥ ८५॥

महामूर्धा महामात्रो महानेत्रो निशालयः।
महान्तको महाकर्णो महोष्ठश्च महाहनुः॥ ८६॥

४६२ **महामूर्धा**—महान् मस्तकवाले, ४६३ **महामात्रः**—विशाल नापवाले, ४६४ **महानेत्रः**—विशाल नेत्रोंवाले, ४६५ **निशालयः**—निशा अर्थात् अविद्याके लयस्थान, ४६६ **महान्तकः**—मृत्युकी भी मृत्यु, ४६७ **महाकर्णः**—बड़े-बड़े कानवाले, ४६८ **महोष्ठः**—लंबे ओठवाले, ४६९ **महाहनुः**—पुष्ट एवं बड़ी ठोड़ीवाले॥ ८६॥

महानासो महाकम्बुर्महाग्रीवः शमशानभाक्।
महावक्षा महोरस्को ह्यन्तरात्मा मृगालयः॥ ८७॥

४७० **महानासः**—बड़ी नासिकावाले, ४७१ **महाकम्बुः**—बड़े कण्ठवाले, ४७२ **महाग्रीवः**—विशाल ग्रीवासे युक्त, ४७३ **शमशानभाक्**—शमशान भूमिमें क्रीडा करनेवाले ४७४ **महावक्षाः**—विशाल वक्षःस्थलवाले, ४७५ **महोरस्कः**—चौड़ी छातीवाले, ४७६ **अन्तरात्मा**—सबके अन्तरात्मा, ४७७ **मृगालयः**—मृग-शिशुको अपनी गोदमें लिये रहनेवाले॥ ८७॥

लम्बनो लम्बितोष्ठश्च महामायः पयोनिधिः।
महादन्तो महादंष्ट्रो महाजिह्वो महामुखः॥ ८८॥

४७८ **लम्बनः**—अनेक ब्रह्माण्डोंके आश्रय, ४७९ **लम्बितोष्ठः**—प्रलयकालमें सम्पूर्ण विश्वको अपना ग्रास बनानेके लिये ओठोंको फैलाये रखनेवाले, ४८० **महामायः**—महामायावी, ४८१ **पयोनिधिः**—क्षीरसागररूप, ४८२ **महादन्तः**—बड़े-बड़े दाँतवाले, ४८३ **महादंष्ट्रः**—बड़ी-बड़ी दाढ़वाले, ४८४ **महाजिह्वः**—विशाल जिह्वावाले, ४८५ **महामुखः**—बहुत बड़े मुखवाले॥ ८८॥

महानखो महारोमा महाकोशो महाजटः।
प्रसन्नश्च प्रसादश्च प्रत्ययो गिरिसाधनः॥ ८९॥

४८६ **महानखः**—बड़े-बड़े नखवाले नृसिंह, ४८७ **महारोमा**—विशाल रोमवाले वराहरूप, ४८८ **महाकोशः**—बहुत बड़े पेटवाले, ४८९ **महाजटः**—बड़ी-बड़ी जटावाले, ४९० **प्रसन्नः**—आनन्दमग्न, ४९१ **प्रसादः**—प्रसन्नताकी मूर्ति, ४९२ **प्रत्ययः**—ज्ञानस्वरूप, ४९३ **गिरिसाधनः**—पर्वतको युद्धका साधन बनानेवाले॥ ८९॥

स्नेहनोऽस्नेहनश्चैव अजितश्च महामुनिः।
वृक्षाकारो वृक्षकेतुरनलो वायुवाहनः॥ ९०॥

४९४ **स्नेहनः**—प्रजाओंके प्रति पिताकी भाँति स्नेह रखनेवाले, ४९५ **अस्नेहनः**—आसक्तिसे रहित, ४९६ **अजितः**—किसीसे पराजित न होनेवाले, ४९७ **महामुनिः**—अत्यन्त मननशील, ४९८ **वृक्षाकारः**—संसारवृक्षस्वरूप, ४९९ **वृक्षकेतुः**—वृक्षके समान ऊँची ध्वजावाले, ५०० **अनलः**—अग्निस्वरूप, ५०१ **वायुवाहनः**—वायुका वाहनके रूपमें उपयोग करनेवाले॥ ९०॥

गण्डली मेरुधामा च देवाधिपतिरेव च।
अथर्वशीर्षः सामास्य ऋक्सहस्रामितेक्षणः॥ ९१॥

५०२ **गण्डली**—पहाड़ोंकी गुफाओंमें छिपकर रहनेवाले, ५०३ **मेरुधामा**—मेरु-पर्वतको अपना निवासस्थान बनानेवाले, ५०४ **देवाधिपतिः**—देवताओंके स्वामी, ५०५ **अथर्वशीर्षः**—अथर्ववेद जिनका मस्तक है वे, ५०६ **सामास्यः**—सामवेद जिनका मुख है वे, ५०७ **ऋक्सहस्रामितेक्षणः**—सहस्रों ऋचाएँ जिनके नेत्र हैं॥ ९१॥

यजुःपादभुजो गुह्यः प्रकाशो जङ्गमस्तथा।
अमोघार्थः प्रसादश्च अभिगम्यः सुदर्शनः॥ ९२॥

५०८ **यजुःपादभुजः**—यजुर्वेद जिनके हाथ-पैर हैं, ५०९ **गुह्यः**—गोपनीयस्वरूप, ५१० **प्रकाशः**—

भक्तोंपर कृपा करके स्वयं ही उनके समक्ष अपनेको प्रकाशित कर देनेवाले, ५११ **जङ्गमः**—चलने-फिरनेवाले, ५१२ **अमोघार्थः**—किसी वस्तुके लिये याचना करनेपर उसे अवश्य सफल बनानेवाले, ५१३ **प्रसादः**—दया करके शीघ्र प्रसन्न होनेवाले, ५१४ **अभिगम्यः**—सुगमतासे प्राप्त होने योग्य, ५१५ **सुदर्शनः**—सुन्दर दर्शनवाले॥ ९२॥

उपकारः प्रियः सर्वः कनकः काञ्चनच्छविः।
नाभिर्नन्दिकरो भावः पुष्करस्थपतिः स्थिरः॥ ९३॥

५१६ **उपकारः**—उपकार करनेवाले, ५१७ **प्रियः**—भक्तोंके प्रेमास्पद, ५१८ **सर्वः**—सर्वस्वरूप, ५१९ **कनकः**—सुवर्णस्वरूप, ५२० **काञ्चनच्छविः**—काञ्चनके समान कमनीय कान्तिवाले, ५२१ **नाभिः**—समस्त भुवनका मध्यदेशरूप, ५२२ **नन्दिकरः**—आनन्द देनेवाले, ५२३ **भावः**—श्रद्धा-भक्तिस्वरूप, ५२४ **पुष्करस्थपतिः**—ब्रह्माण्डरूपी पुष्करका निर्माण करनेवाले, ५२५ **स्थिरः**—स्थिरस्वरूप॥

द्वादशस्त्रासनश्चाद्यो यज्ञो यज्ञसमाहितः।
नक्तं कलिश्च कालश्च मकरः कालपूजितः॥ ९४॥

५२६ **द्वादशः**—ग्यारह रुद्रोंसे श्रेष्ठ बारहवें रुद्र, ५२७ **त्रासनः**—संहारकारी होनेके कारण भयजनक, ५२८ **आद्यः**—सबके आदि कारण, ५२९ **यज्ञः**—यज्ञपुरुष, ५३० **यज्ञसमाहितः**—यज्ञमें उपस्थित रहनेवाले, ५३१ **नक्तम्**—प्रलयकालकी रात्रिस्वरूप, ५३२ **कलिः**—कलिके स्वरूप, ५३३ **कालः**—सबको अपना ग्रास बनानेवाले कालरूप, ५३४ **मकरः**—मकराकार शिशुमार चक्र, ५३५ **कालपूजितः**—काल अर्थात् मृत्युके द्वारा पूजित॥ ९४॥

सगणो गणकारश्च भूतवाहनसारथिः।
भस्मशयो भस्मगोप्ता भस्मभूतस्तरुर्गणः॥ ९५॥

५३६ **सगणः**—प्रमथ आदि गणोंसे युक्त, ५३७ **गणकारः**—बाणासुर आदि भक्तोंको अपने गणमें सम्मिलित करनेवाले, ५३८ **भूतवाहनसारथिः**—त्रिपुर-विनाशके लिये समस्त प्राणियोंके योगक्षेमका निर्वाह करनेवाले ब्रह्माजीको सारथि बनानेवाले, ५३९ **भस्मशयः**—भस्मपर शयन करनेवाले, ५४० **भस्मगोप्ता**—भस्मद्वारा रक्षा करनेवाले, ५४१ **भस्मभूतः**—भस्मस्वरूप, ५४२ **तरुः**—कल्पवृक्षस्वरूप, ५४३ **गणः**—भृंगिरिटि और नन्दिकेश्वर आदि पार्षदरूप॥ ९५॥

लोकपालस्तथालोको महात्मा सर्वपूजितः।
शुक्लस्त्रिशुक्लः सम्पन्नः शुचिर्भूतनिषेवितः॥ ९६॥

५४४ **लोकपालः**—चतुर्दश भुवनोंका पालन करनेवाले, ५४५ **अलोकः**—लोकातीत, ५४६ **महात्मा**—, ५४७ **सर्वपूजितः**—सबके द्वारा पूजित, ५४८ **शुक्लः**—शुद्धस्वरूप, ५४९ **त्रिशुक्लः**—मन,वाणी और शरीर ये तीनों, ५५० **सम्पन्नः**—सम्पूर्ण सम्पदाओंसे युक्त, ५५१ **शुचिः**—परम पवित्र, ५५२ **भूतनिषेवितः**—समस्त प्राणियोंद्वारा सेवित॥ ९६॥

आश्रमस्थः क्रियावस्थो विश्वकर्ममतिर्वरः।
विशालशाखस्ताम्रोष्ठो ह्यम्बुजालः सुनिश्चलः॥ ९७॥

५५३ **आश्रमस्थः**—चारों आश्रमोंमें धर्मरूपसे स्थित रहनेवाले, ५५४ **क्रियावस्थः**—यज्ञादि क्रियाओंमें संलग्न, ५५५ **विश्वकर्ममतिः**—संसारकी रचनारूप कर्ममें कुशल, ५५६ **वरः**—सर्वश्रेष्ठ, ५५७ **विशालशाखः**—लंबी भुजाओंवाले, ५५८ **ताम्रोष्ठः**—लाल-लाल ओठवाले, ५५९ **अम्बुजालः**—जलसमूह—सागररूप, ५६० **सुनिश्चलः**—सर्वथा निश्चलरूप॥ ९७॥

कपिलः कपिशः शुक्ल आयुश्चैव परोऽपरः।
गन्धर्वो ह्यदितिस्ताक्ष्यः सुविज्ञेयः सुशारदः॥ ९८॥

५६१ **कपिलः**—कपिल वर्ण, ५६२ **कपिशः**—पीले वर्णवाले, ५६३ **शुक्लः**—श्वेत वर्णवाले, ५६४ **आयुः**—जीवनरूप, ५६५ **परः**—प्राचीन, ५६६ **अपरः**—अर्वाचीन, ५६७ **गन्धर्वः**—चित्ररथ आदि गन्धर्वरूप, ५६८ **अदितिः**—देवमाता अदितिस्वरूप, ५६९ **ताक्ष्यः**—विनतानन्दन गरुडरूप, ५७० **सुविज्ञेयः**—सुगमतापूर्वक जानने योग्य, ५७१ **सुशारदः**—उत्तम वाणी बोलनेवाले॥ ९८॥

परश्वधायुधो देवो अनुकारी सुबान्धवः।
तुम्बवीणो महाक्रोध ऊर्ध्वरेता जलेशयः॥ ९९॥

५७२ **परश्वधायुधः**—फरसेका आयुधके रूपमें उपयोग करनेवाले परशुरामरूप, ५७३ **देवः**—महादेवस्वरूप, ५७४ **अनुकारी**—भक्तोंका अनुकरण करनेवाले, ५७५ **सुबान्धवः**—उत्तम बान्धवरूप, ५७६ **तुम्बवीणः**—तूँबीकी वीणा बजानेवाले, ५७७ **महाक्रोधः**—प्रलयकालमें महान् क्रोध प्रकट करनेवाले, ५७८ **ऊर्ध्वरेताः**—अस्खलितवीर्य, ५७९ **जलेशयः**—विष्णुरूपसे जलमें शयन करनेवाले॥ ९९॥

उग्रो वंशकरो वंशो वंशनादो ह्यनिन्दितः।
सर्वाङ्गरूपो मायावी सुहृदो ह्यनिलोऽनलः॥ १००॥

५८० **उग्रः**—प्रलयकालमें भयंकर रूप धारण करनेवाले, ५८१ **वंशकरः**—वंशप्रवर्तक, ५८२ **वंशः**—वंशस्वरूप, ५८३ **वंशनादः**—श्रीकृष्णरूपसे वंशी बजानेवाले, ५८४ **अनिन्दितः**—निन्दारहित, ५८५ **सर्वाङ्गरूपः**—सर्वांग पूर्णरूपवाले, ५८६ **मायावी**—, ५८७ **सुहृदः**—हेतुरहित दयालु, ५८८ **अनिलः**—वायुस्वरूप, ५८९ **अनलः**—अग्निस्वरूप॥ १००॥

बन्धनो बन्धकर्ता च सुबन्धनविमोचनः।
सयज्ञारिः सकामारिर्महादंष्ट्रो महायुधः॥ १०१॥

५९० **बन्धनः**—स्नेहबन्धनमें बाँधनेवाले, ५९१ **बन्धकर्ता**—बन्धनरूप संसारके निर्माता, ५९२ **सुबन्धनविमोचनः**—मायाके सुदृढ़ बन्धनसे छुड़ानेवाले, ५९३ **सयज्ञारिः**—दक्षयज्ञ-शत्रुओंके साथी, ५९४ **सकामारिः**—कामविजयी योगियोंके साथी, ५९५ **महादंष्ट्रः**—बड़ी-बड़ी दाढ़वाले नरसिंहरूप, ५९६ **महायुधः**—विशाल आयुधधारी॥ १०१॥

बहुधा निन्दितः शर्वः शङ्करः शङ्करोऽधनः।
अमरेशो महादेवो विश्वदेवः सुरारिहा॥ १०२॥

५९७ **बहुधा निन्दितः**—दक्ष और उनके समर्थकोंद्वारा अनेक प्रकारसे निन्दित, ५९८ **शर्वः**—प्रलयकालमें सबका संहार करनेवाले, ५९९ **शङ्करः**—कल्याणकारी, ६०० **शङ्करः**—भक्तोंको आनन्द देनेवाले, ६०१ **अधनः**—सांसारिक धनसे रहित, ६०२ **अमरेशः**—देवताओंके भी ईश्वर, ६०३ **महादेवः**—देवताओंके भी पूजनीय, ६०४ **विश्वदेवः**—सम्पूर्ण विश्वके आराध्यदेव, ६०५ **सुरारिहा**—देवशत्रुओंका वध करनेवाले॥ १०२॥

अहिर्बुध्न्योऽनिलाभश्च चेकितानो हविस्तथा।
अजैकपाच्च कापाली त्रिशंकुरजितः शिवः॥ १०३॥

६०६ **अहिर्बुध्न्यः**—शेषनागस्वरूप, ६०७ **अनिलाभः**—वायुके समान वेगवान्, ६०८ **चेकितानः**—अतिशय ज्ञानसम्पन्न, ६०९ **हविः**—हविष्यरूप, ६१० **अजैकपाद्**—ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक, ६११ **कापाली**—दो कपालोंसे निर्मित कपालरूप अखिल ब्रह्माण्डके अधीश्वर, ६१२ **त्रिशंकुः**—त्रिशंकुरूप, ६१३ **अजितः**—किसीके द्वारा पराजित न होनेवाले, ६१४ **शिवः**—कल्याणस्वरूप॥ १०३॥

धन्वन्तरिर्धूमकेतुः स्कन्दो वैश्रवणस्तथा।
धाता शक्रश्च विष्णुश्च मित्रस्त्वष्टा ध्रुवो धरः॥ १०४॥

६१५ **धन्वन्तरिः**—महावैद्य धन्वन्तरिरूप, ६१६ **धूमकेतुः**—अग्निस्वरूप, ६१७ **स्कन्दः**—स्वामी कार्तिकेयस्वरूप, ६१८ **वैश्रवणः**—कुबेरस्वरूप, ६१९ **धाता**—सबको धारण करनेवाले, ६२० **शक्रः**—इन्द्रस्वरूप, ६२१ **विष्णुः**—सर्वव्यापी नारायणदेव, ६२२ **मित्रः**—बारह आदित्योंमेंसे एक, ६२३ **त्वष्टा**—प्रजापति विश्वकर्मा, ६२४ **ध्रुवः**—नित्यस्वरूप, ६२५ **धरः**—आठ वसुओंमेंसे एक वसु धरस्वरूप॥

प्रभावः सर्वगो वायुरर्यमा सविता रविः।
उषङ्गुश्च विधाता च मान्धाता भूतभावनः॥ १०५॥

६२६ **प्रभावः**—उत्कृष्टभावसे सम्पन्न, ६२७ **सर्वगो वायुः**—सर्वव्यापी वायु—सूत्रात्मा, ६२८ **अर्यमा**—बारह आदित्योंमें एक आदित्य अर्यमारूप, ६२९ **सविता**—सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्ति करनेवाले, ६३० **रविः**—सूर्य, ६३१ **उषङ्गुः**—सर्वदाहक किरणोंवाले सूर्यरूप, ६३२ **विधाता**—प्रजाका विशेषरूपसे धारण-पोषण करनेवाले, ६३३ **मान्धाता**—जीवको तृप्ति प्रदान करनेवाले, ६३४ **भूतभावनः**—समस्त प्राणियोंके उत्पादक॥ १०५॥

विभुर्वर्णविभावी च सर्वकामगुणावहः।
पद्मनाभो महागर्भश्चन्द्रवक्त्रोऽनिलोऽनलः॥ १०६॥

६३५ **विभुः**—विविधरूपसे विद्यमान, ६३६ **वर्णविभावी**—श्वेत-पीत आदि वर्णोंको विविधरूपसे व्यक्त करनेवाले, ६३७ **सर्वकाम-गुणावहः**—समस्त भोगों और गुणोंकी प्राप्ति करानेवाले ६३८ **पद्मनाभः**—अपनी नाभिसे कमलको प्रकट करनेवाले विष्णुरूप, ६३९ **महागर्भः**—विशाल ब्रह्माण्डको उदरमें धारण करनेवाले, ६४० **चन्द्रवक्त्रः**—चन्द्रमा-जैसे मनोहर मुखवाले, ६४१ **अनिलः**—वायुदेव, ६४२ **अनलः**—अग्निदेव॥ १०६॥

बलवांश्चोपशान्तश्च पुराणः पुण्यचञ्चुरी।
कुरुकर्ता कुरुवासी कुरुभूतो गुणौषधः॥ १०७॥

६४३ **बलवान्**—शक्तिशाली, ६४४ **उपशान्तः**—शान्तस्वरूप, ६४५ **पुराणः**—पुराणपुरुष, ६४६ **पुण्यचञ्चुः**—पुण्यके द्वारा जाननेमें आनेवाले, ६४७ **ईः**—दयास्वरूप, ६४८ **कुरुकर्ता**—कुरुक्षेत्रके निर्माता, ६४९ **कुरुवासी**—कुरुक्षेत्रनिवासी, ६५० **कुरुभूतः**—कुरुक्षेत्रस्वरूप, ६५१ **गुणौषधः**—गुणोंको उत्पन्न करनेवाली ओषधिके समान ज्ञान, वैराग्य आदि गुणोंके उत्पादक॥ १०७॥

सर्वाशयो दर्भचारी सर्वेषां प्राणिनां पतिः।
देवदेवः सुखासक्तः सदसत्सर्वरत्नवित्॥ १०८॥

६५२ **सर्वाशयः**—सबके आश्रय, ६५३ **दर्भचारी**—वेदीपर बिछे हुए—कुशोंपर रखे हुए हविष्यको भक्षण करनेवाले, ६५४ **सर्वेषां प्राणिनां पतिः**—समस्त प्राणियोंके स्वामी, ६५५ **देवदेवः**—देवताओंके भी देवता, ६५६ **सुखासक्तः**—अपने परमानन्दमय स्वरूपमें ही रत रहनेवाले, ६५७ **सत्**—सत्स्वरूप, ६५८ **असत्**—असत्स्वरूप, ६५९ **सर्वरत्नवित्**—सम्पूर्ण रत्नोंके ज्ञाता॥ १०८॥

कैलासगिरिवासी च हिमवद्गिरिसंश्रयः।
कूलहारी कूलकर्ता बहुविद्यो बहुप्रदः॥ १०९॥

६६० **कैलासगिरिवासी**—कैलास पर्वतपर निवास करनेवाले, ६६१ **हिमवद्गिरिसंश्रयः**—हिमालयपर्वतके निवासी, ६६२ **कूलहारी**—प्रबल प्रवाहरूपसे नदियोंके तटोंका अपहरण करनेवाले, ६६३ **कूलकर्ता**—पुष्कर आदि बड़े-बड़े सरोवरोंका निर्माण करनेवाले, ६६४ **बहुविद्यः**—बहुत-सी विद्याओंके ज्ञाता, ६६५ **बहुप्रदः**—बहुत अधिक देनेवाले॥ १०९॥

वणिजो वर्धकी वृक्षो बकुलश्चन्दनश्छदः।
सारग्रीवो महाजत्रुरलोलश्च महौषधः॥ ११०॥

६६६ **वणिजो**—वैश्यरूप, ६६७ **वर्धकी**—संसाररूपी वृक्षको काटनेवाले बढ़ई, ६६८ **वृक्षः**—संसाररूप वृक्षस्वरूप, ६६९ **बकुलः**—मौलसिरी वृक्षस्वरूप, ६७० **चन्दनः**—चन्दन वृक्षस्वरूप, ६७१ **छदः**—छितवन वृक्षस्वरूप, ६७२ **सारग्रीवः**—सुदृढ़ कण्ठवाले, ६७३ **महाजत्रुः**—बहुत बड़ी हँसुलीवाले, ६७४ **अलोलः**—अचंचल, ६७५ **महौषधः**—महान् औषधस्वरूप॥ ११०॥

सिद्धार्थकारी सिद्धार्थश्छन्दोव्याकरणोत्तरः।
सिंहनादः सिंहदंष्ट्रः सिंहगः सिंहवाहनः॥ १११॥

६७६ **सिद्धार्थकारी**—आश्रितजनोंको सफलमनोरथ करनेवाले, ६७७ **सिद्धार्थः**—वेदकी व्याख्यासे निर्णीत उत्कृष्ट सिद्धान्तस्वरूप, ६७८ **सिंहनादः**—सिंहके समान गर्जना करनेवाले, ६७९ **सिंहदंष्ट्रः**—सिंहके समान दाढ़वाले, ६८० **सिंहगः**—सिंहपर आरूढ़ होकर चलनेवाले, ६८१ **सिंहवाहनः**—सिंहपर सवारी करनेवाले॥ १११॥

प्रभावात्मा जगत्कालस्थालो लोकहितस्तरुः।
सारङ्गो नवचक्राङ्गः केतुमाली सभावनः॥ ११२॥

६८२ **प्रभावात्मा**—उत्कृष्ट सत्तास्वरूप, ६८३ **जगत्कालस्थालः**—प्रलयकालमें जगत्का संहार करनेवाले कालके स्थान, ६८४ **लोकहितः**—लोकहितैषी, ६८५ **तरुः**—तारनेवाले, ६८६ **सारङ्गः**—चातकस्वरूप, ६८७ **नवचक्राङ्गः**—नूतन हंसरूप, ६८८ **केतुमाली**—ध्वजा-पताकाओंकी मालाओंसे अलंकृत, ६८९ **सभावनः**—धर्मस्थानकी रक्षा करनेवाले॥

भूतालयो भूतपतिरहोरात्रमनिन्दितः॥ ११३॥

६९० **भूतालयः**—सम्पूर्ण भूतोंके घर, ६९१ **भूतपतिः**—सम्पूर्ण प्राणियोंके स्वामी, ६९२ **अहोरात्रम्**—दिन-रात्रिस्वरूप, ६९३ **अनिन्दितः**—निन्दारहित॥ ११३॥

वाहिता सर्वभूतानां निलयश्च विभुर्भवः।
अमोघः संयतो ह्यश्वो भोजनः प्राणधारणः॥ ११४॥

६९४ **सर्वभूतानां वाहिता**—सम्पूर्ण भूतोंका भार वहन करनेवाले, ६९५ **सर्वभूतानां निलयः**—समस्त प्राणियोंके निवासस्थान, ६९६ **विभुः**—सर्वव्यापी, ६९७ **भवः**—सत्तारूप, ६९८ **अमोघः**—कभी असफल न होनेवाले, ६९९ **संयतः**—संयमशील, ७०० **अश्वः**—उच्चैःश्रवा आदि उत्तम अश्वरूप, ७०१ **भोजनः**—अन्नदाता, ७०२ **प्राणधारणः**—सबके प्राणोंकी रक्षा करनेवाले॥ ११४॥

धृतिमान् मतिमान् दक्षः सत्कृतश्च युगाधिपः।
गोपालिर्गोपतिर्ग्रामो गोचर्मवसनो हरिः॥ ११५॥

७०३ **धृतिमान्**—धैर्यशाली, ७०४ **मतिमान्**—बुद्धिमान्, ७०५ **दक्षः**—चतुर, ७०६ **सत्कृतः**—सबके द्वारा सम्मानित, ७०७ **युगाधिपः**—युगके स्वामी, ७०८ **गोपालिः**—इन्द्रियोंके पालक, ७०९ **गोपतिः**—गौओंके स्वामी, ७१० **ग्रामः**—समूहरूप, ७११ **गोचर्मवसनः**—गोचर्ममय वस्त्र धारण करनेवाले, ७१२ **हरिः**—भक्तोंका दुःख हर लेनेवाले॥ ११५॥

हिरण्यबाहुश्च तथा गुहापालः प्रवेशिनाम्।
प्रकृष्टारिर्महाहर्षो जितकामो जितेन्द्रियः॥ ११६॥

७१३ **हिरण्यबाहुः**—सुनहरी कान्तिवाली सुन्दर भुजाओंसे सुशोभित, ७१४ **गुहापालः प्रवेशिनाम्**—गुफाके भीतर प्रवेश करनेवाले योगियोंकी गुफाके रक्षक, ७१५ **प्रकृष्टारिः**—काम, क्रोध आदि शत्रुओंको क्षीण कर देनेवाले, ७१६ **महाहर्षः**—परमानन्दस्वरूप, ७१७ **जितकामः**—कामविजयी, ७१८ **जितेन्द्रियः**—इन्द्रियविजयी॥ ११६॥

गान्धारश्च सुवासश्च तपःसक्तो रतिर्नरः।
महागीतो महानृत्यो ह्यप्सरोगणसेवितः॥ ११७॥

७११ **गान्धारः**—गान्धार नामक स्वररूप, ७२० **सुवासः**—कैलास नामक सुन्दर स्थानमें वास करनेवाले, ७२१ **तपःसक्तः**—तपस्यामें संलग्न, ७२२ **रतिः**—प्रीतिरूप, ७२३ **नरः**—विराट् पुरुष, ७२४ **महागीतः**—जिनके माहात्म्यका वेद-शास्त्रोंद्वारा गान किया गया है ऐसे महान् देव, ७२५ **महानृत्यः**—प्रकाण्ड ताण्डव करनेवाले, ७२६ **अप्सरोगणसेवितः**—अप्सराओंके समुदायसे सेवित॥ ११७॥

महाकेतुर्महाधातुर्नैकसानुचरश्चलः ।
आवेदनीय आदेशः सर्वगन्धसुखावहः॥ ११८॥

७२७ **महाकेतुः**—धर्मरूप महान् ध्वजावाले, ७२८ **महाधातुः**—सुवर्णस्वरूप, ७२९ **नैकसानुचरः**—मेरुगिरिके अनेक शिखरोंपर विचरण करनेवाले, ७३० **चलः**—किसीकी पकड़में नहीं आनेवाले, ७३१ **आवेदनीयः**—प्रार्थना करनेयोग्य, ७३२ **आदेशः**—आज्ञा प्रदान करनेवाले, ७३३ **सर्वगन्धसुखावहः**—सम्पूर्ण गन्धादि विषयोंके सुखकी प्राप्ति करानेवाले॥

तोरणस्तारणो वातः परिधी पतिखेचरः ।
संयोगो वर्धनो वृद्धो अतिवृद्धो गुणाधिकः॥ ११९॥

७३४ **तोरणः**—मुक्तिद्वारस्वरूप, ७३५ **तारणः**—तारनेवाले, ७३६ **वातः**—वायुरूप, ७३७ **परिधीः**—ब्रह्माण्डका घेरारूप, ७३८ **पतिखेचरः**—आकाशचारीका स्वामी, ७३९ **वर्धनः संयोगः**—वृद्धिका हेतुभूत स्त्री-पुरुषका संयोग, ७४० **वृद्धः**—गुणोंमें बढ़ा-चढ़ा, ७४१ **अतिवृद्धः**—सबसे पुरातन होनेके कारण अतिवृद्ध, ७४२ **गुणाधिकः**—ज्ञान-ऐश्वर्य आदि गुणोंके द्वारा सबसे अधिकतर॥ ११९॥

नित्य आत्मसहायश्च देवासुरपतिः पतिः ।
युक्तश्च युक्तबाहुश्च देवो दिविसुपर्वणः॥ १२०॥

७४३ **नित्य आत्मसहायः**—आत्माकी सदा सहायता करनेवाले, ७४४ **देवासुरपतिः**—देवताओं और असुरोंके स्वामी, ७४५ **पतिः**—सबके स्वामी, ७४६ **युक्तः**—भक्तोंके उद्धारके लिये सदा उद्यत रहनेवाले, ७४७ **युक्तबाहुः**—सबकी रक्षाके लिये उपयुक्त भुजाओंवाले, ७४८ **देवो दिविसुपर्वणः**—स्वर्गमें जो महान् देवता इन्द्र हैं, उनके भी आराध्यदेव॥

आषाढश्च सुषाढश्च ध्रुवोऽथ हरिणो हरः ।
वपुरावर्तमानेभ्यो वसुश्रेष्ठो महापथः॥ १२१॥

७४९ **आषाढः**—भक्तोंको सब कुछ सहन करनेकी शक्ति देनेवाले, ७५० **सुषाढः**—उत्तम सहनशील, ७५१ **ध्रुवः**—अविचलस्वरूप, ७५२ **हरिणः**—शुद्धस्वरूप, ७५३ **हरः**—पापहारी, ७५४ **आवर्तमानेभ्यो वपुः**—स्वर्गलोकसे लौटनेवालेको नूतन शरीर देनेवाले, ७५५ **वसुश्रेष्ठः**—श्रेष्ठ धनस्वरूप अर्थात् मुक्तिस्वरूप, ७५६ **महापथः**—सर्वोत्तम मार्गस्वरूप॥ १२१॥

शिरोहारी विमर्शश्च सर्वलक्षणलक्षितः ।
अक्षश्च रथयोगी च सर्वयोगी महाबलः॥ १२२॥

७५७ **विमर्शः शिरोहारी**—विवेकपूर्वक दुष्टोंका शिरश्छेद करनेवाले, ७५८ **सर्वलक्षणलक्षितः**—समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, ७५९ **अक्षः रथयोगी**—रथसे सम्बन्ध रखनेवाला धुरीस्वरूप, ७६० **सर्वयोगी**—सभी समयमें योगयुक्त, ७६१ **महाबलः**—अनन्त शक्तिसे सम्पन्न॥ १२२॥

समाम्नायोऽसमाम्नायस्तीर्थदेवो महारथः ।
निर्जीवो जीवनो मन्त्रः शुभाक्षो बहुकर्कशः॥ १२३॥

७६२ **समाम्नायः**—वेदस्वरूप, ७६३ **असमाम्नायः**—वेदभिन्न स्मृति, इतिहास, पुराण और आगमरूप, ७६४ **तीर्थदेवः**—सम्पूर्ण तीर्थोंके देवस्वरूप, ७६५ **महारथः**—त्रिपुरदाहके समय पृथ्वीरूपी विशाल रथपर आरूढ़ होनेवाले, ७६६ **निर्जीवः**—जड-प्रपञ्चस्वरूप, ७६७ **जीवनः**—जीवनदाता, ७६८ **मन्त्रः**—प्रणव आदि मन्त्रस्वरूप, ७६९ **शुभाक्षः**—मंगलमयी दृष्टिवाले, ७७० **बहुकर्कशः**—संहारकालमें अत्यन्त कठोर स्वभाववाले॥ १२३॥

रत्नप्रभूतो रत्नाङ्गो महार्णवनिपानवित् ।
मूलं विशालो ह्यमृतो व्यक्ताव्यक्तस्तपोनिधिः॥ १२४॥

७७१ **रत्नप्रभूतः**—अनेक रत्नोंके भण्डाररूप, ७७२ **रत्नाङ्गः**—रत्नमय अंगवाले, ७७३ **महार्णव-निपानवित्**—महासागररूपी निपानों (हौजों)-को जाननेवाले, ७७४ **मूलम्**—संसाररूपी वृक्षके कारण, ७७५ **विशालः**—अत्यन्त शोभायमान, ७७६ **अमृतः**—अमृतस्वरूप, मुक्तिस्वरूप, ७७७ **व्यक्ताव्यक्तः**—साकार-निराकार स्वरूप, ७७८ **तपोनिधिः**—तपस्याके भण्डार॥ १२४॥

आरोहणोऽधिरोहश्च शीलधारी महायशाः ।
सेनाकल्पो महाकल्पो योगो युगकरो हरिः॥ १२५॥

७७९ **आरोहणः**—परम पदपर आरूढ़ होनेके द्वारस्वरूप, ७८० **अधिरोहः**—परम पदपर आरूढ़, ७८१ **शीलधारी**—सुशीलसम्पन्न, ७८२ **महायशाः**—महान् यशसे सम्पन्न, ७८३ **सेनाकल्पः**—सेनाके

आभूषणरूप, ७८४ **महाकल्पः**—बहुमूल्य अलंकारोंसे अलंकृत, ७८५ **योगः**—चित्तवृत्तियोंके निरोधस्वरूप, ७८६ **युगकरः**—युगप्रवर्तक, ७८७ **हरिः**—भक्तोंका दुःख हर लेनेवाले॥ १२५॥

युगरूपो महारूपो महानागहनोऽवधः।
न्यायनिर्वपणः पादः पण्डितो ह्यचलोपमः॥ १२६॥

७८८ **युगरूपः**—युगस्वरूप, ७८९ **महारूपः**—महान्‌रूपवाले, ७९० **महानागहनः**—विशालकाय गजासुरका वध करनेवाले, ७९१ **अवधः**—मृत्युरहित, ७९२ **न्यायनिर्वपणः**—न्यायोचित दान करनेवाले, ७९३ **पादः**—शरण लेनेयोग्य (पद्यते भक्तैः इति **पादः**), ७९४ **पण्डितः**—ज्ञानी, ७९५ **अचलोपमः**—पर्वतके समान अविचल॥ १२६॥

बहुमालो महामालः शशी हरसुलोचनः।
विस्तारो लवणः कूपस्त्रियुगः सफलोदयः॥ १२७॥

७९६ **बहुमालः**—बहुत-सी मालाएँ धारण करनेवाले, ७९७ **महामालः**—महती—पैरोंतक लटकनेवाली माला धारण करनेवाले, ७९८ **शशी हरसुलोचनः**—चन्द्रमाके समान सौम्य दृष्टियुक्त महादेव, ७९९ **विस्तारो लवणः कूपः**—विस्तृत क्षारसमुद्रस्वरूप, ८०० **त्रियुगः**—सत्ययुग, त्रेता और द्वापर त्रिविध युगस्वरूप, ८०१ **सफलोदयः**—जिसका अवतररूपमें प्रकट होना सफल है॥ १२७॥

त्रिलोचनो विषण्णाङ्गो मणिविद्धो जटाधरः।
बिन्दुर्विसर्गः सुमुखः शरः सर्वायुधः सहः॥ १२८॥

८०२ **त्रिलोचनः**—त्रिनेत्रधारी, ८०३ **विषण्णाङ्गः**—अंगरहित अर्थात् सर्वथा निराकार, ८०४ **मणिविद्धः**—मणिका कुण्डल पहननेके लिये छिदे हुए कर्णवाले, ८०५ **जटाधरः**—जटाधारी, ८०६ **बिन्दुः**—अनुस्वाररूप, ८०७ **विसर्गः**—विसर्जनीयस्वरूप, ८०८ **सुमुखः**—सुन्दर मुखवाले, ८०९ **शरः**—बाणस्वरूप, ८१० **सर्वायुधः**—सम्पूर्ण आयुधोंसे युक्त, ८११ **सहः**—सहनशील॥ १२८॥

निवेदनः सुखाजातः सुगन्धारो महाधनुः।
गन्धपाली च भगवानुत्थानः सर्वकर्मणाम्॥ १२९॥

८१२ **निवेदनः**—सब प्रकारकी वृत्तिसे रहित ज्ञानवाले, ८१३ **सुखाजातः**—सब वृत्तियोंका लय होनेपर सुखरूपसे प्रकट होनेवाले, ८१४ **सुगन्धारः**—उत्तम गन्धसे युक्त, ८१५ **महाधनुः**—पिनाक नामक विशाल धनुष धारण करनेवाले, ८१६ **भगवान् गन्धपाली**—उत्तम गन्धकी रक्षा करनेवाले भगवान्, ८१७ **सर्वकर्मणामुत्थानः**—समस्त कर्मोंके उत्थानस्थान॥ १२९॥

मन्थानो बहुलो वायुः सकलः सर्वलोचनः।
तलस्तालः करस्थाली ऊर्ध्वसंहननो महान्॥ १३०॥

८१८ **मन्थानो बहुलो वायुः**—विश्वको मथ डालनेमें समर्थ प्रलयकालकी महान् वायुस्वरूप, ८१९ **सकलः**—सम्पूर्ण कलाओंसे युक्त, ८२० **सर्वलोचनः**—सबके द्रष्टा, ८२१ **तलस्तालः**—हाथपर ही ताल देनेवाले, ८२२ **करस्थाली**—हाथोंसे ही भोजनपात्रका काम लेनेवाले, ८२३ **ऊर्ध्वसंहननः**—सुदृढ़ शरीरवाले, ८२४ **महान्**—श्रेष्ठतम॥ १३०॥

छत्रं सुच्छत्रो विख्यातो लोकः सर्वाश्रयः क्रमः।
मुण्डो विरूपो विकृतो दण्डी कुण्डी विकुर्वणः॥ १३१॥

८२५ **छत्रम्**—छत्रके समान पाप-तापसे सुरक्षित रखनेवाले, ८२६ **सुच्छत्रः**—उत्तम छत्रस्वरूप, ८२७ **विख्यातो लोकः**—सुप्रसिद्ध लोकस्वरूप, ८२८ **सर्वाश्रयः क्रमः**—सबके आधारभूत गति, ८२९ **मुण्डः**—मुण्डित-मस्तक, ८३० **विरूपः**—विकट रूपवाले, ८३१ **विकृतः**—सम्पूर्ण विपरीत क्रियाओंको धारण करनेवाले, ८३२ **दण्डी**—दण्डधारी, ८३३ **कुण्डी**—खप्परधारी, ८३४ **विकुर्वणः**—क्रियाद्वारा अलभ्य॥ १३१॥

हर्यक्षः ककुभो वज्री शतजिह्वः सहस्रपात्।
सहस्रमूर्धा देवेन्द्रः सर्वदेवमयो गुरुः॥ १३२॥

८३५ **हर्यक्षः**—सिंहस्वरूप, ८३६ **ककुभः**—सम्पूर्ण दिशास्वरूप, ८३७ **वज्री**—वज्रधारी, ८३८ **शतजिह्वः**—सैकड़ों जिह्वावाले, ८३९ **सहस्रपात् सहस्रमूर्धा**—सहस्रों पैर और मस्तकवाले, ८४० **देवेन्द्रः**—देवताओंके राजा, ८४१ **सर्वदेवमयः**—सम्पूर्ण देवस्वरूप, ८४२ **गुरुः**—सबके ज्ञानदाता॥ १३२॥

सहस्रबाहुः सर्वाङ्गः शरण्यः सर्वलोककृत्।
पवित्रं त्रिककुन्मन्त्रः कनिष्ठः कृष्णपिङ्गलः॥ १३३॥

८४३ **सहस्रबाहुः**—सहस्रों भुजाओंवाले, ८४४ **सर्वाङ्गः**—समस्त अंगोंसे सम्पन्न, ८४५ **शरण्यः**—शरण लेनेके योग्य, ८४६ **सर्वलोककृत्**—सम्पूर्ण लोकोंके उत्पन्न करनेवाले, ८४७ **पवित्रम्**—परम पावन, ८४८ **त्रिककुन्मन्त्रः**—त्रिपदा गायत्रीरूप, ८४९ **कनिष्ठः**—अदितिके पुत्रोंमें छोटे, वामनरूपधारी विष्णु, ८५० **कृष्णपिङ्गलः**—श्याम-गौर हरि-हर-मूर्ति॥ १३३॥

ब्रह्मदण्डविनिर्माता शतघ्नीपाशशक्तिमान्।
पद्मगर्भो महागर्भो ब्रह्मगर्भो जलोद्भवः॥ १३४॥

८५१ **ब्रह्मदण्डविनिर्माता**—ब्रह्मदण्डका निर्माण करनेवाले, ८५२ **शतघ्नीपाशशक्तिमान्**—शतघ्नी, पाश और शक्तिसे युक्त, ८५३ **पद्मगर्भः**—ब्रह्मास्वरूप, ८५४ **महागर्भः**—जगत्‌रूप गर्भको धारण करनेवाले होनेसे महागर्भ, ८५५ **ब्रह्मगर्भः**—वेदको उदरमें धारण करनेवाले, ८५६ **जलोद्भवः**—एकार्णवके जलमें प्रकट होनेवाले॥ १३४॥

गभस्तिर्ब्रह्मकृद् ब्रह्मी ब्रह्मविद् ब्राह्मणो गतिः।
अनन्तरूपो नैकात्मा तिग्मतेजाः स्वयम्भुवः॥ १३५॥

८५७ **गभस्तिः**—सूर्यस्वरूप, ८५८ **ब्रह्मकृत्**—वेदोंका आविष्कार करनेवाले, ८५९ **ब्रह्मी**—वेदाध्यायी, ८६० **ब्रह्मवित्**—वेदार्थवेत्ता, ८६१ **ब्राह्मणः**—ब्रह्मनिष्ठ, ८६२ **गतिः**—ब्रह्मनिष्ठोंकी परमगति, ८६३ **अनन्तरूपः**—अनन्त रूपवाले, ८६४ **नैकात्मा**—अनेक शरीरधारी, ८६५ **तिग्मतेजाः स्वयम्भुवः**—ब्रह्माजीकी अपेक्षा प्रचण्ड तेजस्वी॥ १३५॥

ऊर्ध्वगात्मा पशुपतिर्वातरंहा मनोजवः।
चन्दनी पद्मनालाग्रः सुरभ्युत्तरणो नरः॥ १३६॥

८६६ **ऊर्ध्वगात्मा**—देश-काल-वस्तुकृत उपाधिसे अतीत स्वरूपवाले, ८६७ **पशुपतिः**—जीवोंके स्वामी, ८६८ **वातरंहाः**—वायुके समान वेगशाली, ८६९ **मनोजवः**—मनके समान वेगशाली, ८७० **चन्दनी**—चन्दनचर्चित अंगवाले, ८७१ **पद्मनालाग्रः**—पद्मनालके मूल विष्णुस्वरूप, ८७२ **सुरभ्युत्तरणः**—सुरभिको नीचे उतारनेवाले, ८७३ **नरः**—पुरुषरूप॥ १३६॥

कर्णिकारमहास्रग्वी नीलमौलिः पिनाकधृत्।
उमापतिरुमाकान्तो जाह्नवीधृदुमाधवः॥ १३७॥

८७४ **कर्णिकारमहास्रग्वी**—कनेरकी बहुत बड़ी माला धारण करनेवाले, ८७५ **नीलमौलिः**—मस्तकपर नीलमणिमय मुकुट धारण करनेवाले, ८७६ **पिनाकधृत्**—पिनाक धनुषको धारण करनेवाले, ८७७ **उमापतिः**—उमा—ब्रह्मविद्याके स्वामी, ८७८ **उमाकान्तः**—पार्वतीके प्राण-प्रियतम, ८७९ **जाह्नवीधृत्**—गंगाको मस्तकपर धारण करनेवाले, ८८० **उमाधवः**—पार्वतीपति॥ १३७॥

वरो वराहो वरदो वरेण्यः सुमहास्वनः।
महाप्रसादो दमनः शत्रुहा श्वेतपिङ्गलः॥ १३८॥

८८१ **वरो वराहः**—श्रेष्ठ वराहरूपधारी भगवान्, ८८२ **वरदः**—वरदाता, ८८३ **वरेण्यः**—स्वामी बनाने योग्य, ८८४ **सुमहास्वनः**—महान् गर्जना करनेवाले, ८८५ **महाप्रसादः**—भक्तोंपर महान् अनुग्रह करनेवाले, ८८६ **दमनः**—दुष्टोंका दमन करनेवाले, ८८७ **शत्रुहा**—शत्रुनाशक, ८८८ **श्वेतपिङ्गलः**—अर्धनारीनरेश्वर वेशमें श्वेत-पिंगल वर्णवाले॥ १३८॥

पीतात्मा परमात्मा च प्रयतात्मा प्रधानधृत्।
सर्वपार्श्वमुखस्त्र्यक्षो धर्मसाधारणो वरः॥ १३९॥

८८९ **पीतात्मा**—हिरण्मय पुरुष, ८९० **परमात्मा**—परब्रह्म परमेश्वर, ८९१ **प्रयतात्मा**—विशुद्धचित्त, ८९२ **प्रधानधृत्**—जगत्‌के कारणभूत त्रिगुणमय प्रधानके अधिष्ठानस्वरूप, ८९३ **सर्वपार्श्वमुखः**—सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर मुखवाले, ८९४ **त्र्यक्षः**—त्रिनेत्रधारी, ८९५ **धर्मसाधारणो वरः**—धर्म-पालनके अनुसार वर देनेवाले॥ १३९॥

चराचरात्मा सूक्ष्मात्मा अमृतो गोवृषेश्वरः।
साध्यर्षिर्वसुरादित्यो विवस्वान् सवितामृतः॥ १४०॥

८९६ **चराचरात्मा**—चराचर प्राणियोंके आत्मा, ८९७ **सूक्ष्मात्मा**—अति सूक्ष्मस्वरूप, ८९८ **अमृतो गोवृषेश्वरः**—निष्काम धर्मके स्वामी, ८९९ **साध्यर्षिः**—साध्य देवताओंके आचार्य, ९०० **आदित्यो वसुः**—अदितिकुमार वसु, ९०१ **विवस्वान् सवितामृतः**—किरणोंसे सुशोभित एवं जगत्‌को उत्पन्न करनेवाले अमृतस्वरूप सूर्य॥ १४०॥

व्यासः सर्गः सुसंक्षेपो विस्तरः पर्ययो नरः।
ऋतुः संवत्सरो मासः पक्षः संख्यासमापनः॥ १४१॥

९०२ **व्यासः**—पुराण-इतिहास आदिके स्रष्टा वेदव्यासस्वरूप, ९०३ **सर्गःसुसंक्षेपो विस्तरः**—संक्षिप्त और विस्तृत सृष्टिस्वरूप, ९०४ **पर्ययो नरः**—सब ओरसे व्याप्त करनेवाले वैश्वानरस्वरूप, ९०५ **ऋतुः**—ऋतुरूप, ९०६ **संवत्सरः**—संवत्सररूप, ९०७ **मासः**—मासरूप, ९०८ **पक्षः**—पक्षरूप, ९०९ **संख्यासमापनः**—पूर्वोक्त ऋतु आदिकी संख्या समाप्त करनेवाले पर्व (संक्रान्ति, दर्श, पूर्णमासादि) रूप॥ १४१॥

कलाः काष्ठा लवा मात्रा मुहूर्ताहःक्षपाः क्षणाः।
विश्वक्षेत्रं प्रजाबीजं लिङ्गमाद्यस्तु निर्गमः॥ १४२॥

९१० **कलाः**, ९११ **काष्ठाः**, ९१२ **लवाः**, ९१३ **मात्राः**—(इत्यादि कालावयवस्वरूप), ९१४ **मुहूर्ताहःक्षपाः**—मुहूर्त, दिन और रात्रिरूप,

११५ **क्षणाः**—क्षणरूप, ११६ **विश्वक्षेत्रम्**—ब्रह्माण्डरूपी वृक्षके आधार, ११७ **प्रजाबीजम्**—प्रजाओंके कारणरूप, ११८ **लिङ्गम्**—महत्तत्त्वस्वरूप, ११९ **आद्यो निर्गमः**—सबसे पहले प्रकट होनेवाले॥ १४२॥

सदसद् व्यक्तमव्यक्तं पिता माता पितामहः।
स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं मोक्षद्वारं त्रिविष्टपम्॥ १४३॥

१२० **सत्**—सत्स्वरूप, १२१ **असत्**—असत्स्वरूप, १२२ **व्यक्तम्**—साकाररूप, १२३ **अव्यक्तम्**—निराकाररूप, १२४ **पिता**, १२५ **माता**, १२६ **पितामहः**, १२७ **स्वर्गद्वारम्**—स्वर्गके साधनस्वरूप, १२८ **प्रजाद्वारम्**—प्रजाके कारण, १२९ **मोक्षद्वारम्**—मोक्षके साधनस्वरूप, १३० **त्रिविष्टपम्**—स्वर्गके साधनस्वरूप॥ १४३॥

निर्वाणं ह्लादनश्चैव ब्रह्मलोकः परा गतिः।
देवासुरविनिर्माता देवासुरपरायणः॥ १४४॥

१३१ **निर्वाणम्**—मोक्षस्वरूप, १३२ **ह्लादनः**—आनन्द प्रदान करनेवाले, १३३ **ब्रह्मलोकः**—ब्रह्मलोकस्वरूप, १३४ **परा गतिः**—सर्वोत्कृष्ट गतिस्वरूप, १३५ **देवासुरविनिर्माता**—देवताओं तथा असुरोंके जन्मदाता, १३६ **देवासुरपरायणः**— देवताओं तथा असुरोंके परम आश्रय॥ १४४॥

देवासुरगुरुर्देवो देवासुरनमस्कृतः।
देवासुरमहामात्रो देवासुरगणाश्रयः॥ १४५॥

१३७ **देवासुरगुरुः**—देवताओं और असुरोंके गुरु, १३८ **देवः**—परम देवस्वरूप, १३९ **देवासुरनमस्कृतः**—देवताओं और असुरोंसे वन्दित, १४० **देवासुरमहामात्रः**—देवताओं और असुरोंसे अत्यन्त श्रेष्ठ, १४१ **देवासुरगणाश्रयः**—देवताओं तथा असुरगणोंके आश्रय लेने योग्य॥ १४५॥

देवासुरगणाध्यक्षो देवासुरगणाग्रणीः।
देवातिदेवो देवर्षिर्देवासुरवरप्रदः॥ १४६॥

१४२ **देवासुरगणाध्यक्षः**—देवताओं तथा असुरगणोंके अध्यक्ष, १४३ **देवासुरगणाग्रणीः**—देवताओं तथा असुरोंके अगुआ, १४४ **देवातिदेवः**—देवताओंसे बढ़कर महादेव, १४५ **देवर्षिः**—नारदस्वरूप, १४६ **देवासुरवरप्रदः**—देवताओं और असुरोंको भी वरदान देनेवाले॥ १४६॥

देवासुरेश्वरो विश्वो देवासुरमहेश्वरः।
सर्वदेवमयोऽचिन्त्यो देवतात्माऽऽत्मसम्भवः॥ १४७॥

१४७ **देवासुरेश्वरः**—देवताओं और असुरोंके ईश्वर, १४८ **विश्वः**—विराट् स्वरूप, १४९ **देवासुरमहेश्वरः**—देवताओं और असुरोंके महान् ईश्वर, १५० **सर्वदेवमयः**—सम्पूर्ण देवस्वरूप, १५१ **अचिन्त्यः**—अचिन्त्यस्वरूप, १५२ **देवतात्मा**—देवताओंके अन्तरात्मा, १५३ **आत्मसम्भवः**—स्वयम्भू॥

उद्भित् त्रिविक्रमो वैद्यो विरजो नीरजोऽमरः।
ईड्यो हस्तीश्वरो व्याघ्रो देवसिंहो नरर्षभः॥ १४८॥

१५४ **उद्भित्**—वृक्षादिस्वरूप, १५५ **त्रिविक्रमः**—तीनों लोकोंको तीन चरणोंसे नाप लेनेवाले भगवान् वामन, १५६ **वैद्यः**—वैद्यस्वरूप, १५७ **विरजः**—रजोगुणरहित, १५८ **नीरजः**—निर्मल, १५९ **अमरः**—नाशरहित, १६० **ईड्यः**—स्तुतिके योग्य, १६१ **हस्तीश्वरः**—ऐरावत हस्तीके ईश्वर—इन्द्रस्वरूप, १६२ **व्याघ्रः**—सिंहस्वरूप, १६३ **देवसिंहः**—देवताओंमें सिंहके समान पराक्रमी, १६४ **नरर्षभः**—मनुष्योंमें श्रेष्ठ॥ १४८॥

विबुधोऽग्रवरः सूक्ष्मः सर्वदेवस्तपोमयः।
सुयुक्तः शोभनो वज्री प्रासानां प्रभवोऽव्ययः॥ १४९॥

१६५ **विबुधः**—विशेष ज्ञानवान्, १६६ **अग्रवरः**—यज्ञमें सबसे प्रथम भाग लेनेके अधिकारी, १६७ **सूक्ष्मः**—अत्यन्त सूक्ष्मस्वरूप, १६८ **सर्वदेवः**—सर्वदेवस्वरूप, १६९ **तपोमयः**—तपोमयस्वरूप, १७० **सुयुक्तः**—भक्तोंपर कृपा करनेके लिये सब तरहसे सदा सावधान रहनेवाले, १७१ **शोभनः**—कल्याणस्वरूप, १७२ **वज्री**—वज्रायुधधारी, १७३ **प्रासानां प्रभवः**—प्रास नामक अस्त्रकी उत्पत्तिके स्थान, १७४ **अव्ययः**—विनाशरहित॥ १४९॥

गुहः कान्तो निजः सर्गः पवित्रं सर्वपावनः।
शृङ्गी शृङ्गप्रियो बभ्रू राजराजो निरामयः॥ १५०॥

१७५ **गुहः**—कुमार कार्तिकेयस्वरूप १७६ **कान्तः**—आनन्दकी पराकाष्ठारूप, १७७ **निजः सर्गः**—सृष्टिसे अभिन्न, १७८ **पवित्रम्**—परम पवित्र, १७९ **सर्वपावनः**—सबको पवित्र करनेवाले, १८० **शृङ्गी**—सिंगी नामक बाजा अपने पास रखनेवाले, १८१ **शृङ्गप्रियः**—पर्वत-शिखरको पसंद करनेवाले, १८२ **बभ्रूः**—विष्णुस्वरूप, १८३ **राजराजः**—राजाओंके राजा, १८४ **निरामयः**—सर्वथा दोषरहित॥ १५०॥

अभिरामः सुरगणो विरामः सर्वसाधनः।
ललाटाक्षो विश्वदेवो हरिणो ब्रह्मवर्चसः॥ १५१॥

१८५ **अभिरामः**—आनन्ददायक, १८६ **सुरगणः**—

देवसमुदायरूप, **९८७ विराम:**—सबसे उपरत, **९८८ सर्वसाधन:**—सभी साधनोंद्वारा साध्य, **९८९ ललाटाक्ष:**—ललाटमें तीसरा नेत्र धारण करनेवाले, **९९० विश्वदेव:**—सम्पूर्ण विश्वके द्वारा क्रीड़ा करनेवाले, **९९१ हरिण:**—मृगरूप, **९९२ ब्रह्मवर्चस:**—ब्रह्मतेजसे सम्पन्न॥ १५१॥

स्थावराणां पतिश्चैव नियमेन्द्रियवर्धन:।
सिद्धार्थ:सिद्धभूतार्थोऽचिन्त्य:सत्यव्रत: शुचि:॥ १५२॥

९९३ स्थावराणां पति:—पर्वतोंके स्वामी हिमाचलादिरूप, **९९४ नियमेन्द्रियवर्धन:**—नियमोंद्वारा मनसहित इन्द्रियोंका दमन करनेवाले, **९९५ सिद्धार्थ:**—आप्तकाम, **९९६ सिद्धभूतार्थ:**—जिसके समस्त प्रयोजन सिद्ध हैं, **९९७ अचिन्त्य:**—चित्तकी पहुँचसे परे, **९९८ सत्यव्रत:**—सत्यप्रतिज्ञ, **९९९ शुचि:**—सर्वथा शुद्ध॥ १५२॥

व्रताधिप: परं ब्रह्म भक्तानां परमा गति:।
विमुक्तो मुक्ततेजाश्च श्रीमान् श्रीवर्धनो जगत्॥ १५३॥

१००० व्रताधिप:—व्रतोंके अधिपति, **१००१ परम्**—सर्वश्रेष्ठ, **१००२ ब्रह्म**—देश, काल और वस्तुसे अपरिच्छिन्न चिन्मयतत्त्व, **१००३ भक्तानां परमा गति:**—भक्तोंके लिये परम गतिस्वरूप, **१००४ विमुक्त:**—नित्य मुक्त, **१००५ मुक्ततेजा:**—शत्रुओंपर तेज छोड़नेवाले, **१००६ श्रीमान्**—योगैश्वर्यसे सम्पन्न, **१००७ श्रीवर्धन:**—भक्तोंकी सम्पत्तिको बढ़ानेवाले, **१००८ जगत्**—जगत्स्वरूप॥ १५३॥

यथाप्रधानं भगवानिति भक्त्या स्तुतो मया।
यन्न ब्रह्मादयो देवा विदुस्तत्त्वेन नर्षय:॥ १५४॥
स्तोतव्यमर्च्यं वन्द्यं च क: स्तोष्यति जगत्पतिम्।

श्रीकृष्ण! इस प्रकार बहुत-से नामोंमेंसे प्रधान-प्रधान नाम चुनकर मैंने उनके द्वारा भक्तिपूर्वक भगवान् शंकरका स्तवन किया। जिन्हें ब्रह्मा आदि देवता तथा ऋषि भी तत्त्वसे नहीं जानते। उन्हीं स्तवनके योग्य, अर्चनीय और वन्दनीय जगत्पति शिवकी कौन स्तुति करेगा?॥ १५४½॥

भक्त्या त्वेवं पुरस्कृत्य मया यज्ञपतिर्विभु:॥ १५५॥
ततोऽभ्यनुज्ञां सम्प्राप्य स्तुतो मतिमतां वर:।

इस तरह भक्तिके द्वारा भगवान्‌को सामने रखते हुए मैंने उन्हींसे आज्ञा लेकर उन बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ भगवान् यज्ञपतिकी स्तुति की॥ १५५½॥

शिवमेभि: स्तुवन् देवं नामभि: पुष्टिवर्धनै:॥ १५६॥
नित्ययुक्त: शुचिर्भक्त: प्राप्नोत्यात्मानमात्मना॥ १५७॥

जो सदा योगयुक्त एवं पवित्रभावसे रहनेवाला भक्त इन पुष्टिवर्धक नामोंद्वारा भगवान् शिवकी स्तुति करता है, वह स्वयं ही उन परमात्मा शिवको प्राप्त कर लेता है॥ १५६-१५७॥

एतद्धि परमं ब्रह्म परं ब्रह्माधिगच्छति।
ऋषयश्चैव देवाश्च स्तुवन्त्येतेन तत्परम्॥ १५८॥

यह उत्तम वेदतुल्य स्तोत्र परब्रह्म परमात्म-स्वरूप शिवको अपना लक्ष्य बनाता है। ऋषि और देवता भी उसके द्वारा उन परमात्मा शिवकी स्तुति करते हैं॥ १५८॥

स्तूयमानो महादेवस्तुष्यते नियतात्मभि:।
भक्तानुकम्पी भगवानात्मसंस्थाकरो विभु:॥ १५९॥

जो लोग मनको संयममें रखकर इन नामोंद्वारा भक्तवत्सल तथा आत्मनिष्ठा प्रदान करनेवाले भगवान् महादेवकी स्तुति करते हैं, उनपर वे बहुत संतुष्ट होते हैं॥ १५९॥

तथैव च मनुष्येषु ये मनुष्या: प्रधानत:।
आस्तिका: श्रद्दधानाश्च बहुभिर्जन्मभि: स्तवै:॥ १६०॥
भक्त्या ह्यनन्यमीशानं परं देवं सनातनम्।
कर्मणा मनसा वाचा भावेनामिततेजस:॥ १६१॥
शयाना जाग्रमाणाश्च व्रजन्नुपविशंस्तथा।
उन्मिषन् निमिषंश्चैव चिन्तयन्त: पुन: पुन:॥ १६२॥
शृण्वन्त: श्रावयन्तश्च कथयन्तश्च ते भवम्।
स्तुवन्त: स्तूयमानाश्च तुष्यन्ति च रमन्ति च॥ १६३॥

इसी प्रकार मनुष्योंमें जो प्रधानत: आस्तिक और श्रद्धालु हैं तथा अनेक जन्मतक की हुई स्तुति एवं भक्तिके प्रभावसे मन, वाणी, क्रिया तथा प्रेमभावके द्वारा सोते-जागते, चलते-बैठते और आँखोंके खोलते-मीचते समय भी सदा अनन्यभावसे उन परम सनातनदेव जगदीश्वर शिवका बारंबार ध्यान करते हैं, वे अमित तेजसे सम्पन्न हो जाते हैं तथा जो उन्हींके विषयमें सुनते-सुनाते एवं उन्हींकी महिमाका कथोपकथन करते हुए इस स्तोत्रद्वारा सदा उनकी स्तुति करते हैं, वे स्वयं भी स्तुत्य होकर सदा संतुष्ट होते हैं और रमण करते हैं॥ १६०—१६३॥

जन्मकोटिसहस्रेषु नानासंसारयोनिषु।
जन्तोर्विगतपापस्य भवे भक्ति: प्रजायते॥ १६४॥

कोटि सहस्र जन्मोंतक नाना प्रकारकी संसारी योनियोंमें भटकते-भटकते जब कोई जीव सर्वथा

पापोंसे रहित हो जाता है, तब उसकी भगवान् शिवमें भक्ति होती है॥ १६४॥

उत्पन्ना च भवे भक्तिरनन्या सर्वभावतः।
भाविनः कारणे चास्य सर्वयुक्तस्य सर्वथा॥ १६५॥

भाग्यसे जो सर्वसाधनसम्पन्न हो गया है, उसको जगत्के कारण भगवान् शिवमें सम्पूर्णभावसे सर्वथा अनन्य भक्ति प्राप्त होती है॥ १६५॥

एतद् देवेषु दुष्प्रापं मनुष्येषु न लभ्यते।
निर्विघ्ना निश्चला रुद्रे भक्तिरव्यभिचारिणी॥ १६६॥

रुद्रदेवमें निश्चल एवं निर्विघ्नरूपसे अनन्य-भक्ति हो जाय—यह देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। मनुष्योंमें तो प्रायः ऐसी भक्ति स्वतः नहीं उपलब्ध होती है॥ १६६॥

तस्यैव च प्रसादेन भक्तिरुत्पद्यते नृणाम्।
येन यान्ति परां सिद्धिं तद्भागवतचेतसः॥ १६७॥

भगवान् शंकरकी कृपासे ही मनुष्योंके हृदयमें उनकी अनन्यभक्ति उत्पन्न होती है, जिससे वे अपने चित्तको उन्हींके चिन्तनमें लगाकर परमसिद्धिको प्राप्त होते हैं॥ १६७॥

ये सर्वभावानुगताः प्रपद्यन्ते महेश्वरम्।
प्रपन्नवत्सलो देवः संसारात् तान् समुद्धरेत्॥ १६८॥

जो सम्पूर्ण भावसे अनुगत होकर महेश्वरकी शरण लेते हैं, शरणागतवत्सल महादेवजी इस संसारसे उनका उद्धार कर देते हैं॥ १६८॥

एवमन्ये विकुर्वन्ति देवाः संसारमोचनम्।
मनुष्याणामृते देवं नान्या शक्तिस्तपोबलम्॥ १६९॥

इसी प्रकार भगवान्की स्तुतिद्वारा अन्य देवगण भी अपने संसारबन्धनका नाश करते हैं; क्योंकि महादेवजीकी शरण लेनेके सिवा ऐसी दूसरी कोई शक्ति या तपका बल नहीं है जिससे मनुष्योंका संसारबन्धनसे छुटकारा हो सके॥ १६९॥

इति तेनेन्द्रकल्पेन भगवान् सदसत्पतिः।
कृत्तिवासाः स्तुतः कृष्ण तण्डिना शुभबुद्धिना॥ १७०॥

श्रीकृष्ण! यह सोचकर उन इन्द्रके समान तेजस्वी एवं कल्याणमयी बुद्धिवाले तण्डि मुनिने गजचर्मधारी एवं समस्त कार्यकारणके स्वामी भगवान् शिवकी स्तुति की॥ १७०॥

स्तवमेतं भगवतो ब्रह्मा स्वयमधारयत्।
गायते च स बुद्ध्येत ब्रह्मा शंकरसंनिधौ॥ १७१॥

भगवान् शंकरके इस स्तोत्रको ब्रह्माजीने स्वयं अपने हृदयमें धारण किया है। वे भगवान् शिवके समीप इस वेदतुल्य स्तुतिका गान करते रहते हैं; अतः सबको इस स्तोत्रका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये॥ १७१॥

इदं पुण्यं पवित्रं च सर्वदा पापनाशनम्।
योगदं मोक्षदं चैव स्वर्गदं तोषदं तथा॥ १७२॥

यह परम पवित्र, पुण्यजनक तथा सर्वदा सब पापोंका नाश करनेवाला है। यह योग, मोक्ष, स्वर्ग और संतोष—सब कुछ देनेवाला है॥ १७२॥

एवमेतत् पठन्ते य एकभक्त्या तु शङ्करम्।
या गतिः सांख्ययोगानां व्रजन्त्येतां गतिं तदा॥ १७३॥

जो लोग अनन्यभक्तिभावसे भगवान् शिवके स्वरूप-भूत इस स्तोत्रका पाठ करते हैं उन्हें वही गति प्राप्त होती है जो सांख्यवेत्ताओं और योगियोंको मिलती है॥ १७३॥

स्तवमेतं प्रयत्नेन सदा रुद्रस्य संनिधौ।
अब्दमेकं चरेद् भक्तः प्राप्नुयादीप्सितं फलम्॥ १७४॥

जो भक्त भगवान् शंकरके समीप एक वर्षतक सदा प्रयत्नपूर्वक इस स्तोत्रका पाठ करता है वह मनोवांछित फल प्राप्त कर लेता है॥ १७४॥

एतद् रहस्यं परमं ब्रह्मणो हृदि संस्थितम्।
ब्रह्मा प्रोवाच शक्राय शक्रः प्रोवाच मृत्यवे॥ १७५॥

यह परम रहस्यमय स्तोत्र ब्रह्माजीके हृदयमें स्थित है। ब्रह्माजीने इन्द्रको इसका उपदेश दिया और इन्द्रने मृत्युको॥ १७५॥

मृत्युः प्रोवाच रुद्रेभ्यो रुद्रेभ्यस्तण्डिमागमत्।
महता तपसा प्राप्तस्तण्डिना ब्रह्मसद्मनि॥ १७६॥

मृत्युने एकादश रुद्रोंको इसका उपदेश किया। रुद्रोंसे तण्डिको इसकी प्राप्ति हुई। तण्डिने ब्रह्मलोकमें ही बड़ी भारी तपस्या करके इसे प्राप्त किया था॥ १७६॥

तण्डिः प्रोवाच शुक्राय गौतमाय च भार्गवः।
वैवस्वताय मनवे गौतमः प्राह माधव॥ १७७॥

माधव! तण्डिने शुक्रको, शुक्रने गौतमको और गौतमने वैवस्वतमनुको इसका उपदेश दिया॥ १७७॥

नारायणाय साध्याय समाधिष्ठाय धीमते।
यमाय प्राह भगवान् साध्यो नारायणोऽच्युतः॥ १७८॥

वैवस्वत मनुने समाधिनिष्ठ और ज्ञानी नारायण नामक किसी साध्यदेवताको यह स्तोत्र प्रदान किया। धर्मसे कभी च्युत न होनेवाले उन पूजनीय नारायण नामक साध्यदेवने यमको इसका उपदेश किया॥ १७८॥

नाचिकेताय भगवानाह वैवस्वतो यमः।
मार्कण्डेयाय वार्ष्णेय नाचिकेतोऽभ्यभाषत॥ १७९॥

वृष्णिनन्दन! ऐश्वर्यशाली वैवस्वत यमने नचिकेताको और नचिकेताने भार्गवदेव मुनिको यह स्तोत्र प्रदान किया॥ १७९॥

भार्गवस्तेऽब्रवाद्धन्या प्राप्तो नियमेन जनार्दन।
अक्षय्यमहमधिगम्य स्वर्गं दद्यां ह्यविश्रुतम्॥ १८०॥

अनुसूदन जनार्दन! भार्गवदेवजीने मौन नियमपूर्वक यह स्तोत्र ग्रहण किया था। अभी इस स्तोत्रकी अधिक प्रसिद्धि नहीं हुई है, अतः मैं तुम्हें इसका उपदेश देता हूँ॥

श्रद्धार्थमात्मोत्थवसुर्यं धन्यं वेदेन सम्मितम्।
यस्य त्रिणवं त्रिकृत्वेति हृत्वचा पञ्चराक्षसाः।
पिशाचा यातुधाना वा गुह्यका भुजगा अपि॥ १८१॥

यह वेदतुल्य स्तोत्र स्वर्ग, आरोग्य, आयु तथा धन-धान्य प्रदान करनेवाला है। यक्ष, राक्षस, पिशाच, यातुधान, गुह्यक और नाग भी इससे विमुख नहीं जाने पाते हैं॥ १८१॥

यः पठेत शुचिः पार्थ ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः।
अभग्नयोगो वर्षं तु सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥ १८२॥

(श्रीकृष्ण कहते हैं—) कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर! जो मनुष्य पवित्रभावसे ब्रह्मचर्यके पालनपूर्वक इन्द्रियोंको संयममें रखकर एक वर्षतक योगयुक्त रहते हुए इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है॥ १८२॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि महादेवसहस्रनामस्तोत्रे सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत अनुशासनपर्वके अन्तर्गत दानधर्मपर्वमें महादेवसहस्रनामस्तोत्रविषयक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १७॥

अष्टादशोऽध्यायः

शिवसहस्रनामके पाठकी महिमा तथा ऋषियोंका भगवान् शंकरकी कृपासे अभीष्ट सिद्धि होनेके विषयमें अपना-अपना अनुभव सुनाना और श्रीकृष्णके द्वारा भगवान् शिवजीकी महिमाका वर्णन

ईशानधर्म उवाच

महायोगी मतः प्राह कृष्णद्वैपायनो मुनिः।
पठस्व पुत्र भद्रं ते ह्रीमतां त्वं महेश्वरः॥ १॥

ईशानधर्मजी कहते हैं—उमादेवी! तदनन्तर महायोगी श्रीकृष्णद्वैपायन मुनिवर व्यासने युधिष्ठिरसे कहा—'बेटा! तुम्हारा कल्याण हो। तुम भी इस स्तोत्रका पाठ करो, जिससे तुम्हारे ऊपर भी महेश्वर प्रसन्न हों॥ १॥

पुरा पुत्र मया चेष्ट्वा तप्त्वा परमं तपः।
पुत्रहेतोर्महाराज स्तवः एषोऽनुकीर्तितः॥ २॥

'पुत्र! महाराज! पूर्वकालकी बात है, मैंने पुत्रकी प्राप्तिके लिये मेरुपर्वतपर बड़ी भारी तपस्या की थी। उस समय मैंने इस स्तोत्रका अनेक बार पाठ किया था॥ २॥

लब्धवानीप्सितान् कामान्महं वै पाण्डुनन्दन।
तथा त्वमपि शर्वाद्धि सर्वान् कामानवाप्स्यसि॥ ३॥

'पाण्डुनन्दन! इसके पाठसे मैंने अपनी मनोवांछित कामनाओंको प्राप्त कर लिया था। उसी प्रकार तुम भी शंकरजीसे सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लोगे'॥ ३॥

कश्चित्तत्रैव मतः प्राह सांख्ययोगैर्द्विजसत्तमैः।
यथा जग्मुरनेकानि भक्तया शर्वाधिपो भवः॥ ४॥
प्रीतश्च भगवान् शर्वः ददौ मम भवान्तकम्।

'तत्पश्चात् वहीं सांख्ययोगके आचार्य द्विजश्रेष्ठ कपिलने कहा—'मैंने भी अनेक जन्मोंतक पवित्रभावसे भगवान् शंकरकी आराधना की थी। इससे प्रसन्न होकर भगवान्‌ने मुझे भवभयनाशक ज्ञान प्रदान किया था'॥ ४½॥

भार्गवश्चैवमतः प्राह शक्रस्य दयितः सखा।
आलम्बायन इत्येवं विश्रुतः कलगालकः॥ ५॥

तदनन्तर इन्द्रके प्रिय सखा आलम्बायनगोत्रीय भार्गवश्रेष्ठने जो आलम्बायन नामसे ही प्रसिद्ध तथा परम दयालु हैं, इस प्रकार कहा—॥ ५॥

मया गोकर्णधामाद्य तपसाल्पेन शर्वतः।
अधोनिजानां दानानां धर्मज्ञानां सुवर्चसाम्॥ ६॥
अजायतामदुःखार्थं शतवर्षसहस्रिणाम्।
लब्धं पुत्रशतं शर्वात् पुरा पाण्डुनृपात्मज॥ ७॥

'पाण्डुनन्दन! पूर्वकालमें गोकर्णतीर्थमें जाकर मैंने सौ वर्षोंतक तपस्या करके भगवान् शंकरको संतुष्ट किया। इससे भगवान् शंकरकी कृपासे मुझे सौ पुत्र प्राप्त

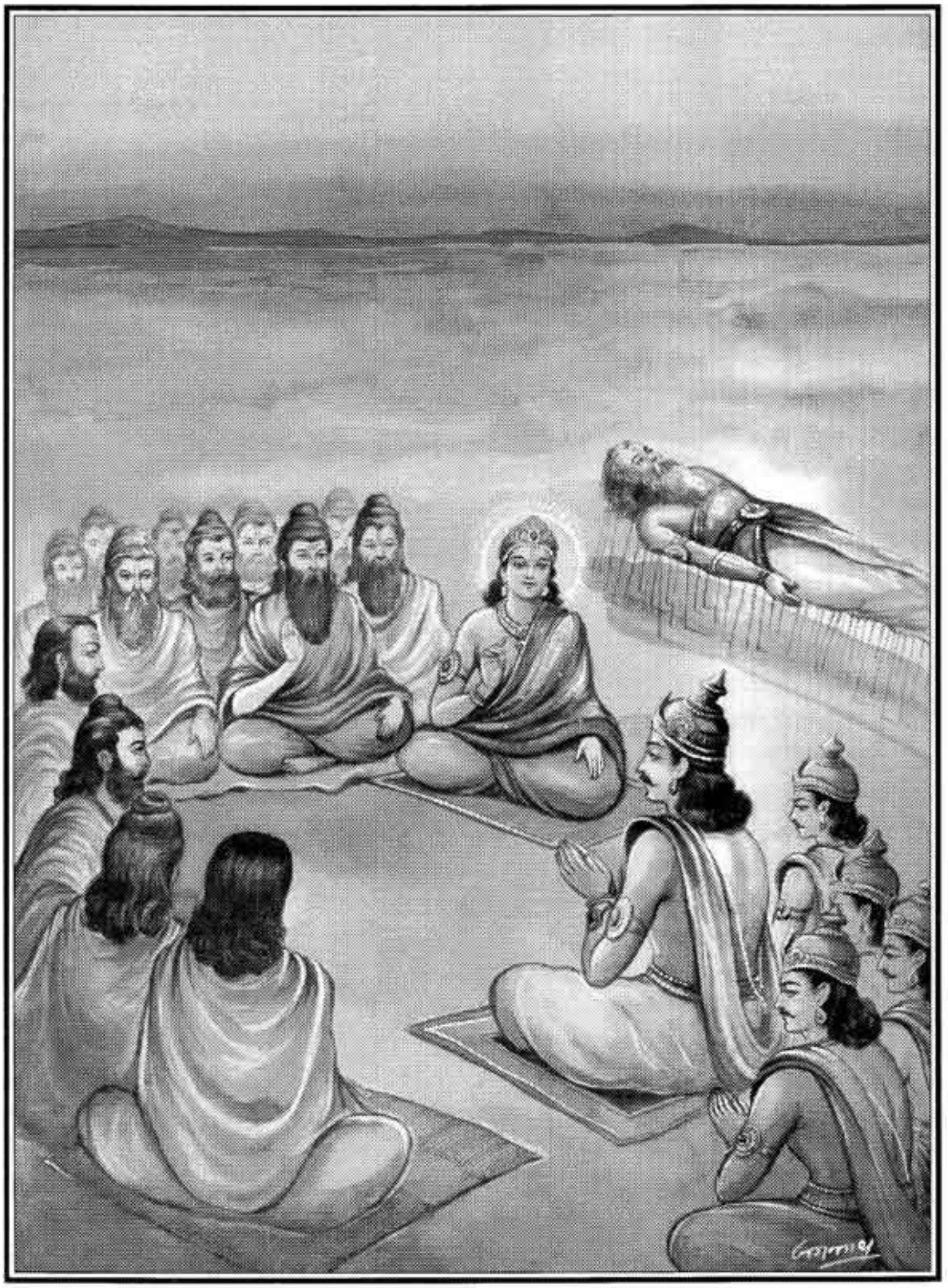

भगवान् श्रीकृष्ण एवं विभिन्न महर्षियोंका युधिष्ठिरको उपदेश

हुए, जो अयोनिज, जितेन्द्रिय, धर्मज्ञ, परम तेजस्वी, जरारहित, दुःखहीन और एक लाख वर्षकी आयुवाले थे'॥ ६-७॥

वाल्मीकिश्चाह भगवान् युधिष्ठिरमिदं वचः।
विवादे साग्निमुनिभिर्ब्रह्मघ्नो वै भवानिति॥ ८॥
उक्तः क्षणेन चाविष्टस्तेनाधर्मेण भारत।
सोऽहमीशानमनघममोघं शरणं गतः॥ ९॥
मुक्तश्चास्मि ततः पापैस्ततो दुःखविनाशनः।
आह मां त्रिपुरघ्नो वै यशस्तेऽग्र्यं भविष्यति॥ १०॥

इसके बाद भगवान् वाल्मीकिने राजा युधिष्ठिरसे इस प्रकार कहा—'भारत! एक समय अग्निहोत्री मुनियोंके साथ मेरा विवाद हो रहा था। उस समय उन्होंने कुपित होकर मुझे शाप दे दिया कि 'तुम ब्रह्महत्यारे हो जाओ।' उनके इतना कहते ही मैं क्षणभरमें उस अधर्मसे व्याप्त हो गया। तब मैं पापरहित एवं अमोघ शक्तिवाले भगवान् शंकरकी शरणमें गया। इससे मैं उस पापसे मुक्त हो गया। फिर उन दुःखनाशन त्रिपुरहन्ता रुद्रने मुझसे कहा—'तुम्हें सर्वश्रेष्ठ सुयश प्राप्त होगा'॥

जामदग्न्यश्च कौन्तेयमिदं धर्मभृतां वरः।
ऋषिमध्ये स्थितः प्राह ज्वलन्निव दिवाकरः॥ ११॥

इसके बाद धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ जमदग्निनन्दन परशुरामजी ऋषियोंके बीचमें खड़े होकर सूर्यके समान प्रकाशित होते हुए वहाँ कुन्तीकुमार युधिष्ठिरसे इस प्रकार बोले—॥ ११॥

पितृविप्रवधेनाहमार्तो वै पाण्डवाग्रज।
शुचिर्भूत्वा महादेवं गतोऽस्मि शरणं नृप॥ १२॥
नामभिश्चास्तुवं देवं ततस्तुष्टोऽभवद् भवः।
परशुं च ततो देवो दिव्यान्यस्त्राणि चैव मे॥ १३॥
पापं च ते न भविता अजेयश्च भविष्यसि।
न ते प्रभविता मृत्युरजरश्च भविष्यसि॥ १४॥

'ज्येष्ठ पाण्डव! नरेश्वर! मैंने पितृतुल्य बड़े भाइयोंको मारकर पितृवध और ब्राह्मणवधका पाप कर डाला था। इससे मुझे बड़ा दुःख हुआ और मैं पवित्र भावसे महादेवजीकी शरणमें गया। शरणागत होकर मैंने इन्हीं नामोंसे रुद्रदेवकी स्तुति की। इससे भगवान् महादेव मुझपर बहुत संतुष्ट हुए और मुझे अपना परशु एवं दिव्यास्त्र देकर बोले—'तुम्हें पाप नहीं लगेगा। तुम युद्धमें अजेय हो जाओगे। तुमपर मृत्युका वश नहीं चलेगा तथा तुम अजर-अमर बने रहोगे'॥ १२—१४॥

आह मां भगवानेवं शिखण्डी शिवविग्रहः।
तदवाप्तं च मे सर्वं प्रसादात् तस्य धीमतः॥ १५॥

'इस प्रकार कल्याणमय विग्रहवाले जटाधारी भगवान् शिवने मुझसे जो कुछ कहा, वह सब कुछ उन ज्ञानी महेश्वरके कृपाप्रसादसे मुझे प्राप्त हो गया'॥ १५॥

विश्वामित्रस्तदोवाच क्षत्रियोऽहं तदाभवम्।
ब्राह्मणोऽहं भवानीति मया चाराधितो भवः॥ १६॥
तत्प्रसादान्मया प्राप्तं ब्राह्मण्यं दुर्लभं महत्।

तदनन्तर विश्वामित्रजीने कहा, 'राजन्! जिस समय मैं क्षत्रिय था, उन दिनोंकी बात है, मेरे मनमें यह दृढ़ संकल्प हुआ कि मैं ब्राह्मण हो जाऊँ—यही उद्देश्य लेकर मैंने भगवान् शंकरकी आराधना की। और उनकी कृपासे मैंने अत्यन्त दुर्लभ ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लिया'॥ १६½॥

असितो देवलश्चैव प्राह पाण्डुसुतं नृपम्॥ १७॥
शापाच्छक्रस्य कौन्तेय विभो धर्मोऽनशत् तदा।
तन्मे धर्मं यशश्चाग्र्यमायुश्चैवाददत् प्रभुः॥ १८॥

तत्पश्चात् असित देवलने पाण्डुकुमार राजा युधिष्ठिरसे कहा—'कुन्तीनन्दन! प्रभो! इन्द्रके शापसे मेरा धर्म नष्ट हो गया था; किंतु भगवान् शंकरने ही मुझे धर्म, उत्तम यश तथा दीर्घ आयु प्रदान की'॥

ऋषिर्गृत्समदो नाम शक्रस्य दयितः सखा।
प्राहाजमीढं भगवान् बृहस्पतिसमद्युतिः॥ १९॥

इसके बाद इन्द्रके प्रिय सखा और बृहस्पतिके समान तेजस्वी मुनिवर भगवान् गृत्समदने अजमीढवंशी युधिष्ठिरसे कहा—॥ १९॥

वरिष्ठो नाम भगवांश्चाक्षुषस्य मनोः सुतः।
शतक्रतोरचिन्त्यस्य सत्रे वर्षसहस्रिके॥ २०॥
वर्तमानेऽब्रवीद् वाक्यं साम्नि ह्युच्चारिते मया।
रथन्तरे द्विजश्रेष्ठ न सम्यगिति वर्तते॥ २१॥

"चाक्षुष मनुके पुत्र भगवान् वरिष्ठके नामसे प्रसिद्ध हैं। एक समय अचिन्त्य शक्तिशाली शतक्रतु इन्द्रका एक यज्ञ हो रहा था जो एक हजार वर्षोंतक चलनेवाला था। उसमें मैं रथन्तर सामका पाठ कर रहा था। मेरे द्वारा उस सामका उच्चारण होनेपर वरिष्ठने मुझसे कहा—'द्विजश्रेष्ठ! तुम्हारे द्वारा रथन्तर सामका पाठ ठीक नहीं हो रहा है॥ २०-२१॥

समीक्षस्व पुनर्बुद्ध्या पापं त्यक्त्वा द्विजोत्तम।
अयज्ञवाहिनं पापमकार्षीस्त्वं सुदुर्मते॥ २२॥

"विप्रवर! तुम पापपूर्ण आग्रह छोड़कर फिर

अपनी बुद्धिसे विचार करो। सुदुर्मते! तुमने ऐसा पाप कर डाला है, जिससे यह यज्ञ ही निष्फल हो गया'॥

एवमुक्त्वा महाक्रोधः प्राह शम्भुं पुनर्वचः।
प्रज्ञया रहितो दुःखी नित्यभीतो वनेचरः॥ २३॥
दशवर्षसहस्राणि दशाष्टौ च शतानि च।
नष्टपानीयपवने मृगैरन्यैश्च वर्जिते॥ २४॥
अयज्ञीयद्रुमे देशे रुरुसिंहनिषेविते।
भविता त्वं मृगः क्रूरो महादुःखसमन्वितः॥ २५॥

'ऐसा कहकर महाक्रोधी वरिष्ठने भगवान् शंकरकी ओर देखते हुए फिर कहा—'तुम ग्यारह हजार आठ सौ वर्षोंतक जल और वायुसे रहित तथा अन्य पशुओंसे परित्यक्त केवल रुरु तथा सिंहोंसे सेवित जो यज्ञोंके लिये उचित नहीं है—ऐसे वृक्षोंसे भरे हुए विशालवनमें बुद्धिशून्य, दुखी, सर्वदा भयभीत, वनचारी और महान् कष्टमें मग्न क्रूर स्वभाववाले पशु होकर रहोगे'॥ २३—२५॥

तस्य वाक्यस्य निधने पार्थ जातो ह्यहं मृगः।
ततो मां शरणं प्राप्तं प्राह योगी महेश्वरः॥ २६॥

'कुन्तीनन्दन! उनका यह वाक्य पूरा होते ही मैं क्रूर पशु हो गया। तब मैं भगवान् शंकरकी शरणमें गया। अपनी शरणमें आये हुए मुझ सेवकसे योगी महेश्वर इस प्रकार बोले—॥ २६॥

अजरश्चामरश्चैव भविता दुःखवर्जितः।
साम्यं ममास्तु ते सौख्यं युवयोर्वर्धतां क्रतुः॥ २७॥

'मुने! तुम अजर-अमर और दुःखरहित हो जाओगे। तुम्हें मेरी समानता प्राप्त हो और तुम दोनों यजमान और पुरोहितका यह यज्ञ सदा बढ़ता रहे'॥ २७॥

अनुग्रहानेवमेष करोति भगवान् विभुः।
परं धाता विधाता च सुखदुःखे च सर्वदा॥ २८॥

"इस प्रकार सर्वव्यापी भगवान् शंकर सबके ऊपर अनुग्रह करते हैं। ये ही सबका अच्छे ढंगसे धारण-पोषण करते हैं और सर्वदा सबके सुख-दुःखका भी विधान करते हैं"॥ २८॥

अचिन्त्य एष भगवान् कर्मणा मनसा गिरा।
न मे तात युधिश्रेष्ठ विद्यया पण्डितः समः॥ २९॥

"तात! समरभूमिके श्रेष्ठ वीर! ये अचिन्त्य भगवान् शिव मन, वाणी तथा क्रियाद्वारा आराधना करने योग्य हैं। उनकी आराधनाका ही यह फल है कि पाण्डित्यमें मेरी समानता करनेवाला आज कोई नहीं है"॥ २९॥

वासुदेवस्तदोवाच पुनर्मतिमतां वरः।
सुवर्णाक्षो महादेवस्तपसा तोषितो मया॥ ३०॥

उस समय बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्ण फिर इस प्रकार बोले—"मैंने सुवर्ण-जैसे नेत्रवाले महादेवजीको अपनी तपस्यासे संतुष्ट किया॥ ३०॥

ततोऽथ भगवानाह प्रीतो मां वै युधिष्ठिर।
अर्थात् प्रियतरः कृष्ण मत्प्रसादाद् भविष्यसि॥ ३१॥
अपराजितश्च युद्धेषु तेजश्चैवानलोपमम्।

"युधिष्ठिर! तब भगवान् शिवने मुझसे प्रसन्नता-पूर्वक कहा—'श्रीकृष्ण! तुम मेरी कृपासे प्रिय पदार्थोंकी अपेक्षा भी अत्यन्त प्रिय होओगे। युद्धमें तुम्हारी कभी पराजय नहीं होगी तथा तुम्हें अग्निके समान दुस्सह तेजकी प्राप्ति होगी'॥ ३१½॥

एवं सहस्रशश्चान्यान् महादेवो वरं ददौ॥ ३२॥
मणिमन्थेऽथ शैले वै पुरा सम्पूजितो मया।
वर्षायुतसहस्राणां सहस्रं शतमेव च॥ ३३॥

"इस तरह महादेवजीने मुझे और भी सहस्रों वर दिये। पूर्वकालमें अन्य अवतारोंके समय मणिमन्थ पर्वतपर मैंने लाखों-करोड़ों वर्षोंतक भगवान् शंकरकी आराधना की थी॥ ३२-३३॥

ततो मां भगवान् प्रीत इदं वचनमब्रवीत्।
वरं वृणीष्व भद्रं ते यस्ते मनसि वर्तते॥ ३४॥

"इससे प्रसन्न होकर भगवान्ने मुझसे कहा—'कृष्ण! तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे मनसें जैसी रुचि हो, उसके अनुसार कोई वर माँगो'॥ ३४॥

ततः प्रणम्य शिरसा इदं वचनमब्रुवम्।
यदि प्रीतो महादेवो भक्त्या परमया प्रभुः॥ ३५॥
नित्यकालं तवेशान भक्तिर्भवतु मे स्थिरा।
एवमस्त्विति भगवांस्तत्रोक्त्वान्तरधीयत॥ ३६॥

"यह सुनकर मैंने मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और कहा—'यदि मेरी परम भक्तिसे भगवान् महादेव प्रसन्न हों तो ईशान! आपके प्रति नित्य-निरन्तर मेरी स्थिर भक्ति बनी रहे।' तब 'एवमस्तु' कहकर भगवान् शिव वहीं अन्तर्धान हो गये"॥ ३५-३६॥

जैगीषव्य उवाच

ममाष्टगुणमैश्वर्यं दत्तं भगवता पुरा।
यत्नेनान्येन बलिना वाराणस्यां युधिष्ठिर॥ ३७॥

जैगीषव्य बोले—युधिष्ठिर! पूर्वकालमें भगवान् शिवने काशीपुरीके भीतर अन्य प्रबल प्रयत्नसे संतुष्ट हो मुझे अणिमा आदि आठ सिद्धियाँ प्रदान की थीं॥ ३७॥

गर्ग उवाच

चतुःषष्ट्यङ्गमददत् कलाज्ञानं ममाद्भुतम्।
सरस्वत्यास्तटे तुष्टो मनोयज्ञेन पाण्डव॥ ३८॥
तुल्यं मम सहस्रं तु सुतानां ब्रह्मवादिनाम्।
आयुश्चैव सपुत्रस्य संवत्सरशतायुतम्॥ ३९॥

गर्गने कहा—पाण्डुनन्दन! मैंने सरस्वतीके तटपर मानस यज्ञ करके भगवान् शिवको संतुष्ट किया था। इससे प्रसन्न होकर उन्होंने मुझे चौंसठ कलाओंका अद्भुत ज्ञान प्रदान किया। मुझे मेरे ही समान एक सहस्र ब्रह्मवादी पुत्र दिये तथा पुत्रोंसहित मेरी दस लाख वर्षकी आयु नियत कर दी॥ ३८-३९॥

पराशर उवाच

प्रसाद्येह पुरा शर्वं मनसाचिन्तयं नृप।
महातपा महातेजा महायोगी महायशाः॥ ४०॥
वेदव्यासः श्रियावासो ब्राह्मणः करुणान्वितः।
अप्यसावीप्सितः पुत्रो मम स्याद् वै महेश्वरात्॥ ४१॥

पराशरजीने कहा—नरेश्वर! पूर्वकालमें यहाँ मैंने महादेवजीको प्रसन्न करके मन-ही-मन उनका चिन्तन आरम्भ किया। मेरी इस तपस्याका उद्देश्य यह था कि मुझे महेश्वरकी कृपासे महातपस्वी, महातेजस्वी, महायोगी, महायशस्वी, दयालु, श्रीसम्पन्न एवं ब्रह्मनिष्ठ वेदव्यासनामक मनोवांछित पुत्र प्राप्त हो॥ ४०-४१॥

इति मत्वा हृदि मतं प्राह मां सुरसत्तमः।
मयि सम्भावना यास्याः फलात्कृष्णो भविष्यति॥ ४२॥

मेरा ऐसा मनोरथ जानकर सुरश्रेष्ठ शिवने मुझसे कहा—'मुने! तुम्हारी मेरे प्रति जो सम्भावना है अर्थात् जिस वरको पानेकी लालसा है, उसीसे तुम्हें कृष्ण नामक पुत्र प्राप्त होगा॥ ४२॥

सावर्णस्य मनोः सर्गे सप्तर्षिश्च भविष्यति।
वेदानां च स वै वक्ता कुरुवंशकरस्तथा॥ ४३॥
इतिहासस्य कर्ता च पुत्रस्ते जगतो हितः।
भविष्यति महेन्द्रस्य दयितः स महामुनिः॥ ४४॥
अजरश्चामरश्चैव पराशर सुतस्तव।
एवमुक्त्वा स भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत॥ ४५॥
युधिष्ठिर महायोगी वीर्यवानक्षयोऽव्ययः।

'सावर्णिक मन्वन्तरके समय जो सृष्टि होगी, उसमें तुम्हारा यह पुत्र सप्तर्षिके पदपर प्रतिष्ठित होगा तथा इस वैवस्वत मन्वन्तरमें वह वेदोंका वक्ता, कौरव-वंशका प्रवर्तक, इतिहासका निर्माता, जगत्का हितैषी तथा देवराज इन्द्रका परम प्रिय महामुनि होगा। पराशर! तुम्हारा वह पुत्र सदा अजर-अमर रहेगा।' युधिष्ठिर! ऐसा कहकर महायोगी, शक्तिशाली, अविनाशी और निर्विकार भगवान् शिव वहीं अन्तर्धान हो गये॥

माण्डव्य उवाच

अचौरश्चौरशङ्कायां शूले भिन्नो ह्यहं तदा॥ ४६॥
तत्रस्थेन स्तुतो देवः प्राह मां वै नरेश्वर।
मोक्षं प्राप्स्यसि शूलाच्च जीविष्यसि समार्बुदम्॥ ४७॥
रुजा शूलकृता चैव न ते विप्र भविष्यति।
आधिभिर्व्याधिभिश्चैव वर्जितस्त्वं भविष्यसि॥ ४८॥

माण्डव्य बोले—नरेश्वर! मैं चोर नहीं था तो भी चोरीके संदेहमें मुझे शूलीपर चढ़ा दिया गया। वहींसे मैंने महादेवजीकी स्तुति की। तब उन्होंने मुझसे कहा—'विप्रवर! तुम शूलसे छुटकारा पा जाओगे और दस करोड़ वर्षोंतक जीवित रहोगे। तुम्हारे शरीरमें इस शूलके धँसनेसे कोई पीड़ा नहीं होगी। तुम आधि-व्याधिसे मुक्त हो जाओगे॥ ४६—४८॥

पादाच्चतुर्थात् सम्भूत आत्मा यस्मान्मुने तव।
त्वं भविष्यस्यनुपमो जन्म वै सफलं कुरु॥ ४९॥

'मुने! तुम्हारा यह शरीर धर्मके चौथे पाद सत्यसे उत्पन्न हुआ है। अतः तुम अनुपम सत्यवादी होओगे। जाओ, अपना जन्म सफल करो॥ ४९॥

तीर्थाभिषेकं सकलं त्वमविघ्नेन चाप्स्यसि।
स्वर्गं चैवाक्षयं विप्र विदधामि तवोर्जितम्॥ ५०॥

'ब्रह्मन्! तुम्हें बिना किसी विघ्न-बाधाके सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नानका सौभाग्य प्राप्त होगा। मैं तुम्हारे लिये अक्षय एवं तेजस्वी स्वर्गलोक प्रदान करता हूँ'॥ ५०॥

एवमुक्त्वा तु भगवान् वरेण्यो वृषवाहनः।
महेश्वरो महाराज कृत्तिवासा महाद्युतिः॥ ५१॥
सगणो दैवतश्रेष्ठस्तत्रैवान्तरधीयत।

महाराज! ऐसा कहकर कृत्तिवासा, महातेजस्वी, वृषभवाहन तथा वरणीय सुरश्रेष्ठ भगवान् महेश्वर अपने गणोंके साथ वहीं अन्तर्धान हो गये॥ ५१½॥

गालव उवाच

विश्वामित्राभ्यनुज्ञातो ह्यहं पितरमागतः॥ ५२॥
अब्रवीन्मां ततो माता दुःखिता रुदती भृशम्।
कौशिकेनाभ्यनुज्ञातं पुत्रं वेदविभूषितम्॥ ५३॥
न तात तरुणं दान्तं पिता त्वां पश्यतेऽनघ।

गालवजीने कहा—राजन्! विश्वामित्र मुनिकी आज्ञा पाकर मैं अपने पिताजीका दर्शन करनेके लिये घरपर आया। उस समय मेरी माता वैधव्यके दुःखसे

दुःखी हो जोर-जोरसे रोती हुई मुझसे बोली—'तात! अनघ! कौशिक मुनिकी आज्ञा लेकर घरपर आये हुए वेदविद्यासे विभूषित तुझ तरुण एवं जितेन्द्रिय पुत्रको तुम्हारे पिता नहीं देख सके'॥ ५२-५३½ ॥

श्रुत्वा जनन्या वचनं निराशो गुरुदर्शने॥ ५४॥
नियतात्मा महादेवमपश्यं सोऽब्रवीच्च माम्।
पिता माता च ते त्वं च पुत्र मृत्युविवर्जिताः॥ ५५॥
भविष्यथ विश क्षिप्रं द्रष्टासि पितरं क्षये।

माताकी बात सुनकर मैं पिताके दर्शनसे निराश हो गया और मनको संयममें रखकर महादेवजीकी आराधना करके उनका दर्शन किया। उस समय वे मुझसे बोले—'वत्स! तुम्हारे पिता, माता और तुम तीनों ही मृत्युसे रहित हो जाओगे। अब तुम अपने घरमें शीघ्र प्रवेश करो। वहाँ तुम्हें पिताका दर्शन प्राप्त होगा'॥

अनुज्ञातो भगवता गृहं गत्वा युधिष्ठिर॥ ५६॥
अपश्यं पितरं तात इष्टिं कृत्वा विनिःसृतम्।
उपस्पृश्य गृहीत्वेध्मं कुशांश्च शरणाकुरून्॥ ५७॥

तात युधिष्ठिर! भगवान् शिवकी आज्ञासे मैंने पुनः घर जाकर वहाँ यज्ञ करके यज्ञशालासे निकले हुए पिताका दर्शन किया। वे उस समय समिधा, कुश और वृक्षोंसे अपने-आप गिरे हुए पके फल आदि हव्य पदार्थ लिये हुए थे॥ ५६-५७॥

तान् विसृज्य च मां प्राह पिता सास्राविलेक्षणः।
प्रणमन्तं परिष्वज्य मूर्ध्न्युपाघ्राय पाण्डव॥ ५८॥
दिष्ट्या दृष्टोऽसि मे पुत्र कृतविद्य इहागतः।

पाण्डुनन्दन! उन्हें देखते ही मैं उनके चरणोंमें पड़ गया; फिर पिताजीने भी उन समिधा आदि वस्तुओंको अलग रखकर मुझे हृदयसे लगा लिया और मेरा मस्तक सूँघकर नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए मुझसे कहा—'बेटा! बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुम विद्वान् होकर घर आ गये और मैंने तुम्हें भर आँख देख लिया'॥ ५८½ ॥

वैशम्पायन उवाच

एतान्यत्यद्भुतान्येव कर्माण्यथ महात्मनः॥ ५९॥
प्रोक्तानि मुनिभिः श्रुत्वा विस्मयामास पाण्डवः।
ततः कृष्णोऽब्रवीद् वाक्यं पुनर्मतिमतां वरः॥ ६०॥
युधिष्ठिरं धर्मनिधिं पुरुहूतमिवेश्वरः।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! मुनियोंके कहे हुए महादेवजीके ये अद्भुत चरित्र सुनकर पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरको बड़ा विस्मय हुआ। फिर बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णने धर्मनिधि युधिष्ठिरसे उसी प्रकार कहा जैसे श्रीविष्णु देवराज इन्द्रसे कोई बात कहा करते हैं॥ ५९-६०½ ॥

वासुदेव उवाच

उपमन्युर्मयि प्राह तपन्निव दिवाकरः॥ ६१॥
अशुभैः पापकर्माणो ये नराः कलुषीकृताः।
ईशानं न प्रपद्यन्ते तमोराजसवृत्तयः॥ ६२॥

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! सूर्यके समान तपते हुए-से तेजस्वी उपमन्युने मेरे समीप कहा था कि 'जो पापकर्मी मनुष्य अपने अशुभ आचरणोंसे कलुषित हो गये हैं, वे तमोगुणी या रजोगुणी वृत्तिके लोग भगवान् शिवकी शरण नहीं लेते हैं॥ ६१-६२॥

ईश्वरं सम्प्रपद्यन्ते द्विजा भावितभावनाः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि यो भक्तः परमेश्वरे॥ ६३॥
सदृशोऽरण्यवासीनां मुनीनां भावितात्मनाम्।

'जिनका अन्तःकरण पवित्र है, वे ही द्विज महादेवजीकी शरण लेते हैं। जो परमेश्वर शिवका भक्त है, वह सब प्रकारसे बर्तता हुआ भी पवित्र अन्तःकरणवाले वनवासी मुनियोंके समान है॥ ६३½ ॥

ब्रह्मत्वं केशवत्वं वा शक्रत्वं वा सुरैः सह॥ ६४॥
त्रैलोक्यस्याधिपत्यं वा तुष्टो रुद्रः प्रयच्छति।

'भगवान् रुद्र संतुष्ट हो जायँ तो वे ब्रह्मपद, विष्णुपद, देवताओंसहित देवेन्द्रपद अथवा तीनों लोकोंका आधिपत्य प्रदान कर सकते हैं॥ ६४½ ॥

मनसापि शिवं तात ये प्रपद्यन्ति मानवाः॥ ६५॥
विधूय सर्वपापानि देवैः सह वसन्ति ते।

'तात! जो मनुष्य मनसे भी भगवान् शिवकी शरण लेते हैं, वे सब पापोंका नाश करके देवताओंके साथ निवास करते हैं॥ ६५॥

भित्त्वा भित्त्वा च कूलानि हुत्वा सर्वमिदं जगत्॥ ६६॥
यजेद् देवं विरूपाक्षं न स पापेन लिप्यते।

'बारंबार तालाबके तटभूमिको खोद-खोदकर उन्हें चौपट कर देनेवाला और इस सारे जगत्को जलती आगमें झोंक देनेवाला पुरुष भी यदि महादेवजीकी आराधना करता है तो वह पापसे लिप्त नहीं होता है॥

सर्वलक्षणहीनोऽपि युक्तो वा सर्वपातकैः॥ ६७॥
सर्वं तुदति तत्पापं भावयञ्छिवमात्मना।

'समस्त लक्षणोंसे हीन अथवा सब पापोंसे युक्त मनुष्य भी यदि अपने हृदयसे भगवान् शिवका ध्यान करता है तो वह अपने सारे पापोंको नष्ट कर

देता है॥ ६७½ ॥

कीटपक्षिपतङ्गानां तिरश्चामपि केशव॥ ६८॥
महादेवप्रपन्नानां न भयं विद्यते क्वचित्।

'केशव! कीट, पतंग, पक्षी तथा पशु भी यदि महादेवजीकी शरणमें आ जायँ तो उन्हें भी कहीं किसीका भय नहीं प्राप्त होता है॥ ६८½ ॥

एवमेव महादेवं भक्ता ये मानवा भुवि॥ ६९॥
न ते संसारवशगा इति मे निश्चिता मतिः।
ततः कृष्णोऽब्रवीद् वाक्यं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम्॥ ७०॥

'इसी प्रकार इस भूतलपर जो मानव महादेवजीके भक्त हैं, वे संसारके अधीन नहीं होते—यह मेरा निश्चित विचार है।' तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं भी धर्मपुत्र युधिष्ठिरसे कहा—॥ ६९-७०॥

विष्णुरुवाच

आदित्यचन्द्रावनिलानलौ च
द्यौर्भूमिरापो वसवोऽथ विश्वे।
धातार्यमा शुक्रबृहस्पती च
रुद्राः ससाध्या वरुणोऽथगोपः॥ ७१॥
ब्रह्मा शक्रो मारुतो ब्रह्म सत्यं
वेदा यज्ञा दक्षिणा वेदवाहाः।
सोमो यष्टा यच्च हव्यं हविश्च
रक्षा दीक्षा संयमा ये च केचित्॥ ७२॥
स्वाहा वौषट् ब्राह्मणाः सौरभेयी
धर्मं चाग्र्यं कालचक्रं बलं च।
यशो दमो बुद्धिमतां स्थितिश्च
शुभाशुभं ये मुनयश्च सप्त॥ ७३॥
अग्र्या बुद्धिर्मनसा दर्शने च
स्पर्शश्चाग्र्यः कर्मणां या च सिद्धिः।
गणा देवानामूष्मपाः सोमपाश्च
लेखाः सुयामास्तुषिता ब्रह्मकायाः॥ ७४॥
आभासुरा गन्धपा धूमपाश्च
वाचा विरुद्धाश्च मनोविरुद्धाः।
शुद्धाश्च निर्माणरताश्च देवाः
स्पर्शाशना दर्शपा आज्यपाश्च॥ ७५॥
चिन्त्यद्योता ये च देवेषु मुख्या
ये चाप्यन्ये देवताश्चाजमीढ।
सुपर्णगन्धर्वपिशाचदानवा
यक्षास्तथा चारणपन्नगाश्च॥ ७६॥
स्थूलं सूक्ष्मं मृदु चाप्यसूक्ष्मं
दुःखं सुखं दुःखमनन्तरं च।
सांख्यं योगं तत्पराणां परं च
शर्वाज्जातं विद्धि यत् कीर्तितं मे॥ ७७॥

श्रीकृष्ण बोले—अजमीढवंशी धर्मराज! जो सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, स्वर्ग, भूमि, जल, वसु, विश्वदेव, धाता, अर्यमा, शुक्र, बृहस्पति, रुद्रगण, साध्यगण, राजा वरुण, ब्रह्मा, इन्द्र, वायुदेव, ॐकार, सत्य, वेद, यज्ञ, दक्षिणा, वेदपाठी ब्राह्मण, सोमरस, यजमान, हवनीय हविष्य, रक्षा, दीक्षा, सब प्रकारके संयम, स्वाहा, वौषट्, ब्राह्मणगण, गौ, श्रेष्ठ धर्म, कालचक्र, बल, यश, दम, बुद्धिमानोंकी स्थिति, शुभाशुभ कर्म, सप्तर्षि, श्रेष्ठ बुद्धि, मन, दर्शन, श्रेष्ठ स्पर्श, कर्मोंकी सिद्धि, ऊष्मप, सोमप, लेख, याम तथा तुषित आदि देवगण, ब्राह्मण-शरीर, दीप्तिशाली गन्धप, धूमप ऋषि, वाग्विरुद्ध और मनोविरुद्ध भाव, शुद्धभाव, निर्माण-कार्यमें तत्पर रहनेवाले देवता, स्पर्शमात्रसे भोजन करनेवाले, दर्शनमात्रसे पेय रसका पान करनेवाले, घृत पीनेवाले हैं, जिनके संकल्प करनेमात्रसे अभीष्ट वस्तु नेत्रोंके समक्ष प्रकाशित होने लगती है, ऐसे जो देवताओंमें मुख्य गण हैं, जो दूसरे-दूसरे देवता हैं, जो सुपर्ण, गन्धर्व, पिशाच, दानव, यक्ष, चारण तथा नाग हैं, जो स्थूल, सूक्ष्म, कोमल, असूक्ष्म, सुख, इस लोकके दुःख, परलोकके दुःख, सांख्य, योग एवं पुरुषार्थोंमें श्रेष्ठ मोक्षरूप परम पुरुषार्थ बताया गया है; इन सबको तुम महादेवजीसे ही उत्पन्न हुआ समझो॥ ७१—७७॥

तत्सम्भूता भूतकृतो वरेण्याः
सर्वे देवा भुवनस्यास्य गोपाः।
आविश्येमां धरणीं येऽभ्यरक्षन्
पुरातनीं तस्य देवस्य सृष्टिम्॥ ७८॥

जो इस भूतलमें प्रवेश करके महादेवजीकी पूर्वकृत सृष्टिकी रक्षा करते हैं, जो समस्त जगत्के रक्षक, विभिन्न प्राणियोंकी सृष्टि करनेवाले और श्रेष्ठ हैं, वे सम्पूर्ण देवता भगवान् शिवसे ही प्रकट हुए हैं॥

विचिन्वन्तस्तपसा तत्स्थवीयः
किंचित् तत्त्वं प्राणहेतोर्नतोऽस्मि।
ददातु देवः स वरानिहेष्टा-
नभिष्टुतो नः प्रभुरव्ययः सदा॥ ७९॥

ऋषि-मुनि तपस्याद्वारा जिसका अन्वेषण करते हैं, उस सदा स्थिर रहनेवाले अनिर्वचनीय परम सूक्ष्म तत्त्वस्वरूप सदाशिवको मैं जीवन-रक्षाके लिये नमस्कार करता हूँ। जिन अविनाशी प्रभुकी मेरे द्वारा सदा ही स्तुति

की गयी है, वे महादेव यहाँ मुझे अभीष्ट वरदान दें॥

इमं स्तवं संनियतेन्द्रियश्च
भूत्वा शुचिर्यः पुरुषः पठेत।
अभग्नयोगो नियतो माससमेकं
सम्प्राप्नुयादश्वमेधे फलं यत्॥ ८०॥

जो पुरुष इन्द्रियोंको वशमें करके पवित्र होकर इस स्तोत्रका पाठ करेगा और नियमपूर्वक एक मासतक अखण्डरूपसे इस पाठको चलाता रहेगा, वह अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त कर लेगा॥ ८०॥

वेदान् कृत्स्नान् ब्राह्मणः प्राप्नुयात् तु
जयेन्नृपः पार्थ महीं च कृत्स्नाम्।
वैश्यो लाभं प्राप्नुयान्नैपुणं च
शूद्रो गतिं प्रेत्य तथा सुखं च॥ ८१॥

कुन्तीनन्दन! ब्राह्मण इसके पाठसे सम्पूर्ण वेदोंके स्वाध्यायका फल पाता है। क्षत्रिय समस्त पृथ्वीपर विजय प्राप्त कर लेता है। वैश्य व्यापारकुशलता एवं महान् लाभका भागी होता है और शूद्र इहलोकमें सुख तथा परलोकमें सद्गति पाता है॥ ८१॥

स्तवराजमिमं कृत्वा रुद्राय दधिरे मनः।
सर्वदोषापहं पुण्यं पवित्रं च यशस्विनः॥ ८२॥

जो लोग सम्पूर्ण दोषोंका नाश करनेवाले इस पुण्यजनक पवित्र स्तवराजका पाठ करके भगवान् रुद्रके चिन्तनमें मन लगाते हैं, वे यशस्वी होते हैं॥ ८२॥

यावन्त्यस्य शरीरेषु रोमकूपाणि भारत।
तावन्त्यब्दसहस्राणि स्वर्गे वसति मानवः॥ ८३॥

भरतनन्दन! मनुष्यके शरीरमें जितने रोमकूप होते हैं, इस स्तोत्रका पाठ करनेवाला मनुष्य उतने ही हजार वर्षोंतक स्वर्गमें निवास करता है॥ ८३॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि मेघवाहनपर्वाख्याने अष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत अनुशासनपर्वके अन्तर्गत दानधर्मपर्वमें मेघवाहनपर्वकी कथाविषयक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८॥

एकोनविंशोऽध्यायः

अष्टावक्र मुनिका वदान्य ऋषिके कहनेसे उत्तर दिशाकी ओर प्रस्थान, मार्गमें कुबेरके द्वारा उनका स्वागत तथा स्त्रीरूपधारिणी उत्तरदिशाके साथ उनका संवाद

युधिष्ठिर उवाच

यदिदं सहधर्मेति प्रोच्यते भरतर्षभ।
पाणिग्रहणकाले तु स्त्रीणामेतत् कथं स्मृतम्॥ १॥

युधिष्ठिरने पूछा—भरतश्रेष्ठ! जो यह स्त्रियोंके लिये विवाहकालमें सहधर्मकी बात कही जाती है, वह किस प्रकार बतायी गयी है?॥ १॥

आर्ष एष भवेद् धर्मः प्राजापत्योऽथवाऽऽसुरः।
यदेतत् सहधर्मेति पूर्वमुक्तं महर्षिभिः॥ २॥

महर्षियोंने पूर्वकालमें जो यह स्त्री-पुरुषोंके सहधर्मकी बात कही है, यह आर्ष धर्म है या प्राजापत्य धर्म; अथवा आसुर धर्म है?॥ २॥

संदेहः सुमहानेष विरुद्ध इति मे मतिः।
इह यः सहधर्मो वै प्रेत्यायं विहितः क्व नु॥ ३॥

मेरे मनमें यह महान् संदेह पैदा हो गया है। मैं तो ऐसा समझता हूँ कि यह सहधर्मका कथन विरुद्ध है। यहाँ जो सहधर्म है, वह मृत्युके पश्चात् कहाँ रहता है?॥

स्वर्गो मृतानां भवति सहधर्मः पितामह।
पूर्वमेकस्तु म्रियते क्व चैकस्तिष्ठते वद॥ ४॥

पितामह! जबकि मरे हुए मनुष्योंका स्वर्गवास हो जाता है एवं पति और पत्नीमेंसे एककी पहले मृत्यु हो जाती है, तब एक व्यक्तिमें सहधर्म कहाँ रहता है? यह बताइये॥ ४॥

नानाधर्मफलोपेता नानाकर्मनिवासिताः।
नानानिरयनिष्ठान्ता मानुषा बहवो यदा॥ ५॥

जब बहुत-से मनुष्य नाना प्रकारके धर्मफलसे संयुक्त होते हैं, नाना प्रकारके कर्मवश विभिन्न स्थानोंमें निवास करते हैं और शुभाशुभ कर्मोंके फल-स्वरूप स्वर्ग-नरक आदि नाना अवस्थाओंमें पड़ते हैं, तब वे सहधर्मका निर्वाह किस प्रकार कर सकते हैं?॥ ५॥

अनृताः स्त्रिय इत्येवं सूत्रकारो व्यवस्यति।
यदानृताः स्त्रियस्तात सहधर्मः कुतः स्मृतः॥ ६॥

धर्मसूत्रकार यह निश्चितरूपसे कहते हैं कि स्त्रियाँ असत्यपरायण होती हैं। तात! जब स्त्रियाँ असत्यवादिनी ही हैं तब उन्हें साथ रखकर सहधर्मका अनुष्ठान कैसे किया जा सकता है?॥ ६॥

अनृताः स्त्रिय इत्येवं वेदेष्वपि हि पठ्यते।
धर्मोऽयं पूर्विका संज्ञा उपचारः क्रियाविधिः॥ ७॥

वेदोंमें भी यह बात पढ़ी गयी है कि स्त्रियाँ असत्यभाषिणी होती हैं, ऐसी दशामें उनका वह असत्य भी सहधर्मके अन्तर्गत आ सकता है, किंतु असत्य कभी धर्म नहीं हो सकता; अतः दाम्पत्यधर्मको जो सहधर्म कहा गया है, यह उसकी गौण संज्ञा है। वे पति-पत्नी साथ रहकर जो भी कार्य करते हैं, उसीको उपचारतः धर्म नाम दे दिया गया है॥ ७॥

गह्वरं प्रतिभात्येतन्मम चिन्तयतोऽनिशम्।
निःसंदेहमिदं सर्वं पितामह यथाश्रुति॥ ८॥

पितामह! मैं ज्यों-ज्यों इस विषयपर विचार करता हूँ, त्यों-त्यों यह बात मुझे अत्यन्त दुर्बोध प्रतीत होती है। अतः आपने इस विषयमें जो कुछ श्रुतिका विधान हो, उसके अनुसार यह सब समझाइये जिससे मेरा संदेह दूर हो जाय॥ ८॥

यदैतद् यादृशं चैतद् यथा चैतत् प्रवर्तितम्।
निखिलेन महाप्राज्ञ भवानेतद् ब्रवीतु मे॥ ९॥

महामते! यह सहधर्म जबसे प्रचलित हुआ, जिस रूपमें सामने आया और जिस प्रकार इसकी प्रवृत्ति हुई, ये सारी बातें आप मुझे बताइये॥ ९॥

भीष्म उवाच

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
अष्टावक्रस्य संवादं दिशया सह भारत॥ १०॥

भीष्मजीने कहा—भरतनन्दन! इस विषयमें अष्टावक्र मुनिका उत्तर दिशाकी अधिष्ठात्रीदेवीके साथ जो संवाद हुआ था, उसी प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है॥ १०॥

निर्वेष्टुकामस्तु पुरा अष्टावक्रो महातपाः।
ऋषेरथ वदान्यस्य वव्रे कन्यां महात्मनः॥ ११॥

पूर्वकालकी बात है, महातपस्वी अष्टावक्र विवाह करना चाहते थे, उन्होंने इसके लिये महात्मा वदान्य ऋषिसे उनकी कन्या माँगी॥ ११॥

सुप्रभां नाम वै नाम्ना रूपेणाप्रतिमां भुवि।
गुणप्रभावशीलेन चारित्रेण च शोभनाम्॥ १२॥

उस कन्याका नाम था सुप्रभा। इस पृथ्वीपर उसके रूपकी कहीं तुलना नहीं थी। गुण, प्रभाव, शील और चरित्र सभी दृष्टियोंसे वह परम सुन्दर थी॥ १२॥

सा तस्य दृष्ट्वैव मनो जहार शुभलोचना।
वनराजी यथा चित्रा वसन्ते कुसुमाचिता॥ १३॥

जैसे वसंतऋतुमें सुन्दर फूलोंसे सजी हुई विचित्र वनश्रेणी मनुष्यके मनको लुभा लेती है, उसी प्रकार उस शुभलोचना मुनिकुमारीने दर्शनमात्रसे अष्टावक्रका मन चुरा लिया था॥ १३॥

ऋषिस्तमाह देया मे सुता तुभ्यं हि तच्छृणु।
(अनन्यस्त्रीजनः प्राज्ञो ह्यप्रवासी प्रियंवदः।
सुरूपः सम्मतो वीरः शीलवान् भोगभुक्छविः॥
दारानुमतयज्ञश्च सुनक्षत्रामथोद्वहेत्।
स्वभर्त्रा स्वजनोपेत इह प्रेत्य च मोदते॥)
गच्छ तावद् दिशं पुण्यामुत्तरां द्रक्ष्यसे ततः॥ १४॥

वदान्य ऋषिने अष्टावक्रके माँगनेपर इस प्रकार उत्तर दिया—'विप्रवर! जिसके दूसरी कोई स्त्री न हो, जो परदेशमें न रहता हो, विद्वान्, प्रिय वचन बोलनेवाला, लोकसम्मानित, वीर, सुशील, भोग भोगनेमें समर्थ, कान्तिमान् और सुन्दर पुरुष हो, उसीके साथ मुझे अपनी पुत्रीका विवाह करना है। जो स्त्रीकी अनुमतिसे यज्ञ करता और उत्तम नक्षत्रवाली कन्याको व्याहता है, वह पुरुष अपनी पत्नीके साथ तथा पत्नी अपने पतिके साथ रहकर दोनों ही इहलोक और परलोकमें आनन्द भोगते हैं। मैं तुम्हें अपनी कन्या अवश्य दे दूँगा, परंतु पहले एक बात सुनो, यहाँसे परम पवित्र उत्तर दिशाकी ओर चले जाओ। वहाँ तुम्हें उसका दर्शन होगा'॥ १४॥

अष्टावक्र उवाच

किं द्रष्टव्यं मया तत्र वक्तुमर्हति मे भवान्।
तथेदानीं मया कार्यं यथा वक्ष्यति मां भवान्॥ १५॥

अष्टावक्रने पूछा—महर्षे! उत्तर दिशामें जाकर मुझे किसका दर्शन करना होगा? आप यह बतानेकी कृपा करें तथा उस समय मुझे क्या और किस प्रकार करना चाहिये, यह भी आप ही बतायेंगे॥ १५॥

वदान्य उवाच

धनदं समतिक्रम्य हिमवन्तं च पर्वतम्।
रुद्रस्यायतनं दृष्ट्वा सिद्धचारणसेवितम्॥ १६॥

वदान्यने कहा—वत्स! तुम कुबेरकी अलकापुरीको लाँघकर जब हिमालय पर्वतको भी लाँघ जाओगे तब तुम्हें सिद्धों और चारणोंसे सेवित रुद्रके निवासस्थान कैलास पर्वतका दर्शन होगा॥ १६॥

संहृष्टैः पार्षदैर्जुष्टं नृत्यद्भिर्विविधाननैः।
दिव्याङ्गरागैः पैशाचैरन्यैर्नानाविधैः प्रभोः॥ १७॥

वहाँ नाना प्रकारके मुखवाले भाँति-भाँतिके दिव्य अंगराग लगाये अनेकानेक पिशाच तथा अन्य भूत-

वैताल आदि भगवान् शिवके पार्षदगण हर्ष और उल्लासमें भरकर नाच रहे होंगे॥ १७॥

पाणितालसुतालैश्च शम्पातालैः समैस्तथा।
सम्प्रहृष्टैः प्रनृत्यद्भिः शर्वस्तत्र निषेव्यते॥ १८॥

वे करताल और सुन्दर ताल बजाकर शम्पा ताल देते हुए समभावसे हर्षविभोर हो जोर-जोरसे नृत्य करते हुए वहाँ भगवान् शंकरकी सेवा करते हैं॥ १८॥

इष्टं किल गिरौ स्थानं तद्दिव्यमिति शुश्रुम।
नित्यं संनिहितो देवस्तथा ते पार्षदाः स्मृताः॥ १९॥

उस पर्वतका वह दिव्य स्थान भगवान् शंकरको बहुत प्रिय है। यह बात हमारे सुननेमें आयी है। वहाँ महादेवजी तथा उनके पार्षद नित्य निवास करते हैं॥

तत्र देव्या तपस्तप्तं शङ्करार्थं सुदुश्चरम्।
अतस्तदिष्टं देवस्य तथोमाया इति श्रुतिः॥ २०॥

वहाँ देवी पार्वतीने भगवान् शंकरकी प्राप्तिके लिये अत्यन्त दुष्कर तपस्या की थी, इसीलिये वह स्थान भगवान् शिव और पार्वतीको अधिक प्रिय है, ऐसा सुना जाता है॥ २०॥

पूर्वे तत्र महापार्श्वे देवस्योत्तरतस्तथा।
ऋतवः कालरात्रिश्च ये दिव्या ये च मानुषाः॥ २१॥
देवं चोपासते सर्वे रूपिणः किल तत्र ह।
तदतिक्रम्य भवनं त्वया यातव्यमेव हि॥ २२॥

महादेवजीके पूर्व तथा उत्तर भागमें महापार्श्व नामक पर्वत है, जहाँ ऋतु, कालरात्रि तथा दिव्य और मानुषभाव सब-के-सब मूर्तिमान् होकर महादेवजीकी उपासना करते हैं। उस स्थानको लाँघकर तुम आगे बढ़ते ही चले जाना॥ २१-२२॥

ततो नीलं वनोद्देशं द्रक्ष्यसे मेघसंनिभम्।
रमणीयं मनोग्राहि तत्र वै द्रक्ष्यसे स्त्रियम्॥ २३॥
तपस्विनीं महाभागां वृद्धां दीक्षामनुष्ठिताम्।
द्रष्टव्या सा त्वया तत्र सम्पूज्या चैव यत्नतः॥ २४॥

तदनन्तर तुम्हें मेघोंकी घटाके समान नीला एक वन्य प्रदेश दिखायी देगा। वह बड़ा ही मनोरम और रमणीय है। उस वनमें तुम एक स्त्रीको देखोगे जो तपस्विनी, महान् सौभाग्यवती, वृद्धा और दीक्षापरायण है। तुम यत्नपूर्वक वहाँ उसका दर्शन और पूजन करना॥ २३-२४॥

तां दृष्ट्वा विनिवृत्तस्त्वं ततः पाणिं ग्रहीष्यसि।
यद्येष समयः सर्वः साध्यतां तत्र गम्यताम्॥ २५॥

उसे देखकर लौटनेपर ही तुम मेरी पुत्रीका पाणिग्रहण कर सकोगे। यदि यह सारी शर्त स्वीकार हो तो इसे पूरी करनेमें लग जाओ और अभी वहाँकी यात्रा आरम्भ कर दो॥ २५॥

अष्टावक्र उवाच

तथास्तु साधयिष्यामि तत्र यास्याम्यसंशयम्।
यत्र त्वं वदसे साधो भवान् भवतु सत्यवाक्॥ २६॥

अष्टावक्र बोले—ऐसा ही होगा, मैं यह शर्त पूरी करूँगा। श्रेष्ठ पुरुष! आप जहाँ कहते हैं वहाँ अवश्य जाऊँगा। आपकी वाणी सत्य हो॥ २६॥

भीष्म उवाच

ततोऽगच्छत् स भगवानुत्तरामुत्तरां दिशम्।
हिमवन्तं गिरिश्रेष्ठं सिद्धचारणसेवितम्॥ २७॥
स गत्वा द्विजशार्दूलो हिमवन्तं महागिरिम्।
अभ्यगच्छन्नदीं पुण्यां बाहुदां धर्मशालिनीम्॥ २८॥

भीष्मजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर भगवान् अष्टावक्र उत्तरोत्तर दिशाकी ओर चल दिये। सिद्धों और चारणोंसे सेवित गिरिश्रेष्ठ महापर्वत हिमालयपर पहुँचकर वे श्रेष्ठ द्विज धर्मसे शोभा पानेवाली पुण्यमयी बाहुदा नदीके तटपर गये॥ २७-२८॥

अशोके विमले तीर्थे स्नात्वा वै तर्प्य देवताः।
तत्र वासाय शयने कौशे सुखमुवास ह॥ २९॥

वहाँ निर्मल अशोक तीर्थमें स्नान करके देवताओंका तर्पण करनेके पश्चात् उन्होंने कुशकी चटाईपर सुखपूर्वक निवास किया॥ २९॥

ततो रात्र्यां व्यतीतायां प्रातरुत्थाय स द्विजः।
स्नात्वा प्रादुश्चकाराग्निं स्तुत्वा चैनं प्रधानतः॥ ३०॥
रुद्राणीं रुद्रमासाद्य ह्रदे तत्र समाश्वसत्।
विश्रान्तश्च समुत्थाय कैलासमभितो ययौ॥ ३१॥

तदनन्तर रात बीतनेपर वे द्विज प्रातःकाल उठे और उन्होंने स्नान करके अग्निदेवको प्रज्वलित किया। फिर मुख्य-मुख्य वैदिक मन्त्रोंसे अग्निदेवकी स्तुति करके 'रुद्राणी रुद्र' नामक तीर्थमें गये और वहाँ सरोवरके तटपर कुछ कालतक विश्राम करते रहे। विश्रामके पश्चात् उठकर वे कैलासकी ओर चल दिये॥ ३०-३१॥

सोऽपश्यत् काञ्चनद्वारं दीप्यमानमिव श्रिया।
मन्दाकिनीं च नलिनीं धनदस्य महात्मनः॥ ३२॥

कुछ दूर जानेपर उन्होंने कुबेरकी अलकापुरीका सुवर्णमय द्वार देखा, जो दिव्य दीप्तिसे देदीप्यमान हो रहा था। वहीं महात्मा कुबेरकी कमलपुष्पोंसे सुशोभित

एक बावड़ी देखी, जो गंगाजीके जलसे परिपूर्ण होनेके कारण मन्दाकिनी नामसे विख्यात थी॥ ३२॥

अथ ते राक्षसाः सर्वे येऽभिरक्षन्ति पद्मिनीम्।
प्रत्युत्थिता भगवन्तं मणिभद्रपुरोगमाः॥ ३३॥

वहाँ जो उस पद्मपूर्ण पुष्करिणीकी रक्षा कर रहे थे, वे सब मणिभद्र आदि राक्षस भगवान् अष्टावक्रको देखकर उनके स्वागतके लिये उठकर खड़े हो गये॥

स तान् प्रत्यर्चयामास राक्षसान् भीमविक्रमान्।
निवेदयत मां क्षिप्रं धनदायेति चाब्रवीत्॥ ३४॥

मुनिने भी उन भयंकर पराक्रमी राक्षसोंके प्रति सम्मान प्रकट किया और कहा—'आपलोग शीघ्र ही धनपति कुबेरको मेरे आगमनकी सूचना दे दें'॥ ३४॥

ते राक्षसास्तथा राजन् भगवन्तमथाब्रुवन्।
असौ वैश्रवणो राजा स्वयमायाति तेऽन्तिकम्॥ ३५॥

राजन्! वे राक्षस वैसा करके भगवान् अष्टावक्रसे बोले—'प्रभो! राजा कुबेर स्वयं ही आपके निकट पधार रहे हैं॥ ३५॥

विदितो भगवानस्य कार्यमागमनस्य यत्।
पश्यैनं त्वं महाभागं ज्वलन्तमिव तेजसा॥ ३६॥

'आपका आगमन और इस आगमनका जो उद्देश्य है, वह सब कुछ कुबेरको पहलेसे ही ज्ञात है। देखिये, ये महाभाग धनाध्यक्ष अपने तेजसे प्रकाशित होते हुए आ रहे हैं'॥ ३६॥

ततो वैश्रवणोऽभ्येत्य अष्टावक्रमनिन्दितम्।
विधिवत्कुशलं पृष्ट्वा ततो ब्रह्मर्षिमब्रवीत्॥ ३७॥

तदनन्तर विश्रवाके पुत्र कुबेरने निकट आकर निन्दारहित ब्रह्मर्षि अष्टावक्रसे विधिपूर्वक कुशल-समाचार पूछते हुए कहा—॥ ३७॥

सुखं प्राप्तो भवान् कच्चित् किं वा मत्तश्चिकीर्षति।
ब्रूहि सर्वं करिष्यामि यन्मां वक्ष्यसि वै द्विज॥ ३८॥

'ब्रह्मन्! आप सुखपूर्वक यहाँ आये हैं न? बताइये मुझसे किस कार्यकी सिद्धि चाहते हैं? आप मुझसे जो-जो कहेंगे, वह सब पूर्ण करूँगा॥ ३८॥

भवनं प्रविश त्वं मे यथाकामं द्विजोत्तम।
सत्कृतः कृतकार्यश्च भवान् यास्यत्यविघ्नतः॥ ३९॥

'द्विजश्रेष्ठ! आप इच्छानुसार मेरे भवनमें प्रवेश कीजिये और यहाँका सत्कार ग्रहण करके कृतकृत्य हो यहाँसे निर्विघ्न यात्रा कीजियेगा॥ ३९॥

प्राविशद् भवनं स्वं वै गृहीत्वा तं द्विजोत्तमम्।
आसनं स्वं ददौ चैव पाद्यमर्घ्यं तथैव च॥ ४०॥

ऐसा कहकर कुबेरने विप्रवर अष्टावक्रको साथ लेकर अपने भवनमें प्रवेश किया और उन्हें पाद्य, अर्घ्य तथा अपना आसन दिया॥ ४०॥

अथोपविष्टयोस्तत्र मणिभद्रपुरोगमाः।
निषेदुस्तत्र कौबेरा यक्षगन्धर्वकिन्नराः॥ ४१॥

जब कुबेर और अष्टावक्र दोनों वहाँ आरामसे बैठ गये तब कुबेरके सेवक मणिभद्र आदि यक्ष, गन्धर्व और किन्नर भी नीचे बैठ गये॥ ४१॥

ततस्तेषां निषण्णानां धनदो वाक्यमब्रवीत्।
भवच्छन्दं समाज्ञाय नृत्येरन्नप्सरोगणाः॥ ४२॥
आतिथ्यं परमं कार्यं शुश्रूषा भवतस्तथा।
संवर्ततामित्युवाच मुनिर्मधुरया गिरा॥ ४३॥

उन सबके बैठ जानेपर कुबेरने कहा—'आपकी इच्छा हो तो उसे जानकर यहाँ अप्सराएँ नृत्य करें; क्योंकि आपका आतिथ्य सत्कार और सेवा करना हमलोगोंका परम कर्तव्य है।' तब मुनिने मधुर वाणीमें कहा, 'तथास्तु—ऐसा ही हो'॥ ४२-४३॥

अथोर्वरा मिश्रकेशी रम्भा चैवोर्वशी तथा।
अलम्बुषा घृताची च चित्रा चित्राङ्गदा रुचिः॥ ४४॥
मनोहरा सुकेशी च सुमुखी हासिनी प्रभा।
विद्युता प्रशमी दान्ता विद्योता रतिरेव च॥ ४५॥
एताश्चान्याश्च वै वह्व्यः प्रनृत्ताप्सरसः शुभाः।
अवादयंश्च गन्धर्वा वाद्यानि विविधानि च॥ ४६॥

तदनन्तर उर्वरा, मिश्रकेशी, रम्भा, उर्वशी, अलम्बुषा, घृताची, चित्रा, चित्रांगदा, रुचि, मनोहरा, सुकेशी, सुमुखी, हासिनी, प्रभा, विद्युता, प्रशमी, दान्ता, विद्योता और रति—ये तथा और भी बहुत-सी शुभलक्षणा अप्सराएँ नृत्य करने लगीं और गन्धर्वगण नाना प्रकारके बाजे बजाने लगे॥ ४४—४६॥

अथ प्रवृत्ते गान्धर्वे दिव्ये ऋषिरुपाविशत्।
दिव्यं संवत्सरं तत्रारमतैष महातपाः॥ ४७॥

वह दिव्य नृत्य-गीत आरम्भ होनेपर महातपस्वी ऋषि अष्टावक्र भी दर्शक-मण्डलीमें आ बैठे और वे देवताओंके वर्षसे एक वर्षतक इसी आमोद-प्रमोदमें रमते रहे॥ ४७॥

ततो वैश्रवणो राजा भगवन्तमुवाच ह।
साग्रः संवत्सरो जातो विप्रेह तव पश्यतः॥ ४८॥

तब राजा वैश्रवण (कुबेर)-ने भगवान् अष्टावक्रसे कहा—'विप्रवर! यहाँ नृत्य देखते हुए आपका एक वर्षसे कुछ अधिक समय व्यतीत हो गया है॥ ४८॥

हार्योऽयं विषयो ब्रह्मन् गान्धर्वो नाम नामतः।
छन्दतो वर्ततां विप्र यथा वदति वा भवान्॥ ४९॥

'ब्रह्मन्! यह नृत्य-गीतका विषय जिसे 'गान्धर्व' नाम दिया गया है बड़ा मनोहारी है; अतः यदि आपकी इच्छा हो तो यह आयोजन कुछ दिन और इसी तरह चलता रहे अथवा विप्रवर! आप जैसी आज्ञा दें वैसा किया जाय॥ ४९॥

अतिथिः पूजनीयस्त्वमिदं च भवतो गृहम्।
सर्वमाज्ञाप्यतामाशु परवन्तो वयं त्वयि॥ ५०॥

'आप मेरे पूजनीय अतिथि हैं। यह घर आपका ही है। आप निस्संकोच भावसे शीघ्र ही सभी कार्योंके लिये हमें आज्ञा दें। हम आपके वशवर्ती किंकर हैं'॥

अथ वैश्रवणं प्रीतो भगवान् प्रत्यभाषत।
अर्चितोऽस्मि यथान्यायं गमिष्यामि धनेश्वर॥ ५१॥

तब अत्यन्त प्रसन्न हुए भगवान् अष्टावक्रने कुबेरसे कहा—'धनेश्वर! आपने यथोचित रूपसे मेरा सत्कार किया है। अब आज्ञा दें, मैं यहाँसे जाऊँगा॥ ५१॥

प्रीतोऽस्मि सदृशं चैव तव सर्वं धनाधिप।
तव प्रसादाद् भगवन् महर्षेश्च महात्मनः॥ ५२॥
नियोगादद्य यास्यामि वृद्धिमानृद्धिमान् भव।
अथ निष्क्रम्य भगवान् प्रययावुत्तरामुखः॥ ५३॥

'धनाधिप! मैं बहुत प्रसन्न हूँ। आपकी सारी बातें आपके अनुरूप ही हैं। भगवन्! अब मैं आपकी कृपासे उन महात्मा महर्षि वदान्यकी आज्ञाके अनुसार आगे जाऊँगा। आप अभ्युदयशील एवं समृद्धिशाली हों।' इतना कहकर भगवान् अष्टावक्र उत्तर दिशाकी ओर मुँह करके चल दिये॥ ५२-५३॥

कैलासं मन्दरं हैमं सर्वाननुचचार ह।

एवं समूचे कैलास, मन्दराचल और हिमालयपर विचरण करने लगे॥ ५३½॥

तानतीत्य महाशैलान् कैरातं स्थानमुत्तमम्॥ ५४॥
प्रदक्षिणं तथा चक्रे प्रयतः शिरसा नतः।
धरणीमवतीर्याथ पूतात्मासौ तदाभवत्॥ ५५॥

उन बड़े-बड़े पर्वतोंको लाँघकर यतचित्त हो उन्होंने किरातवेषधारी महादेवजीके उत्तम स्थानकी परिक्रमा की और उसे मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। फिर नीचे पृथ्वीपर उतरकर वे उस स्थानके माहात्म्यसे तत्काल पवित्रात्मा हो गये॥ ५४-५५॥

स तं प्रदक्षिणं कृत्वा त्रिः शैलं चोत्तरामुखः।
समेन भूमिभागेन ययौ प्रीतिपुरस्कृतः॥ ५६॥

तीन बार उस पर्वतकी परिक्रमा करके वे उत्तराभिमुख हो समतल भूमिसे प्रसन्नतापूर्वक आगे बढ़े॥ ५६॥

ततोऽपरं वनोद्देशं रमणीयमपश्यत।
सर्वर्तुभिर्मूलफलैः पक्षिभिश्च समन्वितैः॥ ५७॥
रमणीयैर्वनोद्देशैस्तत्र तत्र विभूषितम्।

आगे जानेपर उन्हें एक दूसरी रमणीय वनस्थली दिखायी दी, जो सभी ऋतुओंके फल-मूलों, पक्षिसमूहों और मनोरम वनप्रान्तोंसे जहाँ-तहाँ शोभासम्पन्न हो रही थी॥ ५७½॥

तत्राश्रमपदं दिव्यं ददर्श भगवानथ॥ ५८॥
शैलांश्च विविधाकारान् काञ्चनान् रत्नभूषितान्।
मणिभूमौ निविष्टाश्च पुष्करिण्यस्तथैव च॥ ५९॥

वहाँ भगवान् अष्टावक्रने एक दिव्य आश्रम देखा। उस आश्रमके चारों ओर नाना प्रकारके सुवर्णमय एवं रत्नभूषित पर्वत शोभा पा रहे थे। वहाँकी मणिमयी भूमिपर कई सुन्दर बावड़ियाँ बनी थीं॥ ५८-५९॥

अन्यान्यपि सुरम्याणि पश्यतः सुबहून्यथ।
भृशं तस्य मनो रेमे महर्षेर्भावितात्मनः॥ ६०॥

इनके सिवा और भी बहुत-से सुरम्य दृश्य वहाँ दिखायी देते थे। उन सबको देखते हुए उन भावितात्मा महर्षिका मन वहाँ विशेष आनन्दका अनुभव करने लगा॥

स तत्र काञ्चनं दिव्यं सर्वरत्नमयं गृहम्।
ददर्शाद्भुतसंकाशं धनदस्य गृहाद् वरम्॥ ६१॥

महर्षिने उस प्रदेशमें एक दिव्य सुवर्णमय भवन देखा, जिसमें सब प्रकारके रत्न जड़े गये थे। वह मनोहर गृह कुबेरके राजभवनसे भी सुन्दर, श्रेष्ठ एवं अद्भुत था॥ ६१॥

महान्तो यत्र विविधा मणिकाञ्चनपर्वताः।
विमानानि च रम्याणि रत्नानि विविधानि च॥ ६२॥

वहाँ भाँति-भाँतिके मणिमय और सुवर्णमय विशाल पर्वत शोभा पाते थे। अनेकानेक सुरम्य विमान तथा नाना प्रकारके रत्न दृष्टिगोचर होते थे॥ ६२॥

मन्दारपुष्पैः संकीर्णां तथा मन्दाकिनीं नदीम्।
स्वयंप्रभाश्च मणयो वज्रैर्भूमिश्च भूषिता॥ ६३॥

उस प्रदेशमें मन्दाकिनी नदी प्रवाहित होती थी, जिसके स्रोतमें मन्दारके पुष्प बह रहे थे। वहाँ स्वयं प्रकाशित होनेवाली मणियाँ अपनी अद्भुत छटा बिखेर रही थीं। वहाँकी भूमि हीरोंसे जड़ी गयी थी॥ ६३॥

नानाविधैश्च भवनैर्विचित्रमणितोरणैः।
मुक्ताजालविनिक्षिप्तैर्मणिरत्नविभूषितैः ॥ ६४ ॥
मनोदृष्टिहरै रम्यैः सर्वतः संवृतं शुभैः।
ऋषिभिश्चावृतं तत्र आश्रमं तं मनोहरम्॥ ६५ ॥

उस आश्रमके चारों ओर विचित्र मणिमय तोरणोंसे सुशोभित, मोतीकी झालरोंसे अलंकृत तथा मणि एवं रत्नोंसे विभूषित सुन्दर भवन शोभा पा रहे थे। वे मनको मोह लेनेवाले तथा दृष्टिको बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर लेनेवाले थे। उन मंगलमय भवनोंसे घिरा और ऋषि-मुनियोंसे भरा हुआ वह आश्रम बड़ा मनोहर जान पड़ता था॥ ६४-६५ ॥

ततस्तस्याभवच्चिन्ता कुत्र वासो भवेदिति।
अथ द्वारं समभितो गत्वा स्थित्वा ततोऽब्रवीत्॥ ६६ ॥

वहाँ पहुँचकर अष्टावक्रके मनमें यह चिन्ता हुई कि अब कहाँ ठहरा जाय। यह विचार उठते ही वे प्रमुख द्वारके समीप गये और खड़े होकर बोले— ॥ ६६ ॥

अतिथिं समनुप्राप्तमभिजानन्तु येऽत्र वै।
अथ कन्याः परिवृता गृहात् तस्माद् विनिर्गताः॥ ६७॥
नानारूपाः सप्त विभो कन्याः सर्वा मनोहराः।
यां यामपश्यत् कन्यां वै सा सा तस्य मनोऽहरत्॥ ६८ ॥

'इस घरमें जो लोग रहते हों, उन्हें यह विदित होना चाहिये कि मैं एक अतिथि यहाँ आया हूँ।' उनके इस प्रकार कहते ही उस घरसे एक साथ सात कन्याएँ निकलीं। वे सब-की-सब भिन्न-भिन्न रूपवाली तथा बड़ी मनोहर थीं। विभो! अष्टावक्र मुनि उनमेंसे जिस-जिस कन्याकी ओर देखते, वही-वही उनका मन हर लेती थी॥ ६७-६८ ॥

न च शक्तो वारयितुं मनोऽस्याथावसीदति।
ततो धृतिः समुत्पन्ना तस्य विप्रस्य धीमतः॥ ६९ ॥

वे अपने मनको रोक नहीं पाते थे। बलपूर्वक रोकनेपर उनका मन शिथिल होता जाता था। तदनन्तर उन बुद्धिमान् ब्राह्मणके हृदयमें किसी तरह धैर्य उत्पन्न हुआ॥ ६९ ॥

अथ तं प्रमदाः प्राहुर्भगवान् प्रविशत्विति।
स च तासां सुरूपाणां तस्यैव भवनस्य हि॥ ७० ॥
कौतूहलं समाविष्टः प्रविवेश गृहं द्विजः।

तत्पश्चात् वे सातों तरुणी स्त्रियाँ बोलीं—'भगवन्! आप घरके भीतर प्रवेश करें।' ऋषिके मनमें उन सुन्दरियोंके तथा उस घरके विषयमें कौतूहल पैदा हो गया था; अतः उन्होंने उस घरमें प्रवेश किया॥ ७० ½ ॥

तत्रापश्यज्जरायुक्तामरजोऽम्बरधारिणीम् ॥ ७१ ॥
वृद्धां पर्यङ्कमासीनां सर्वाभरणभूषिताम्।

वहाँ उन्होंने एक जराजीर्ण वृद्धा स्त्रीको देखा, जो निर्मल वस्त्र धारण किये समस्त आभूषणोंसे विभूषित हो पलँगपर बैठी हुई थी॥ ७१ ½ ॥

स्वस्तीति तेन चैवोक्ता सा स्त्री प्रत्यवदत् तदा॥ ७२ ॥
प्रत्युत्थाय च तं विप्रमास्यतामित्युवाच ह।

अष्टावक्रने 'स्वस्ति' कहकर उसे आशीर्वाद दिया। वह स्त्री उनके स्वागतके लिये पलँगसे उठकर खड़ी हो गयी और इस प्रकार बोली—'विप्रवर! बैठिये'॥ ७२ ½ ॥

अष्टावक्र उवाच

सर्वाः स्वानालयान् यान्तु एका मामुपतिष्ठतु॥ ७३ ॥
प्रज्ञाता या प्रशान्ता या शेषा गच्छन्तु च्छन्दतः।

अष्टावक्रने कहा—'सारी स्त्रियाँ अपने-अपने घरको चली जायँ। केवल एक ही मेरे पास रह जाय। जो ज्ञानवती तथा मन और इन्द्रियोंको शान्त रखनेवाली हो, उसीको यहाँ रहना चाहिये। शेष स्त्रियाँ अपनी इच्छाके अनुसार जा सकती हैं'॥ ७३ ½ ॥

ततः प्रदक्षिणीकृत्य कन्यास्तास्तमृषिं तदा॥ ७४ ॥
निश्चक्रमुर्गृहात् तस्मात् सा वृद्धाथ व्यतिष्ठत।

तदनन्तर वे सब कन्याएँ उस समय ऋषिकी परिक्रमा करके उस घरसे निकल गयीं। केवल वह वृद्धा ही वहाँ ठहरी रही॥ ७४ ½ ॥

अथ तां संविशन् प्राह शयने भास्वरे तदा॥ ७५ ॥
त्वयापि सुप्यतां भद्रे रजनी ह्यतिवर्तते।

तत्पश्चात् उज्ज्वल एवं प्रकाशमान शय्यापर सोते हुए ऋषिने उस वृद्धासे कहा—'भद्रे! अब तुम भी सो जाओ। रात अधिक बीत चली है'॥ ७५ ½ ॥

संलापात् तेन विप्रेण तथा सा तत्र भाषिता॥ ७६ ॥
द्वितीये शयने दिव्ये संविवेश महाप्रभे।

बातचीतके प्रसङ्गमें उस ब्राह्मणके ऐसा कहनेपर वह भी दूसरे अत्यन्त प्रकाशमान दिव्य पलँगपर सो रही॥ ७६ ½ ॥

अथ सा वेपमानाङ्गी निमित्तं शीतजं तदा॥ ७७ ॥
व्यपदिश्य महर्षेर्वै शयनं व्यवरोहत।
स्वागतेनागतां तां तु भगवानभ्यभाषत॥ ७८ ॥

थोड़ी ही देरमें वह सरदी लगनेका बहाना करके थरथर काँपती हुई आयी और महर्षिकी शय्यापर आरूढ़ हो गयी। पास आनेपर भगवान् अष्टावक्रने 'आइये, स्वागत है' ऐसा कहकर उसके प्रति सम्मान प्रदर्शित किया॥ ७७-७८॥

सोपागूहद् भुजाभ्यां तु ऋषिं प्रीत्या नरर्षभ।
निर्विकारमृषिं चापि काष्ठकुड्योपमं तदा॥ ७९॥

नरश्रेष्ठ! उसने प्रेमपूर्वक दोनों भुजाओंसे ऋषिका आलिंगन कर लिया तो भी उसने देखा, ऋषि अष्टावक्र सूखे काठ और दीवारके समान विकारशून्य हैं॥ ७९॥

दुःखिता प्रेक्ष्य संजल्पमकार्षीदृषिणा सह।
ब्रह्मन्नकामतोऽन्यास्ति स्त्रीणां पुरुषतो धृतिः॥ ८०॥
कामेन मोहिता चाहं त्वां भजन्तीं भजस्व माम्।
प्रहृष्टो भव विप्रर्षे समागच्छ मया सह॥ ८१॥

उनकी ऐसी स्थिति देख वह बहुत दुखी हो गयी और मुनिसे इस प्रकार बोली—'ब्रह्मन्! पुरुषको अपने समीप पाकर उसके काम-व्यवहारको छोड़कर और किसी बातसे स्त्रीको धैर्य नहीं रहता। मैं कामसे मोहित होकर आपकी सेवामें आयी हूँ। आप मुझे स्वीकार कीजिये। ब्रह्मर्षे! आप प्रसन्न हों और मेरे साथ समागम करें॥

उपगूह च मां विप्र कामार्ताहं भृशं त्वयि।
एतद्धि तव धर्मात्मंस्तपसः पूज्यते फलम्॥ ८२॥

'विप्रवर! आप मेरा आलिंगन कीजिये। मैं आपके प्रति अत्यन्त कामातुर हूँ। धर्मात्मन्! यही आपकी तपस्याका प्रशस्त फल है॥ ८२॥

प्रार्थितं दर्शनादेव भजमानां भजस्व माम्।
मम चेदं धनं सर्वं यच्चान्यदपि पश्यसि॥ ८३॥
प्रभुस्त्वं भव सर्वत्र मयि चैव न संशयः।
सर्वान् कामान् विधास्यामि रमस्व सहितो मया॥ ८४॥

'मैं आपको देखते ही आपके प्रति अनुरक्त हो गयी हूँ; अतः आप मुझ सेविकाको अपनाइये। मेरा यह सारा धन तथा और जो कुछ आप देख रहे हैं, उस सबके तथा मेरे भी आप ही स्वामी हैं—इसमें संशय नहीं है। आप मेरे साथ रमण कीजिये। मैं आपकी समस्त कामनाएँ पूर्ण करूँगी॥ ८३-८४॥

रमणीये वने विप्र सर्वकामफलप्रदे।
त्वद्वशाहं भविष्यामि रंस्यसे च मया सह॥ ८५॥

'ब्रह्मन्! सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलको देनेवाले इस रमणीय वनमें मैं आपके अधीन होकर रहूँगी। आप मेरे साथ रमण कीजिये॥ ८५॥

सर्वान् कामानुपाश्नीमो ये दिव्या ये च मानुषाः।
नातः परं हि नारीणां विद्यते च कदाचन॥ ८६॥
यथा पुरुषसंसर्गः परमेतद्धि नः फलम्।

'हमलोग यहाँ दिव्य और मनुष्यलोक-सम्बन्धी सम्पूर्ण भोगोंका उपभोग करेंगे। स्त्रियोंके लिये पुरुषसंसर्ग जितना प्रिय है, उससे बढ़कर दूसरा कोई फल कदापि प्रिय नहीं होता। यही हमारे लिये सर्वोत्तम फल है॥

आत्मच्छन्देन वर्तन्ते नार्यो मन्मथचोदिताः॥ ८७॥
न च दह्यन्ति गच्छन्त्यः सुतप्तैरपि पांसुभिः।

'कामसे प्रेरित हुई नारियाँ सदा अपनी इच्छाके अनुसार बर्ताव करती हैं। कामसे संतप्त होनेपर वे तपी हुई धूलमें भी चलती हैं; परंतु इससे उनके पैर नहीं जलते हैं'॥ ८७½॥

अष्टावक्र उवाच

परदारानहं भद्रे न गच्छेयं कथंचन॥ ८८॥
दूषितं धर्मशास्त्रज्ञैः परदाराभिमर्शनम्।

अष्टावक्र बोले—भद्रे! मैं परायी स्त्रीके साथ किसी तरह संसर्ग नहीं कर सकता; क्योंकि धर्मशास्त्रके विद्वानोंने परस्त्रीसमागमकी निन्दा की है॥ ८८½॥

भद्रे निर्वेष्टुकामं मां विद्धि सत्येन वै शपे॥ ८९॥
विषयेष्वनभिज्ञोऽहं धर्मार्थं किल संततिः।
एवं लोकान् गमिष्यामि पुत्रैरिति न संशयः॥ ९०॥
भद्रे धर्मं विजानीहि ज्ञात्वा चोपरमस्व ह।

भद्रे! मैं सत्यकी सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि एक मनोनीत मुनिकुमारीके साथ विवाह करना चाहता हूँ। तुम इसे ठीक समझो। मैं विषयोंसे अनभिज्ञ हूँ। केवल धर्मके लिये संतानकी प्राप्ति मुझे अभीष्ट है; अतः यही मेरे विवाहका उद्देश्य है। ऐसा होनेपर मैं पुत्रोंद्वारा अभीष्ट लोकोंमें जाऊँगा। इसमें संशय नहीं है। भद्रे! तुम धर्मको समझो और उसे समझकर इस स्वेच्छाचारसे निवृत्त हो जाओ॥ ८९-९०½॥

स्त्र्युवाच

नानिलोऽग्निर्न वरुणो न चान्ये त्रिदशा द्विज॥ ९१॥
प्रियाः स्त्रीणां यथा कामो रतिशीला हि योषितः।
सहस्रे किल नारीणां प्राप्येतैका कदाचन॥ ९२॥
तथा शतसहस्रेषु यदि काचित् पतिव्रता।

स्त्री बोली—ब्रह्मन्! वायु, अग्नि, वरुण तथा अन्य देवता भी स्त्रियोंको वैसे प्रिय नहीं हैं, जैसा उन्हें

काम प्रिय लगता है; क्योंकि स्त्रियाँ स्वभावतः रतिकी इच्छुक होती हैं। सहस्रों नारियोंमें कभी कोई एक ऐसी स्त्री मिलती है जो रतिलोलुप न हो तथा लाखों स्त्रियोंमें शायद ही कोई एक पतिव्रता मिल सके॥ ९१-९२½॥

नैता जानन्ति पितरं न कुलं न च मातरम्॥ ९३॥
न भ्रातॄन् न च भर्तारं न च पुत्रान् न देवरान्।
लीलायन्त्यः कुलं घ्नन्ति कूलानीव सरिद्वराः।
दोषान् सर्वांश्च मत्वाऽऽशु प्रजापतिरभाषत॥ ९४॥

ये स्त्रियाँ न पिताको जानती हैं न माताको, न कुलको समझती हैं न भाइयोंको। पति, पुत्र तथा देवरोंकी भी ये परवाह नहीं करती हैं। अपने लिये रतिकी इच्छा रखकर ये समस्त कुलकी मर्यादाका नाश कर डालती हैं, ठीक उसी तरह जैसे बड़ी-बड़ी नदियाँ अपने तटोंको ही तोड़-फोड़ देती हैं। इन सब दोषोंको समझकर ही प्रजापतिने स्त्रियोंके विषयमें उपर्युक्त बातें कही हैं॥

भीष्म उवाच

ततः स ऋषिरेकाग्रस्तां स्त्रियं प्रत्यभाषत।
आस्यतां रुचितश्छन्दः किं च कार्यं ब्रवीहि मे॥ ९५॥

भीष्मजी कहते हैं—राजन्! तब ऋषिने एकाग्रचित्त होकर उस स्त्रीसे कहा—'चुप रहो। मनमें भोगकी रुचि होनेपर स्वेच्छाचार होता है। मेरी रुचि नहीं है, अतः मुझसे यह काम नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त यदि मुझसे कोई काम हो तो बताओ'॥ ९५॥

सा स्त्री प्रोवाच भगवन् द्रक्ष्यसे देशकालतः।
वस तावन्महाभाग कृतकृत्यो भविष्यसि॥ ९६॥

उस स्त्रीने कहा—'भगवन्! महाभाग! देश और कालके अनुसार आपको अनुभव हो जायगा। आप यहाँ रहिये, कृतकृत्य हो जाइयेगा'॥ ९६॥

ब्रह्मर्षिस्तामथोवाच स तथेति युधिष्ठिर।
वत्स्येऽहं यावदुत्साहो भवत्या नात्र संशयः॥ ९७॥

युधिष्ठिर! तब ब्रह्मर्षिने उससे कहा—'ठीक है, जबतक मेरे मनमें यहाँ रहनेका उत्साह होगा तबतक आपके साथ रहूँगा, इसमें संशय नहीं है'॥ ९७॥

अथर्षिरभिसम्प्रेक्ष्य स्त्रियं तां जरयार्दिताम्।
चिन्तां परमिकां भेजे संतप्त इव चाभवत्॥ ९८॥

इसके बाद ऋषि उस स्त्रीको जरावस्थासे पीड़ित देख बड़ी चिन्तामें पड़ गये और संतप्त-से हो उठे॥ ९८॥

यद् यदङ्गं हि सोऽपश्यत् तस्या विप्रर्षभस्तदा।
नारमत् तत्र तत्रास्य दृष्टी रूपविरागिता॥ ९९॥

विप्रवर अष्टावक्र उसका जो-जो अंग देखते थे वहाँ-वहाँ उनकी दृष्टि रमती नहीं थी, अपितु उसके रूपसे विरक्त हो उठती थी॥ ९९॥

देवतेयं गृहस्यास्य शापात् किं नु विरूपिता।
अस्याश्च कारणं वेत्तुं न युक्तं सहसा मया॥ १००॥

वे सोचने लगे 'यह नारी तो इस घरकी अधिष्ठात्री देवी है। फिर इसे इतना कुरूप किसने बना दिया? इसकी कुरूपताका कारण क्या है? इसे किसीका शाप तो नहीं लग गया। इसकी कुरूपताका कारण जाननेके लिये सहसा चेष्टा करना मेरे लिये उचित नहीं है'॥ १००॥

इति चिन्ताविविक्तस्य तमर्थं ज्ञातुमिच्छतः।
व्यगच्छत् तदहःशेषं मनसा व्याकुलेन तु॥ १०१॥

इस प्रकार व्याकुल चित्तसे एकान्तमें बैठकर चिन्ता करते और उसकी कुरूपताका कारण जाननेकी इच्छा रखते हुए महर्षिका वह सारा दिन बीत चला॥

अथ सा स्त्री तथोवाच भगवन् पश्य वै रवेः।
रूपं संध्याभ्रसंरक्तं किमुपस्थाप्यतां तव॥ १०२॥

तब उस स्त्रीने कहा—'भगवन्! देखिये, सूर्यका रूप संध्याकी लालीसे लाल हो गया है। इस समय आपके लिये कौन-सी वस्तु प्रस्तुत की जाय?'॥ १०२॥

स उवाच ततस्तां स्त्रीं स्नानोदकमिहानय।
उपासिष्ये ततः संध्यां वाग्यतो नियतेन्द्रियः॥ १०३॥

तब ऋषिने उस स्त्रीसे कहा—'मेरे नहानेके लिये यहाँ जल ले आओ। स्नानके पश्चात् मैं मौन होकर इन्द्रियसंयमपूर्वक संध्योपासना करूँगा'॥ १०३॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि अष्टावक्रदिक्संवादे एकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत अनुशासनपर्वके अन्तर्गत दानधर्मपर्वमें अष्टावक्र और उत्तर दिशाका संवादविषयक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २ श्लोक मिलाकर कुल १०५ श्लोक हैं)

विंशोऽध्यायः

अष्टावक्र और उत्तर दिशाका संवाद

भीष्म उवाच

अथ सा स्त्री तमुवाच बाढमेवं भवत्विति।
तैलं दिव्यमुपादाय स्नानशाटीमुपानयत्॥ १॥

भीष्मजी कहते हैं—राजन्! ऋषिकी बात सुनकर उस स्त्रीने कहा—'बहुत अच्छा, ऐसा ही हो' यों कहकर वह दिव्य तेल और स्नानोपयोगी वस्त्र ले आयी॥

अनुज्ञाता च मुनिना सा स्त्री तेन महात्मना।
अथास्य तैलेनाङ्गानि सर्वाण्येवाभ्यमृक्षत॥ २॥

फिर उन महात्मा मुनिकी आज्ञा लेकर उस स्त्रीने उनके सारे अंगोंमें तेलकी मालिश की॥ २॥

शनैश्चोत्सादितस्तत्र स्नानशालामुपागमत्।
भद्रासनं ततश्चित्रमृषिरन्वगमन्नवम्॥ ३॥

फिर उसके उठानेपर वे धीरेसे वहाँ स्नानगृहमें गये। वहाँ ऋषिको एक विचित्र एवं नूतन चौकी प्राप्त हुई॥ ३॥

अथोपविष्टश्च यदा तस्मिन् भद्रासने तदा।
स्नापयामास शनकैस्तमृषिं सुखहस्तवत्॥ ४॥

जब वे उस सुन्दर चौकीपर बैठ गये तब उस स्त्रीने धीरे-धीरे हाथोंके कोमल स्पर्शसे उन्हें नहलाया॥ ४॥

दिव्यं च विधिवच्चक्रे सोपचारं मुनेस्तदा।
स तेन सुसुखोष्णेन तस्या हस्तसुखेन च॥ ५॥
व्यतीतां रजनीं कृत्स्नां नाजानात् स महाव्रतः।

उसने मुनिके लिये विधिपूर्वक सम्पूर्ण दिव्य सामग्री प्रस्तुत की। वे महाव्रतधारी मुनि उसके दिये हुए कुछ-कुछ गरम होनेके कारण सुखदायक जलसे नहाकर उसके हाथोंके सुखद स्पर्शसे सेवित होकर इतने आनन्दविभोर हो गये कि कब सारी रात बीत गयी? इसका उन्हें ज्ञान ही नहीं हुआ॥ ५½॥

तत उत्थाय स मुनिस्तदा परमविस्मितः॥ ६॥
पूर्वस्यां दिशि सूर्यं च सोऽपश्यदुदितं दिवि।
तस्य बुद्धिरियं किं नु मोहस्तत्त्वमिदं भवेत्॥ ७॥

तदनन्तर वे मुनि अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर उठ बैठे। उन्होंने देखा कि पूर्व-दिशाके आकाशमें सूर्यदेवका उदय हो गया है। वे सोचने लगे, क्या यह मेरा मोह है या वास्तवमें सूर्योदय हो गया है॥ ६-७॥

अथोपास्य सहस्रांशुं किं करोमीत्युवाच ताम्।
सा चामृतरसप्रख्यं ऋषेरन्नमुपाहरत्॥ ८॥

फिर तो तत्काल स्नान, संध्योपासना और सूर्योपस्थान करके उससे बोले, 'अब क्या करूँ?' तब उस स्त्रीने ऋषिके समक्ष अमृतरसके समान मधुर अन्न परोसकर रखा॥ ८॥

तस्य स्वादुतयान्नस्य न प्रभूतं चकार सः।
व्यगमच्चाप्यहःशेषं ततः संध्यागमत् पुनः॥ ९॥

उस अन्नके स्वादसे वे इतने आकृष्ट हो गये कि उसे पर्याप्त न मान सके—'बस अब पूरा हो गया' यह बात न कह सके। इसीमें सारा दिन निकल गया और पुनः संध्याकाल आ पहुँचा॥ ९॥

अथ सा स्त्री भगवन्तं सुप्यतामित्यचोदयत्।
तत्र वै शयने दिव्ये तस्य तस्याश्च कल्पिते॥ १०॥

इसके बाद उस स्त्रीने भगवान् अष्टावक्रसे कहा—'अब आप सो जाइये।' फिर वहीं उनके और उस स्त्रीके लिये दो शय्याएँ बिछायी गयीं॥ १०॥

पृथक् चैव तथा सुप्तौ सा स्त्री स च मुनिस्तदा।
तथार्धरात्रे सा स्त्री तु शयनं तदुपागमत्॥ ११॥

उस समय वह स्त्री और मुनि दोनों अलग-अलग सो गये। जब आधी रात हुई तब वह स्त्री उठकर मुनिकी शय्यापर आ बैठी॥ ११॥

अष्टावक्र उवाच

न भद्रे परदारेषु मनो मे सम्प्रसज्जति।
उत्तिष्ठ भद्रे भद्रं ते स्वयं वै विरमस्व च॥ १२॥

अष्टावक्र बोले—भद्रे! मेरा मन परायी स्त्रियोंमें आसक्त नहीं होता है। तुम्हारा भला हो, यहाँसे उठो और स्वयं ही इस पापकर्मसे विरत हो जाओ॥ १२॥

भीष्म उवाच

सा तदा तेन विप्रेण तथा तेन निवर्तिता।
स्वतन्त्रास्मीत्युवाचर्षिं न धर्मच्छलमस्ति ते॥ १३॥

भीष्मजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार उन ब्रह्मर्षिके लौटानेपर उसने कहा—'मैं स्वतन्त्र हूँ; अतः मेरे साथ समागम करनेसे आपके धर्मकी छलना नहीं होगी'॥ १३॥

अष्टावक्र उवाच

नास्ति स्वतन्त्रता स्त्रीणामस्वतन्त्रा हि योषितः।
प्रजापतिमतं ह्येतन्न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति॥ १४॥

अष्टावक्र बोले—भद्रे! स्त्रियोंकी स्वतन्त्रता नहीं सिद्ध होती; क्योंकि वे परतन्त्र मानी गयी हैं। प्रजापतिका यह मत है कि स्त्री स्वतन्त्र रहनेयोग्य नहीं है॥ १४॥

स्त्युवाच

बाधते मैथुनं विप्र मम भक्तिं च पश्य वै।
अधर्मं प्राप्स्यसे विप्र यन्मां त्वं नाभिनन्दसि॥ १५॥

स्त्री बोली—ब्रह्मन्! मुझे मैथुनकी भूख सता रही है। आपके प्रति जो मेरी भक्ति है, इसपर भी तो दृष्टिपात कीजिये। विप्रवर! यदि आप मुझे संतुष्ट नहीं करते हैं तो आपको पाप लगेगा॥ १५॥

अष्टावक्र उवाच

हरन्ति दोषजातानि नरं जातं यथेच्छकम्।
प्रभवामि सदा धृत्या भद्रे स्वशयनं व्रज॥ १६॥

अष्टावक्रने कहा—भद्रे! स्वेच्छाचारी मनुष्यको ही सब प्रकारके पापसमूह अपनी ओर खींचते हैं। मैं धैर्यके द्वारा सदा अपने मनको काबूमें रखता हूँ; अतः तुम अपनी शय्यापर लौट जाओ॥ १६॥

स्त्युवाच

शिरसा प्रणमे विप्र प्रसादं कर्तुमर्हसि।
भूमौ निपतमानायाः शरणं भव मेऽनघ॥ १७॥

स्त्री बोली—अनघ! विप्रवर! मैं सिर झुकाकर प्रणाम करती हूँ और आपके सामने पृथ्वीपर पड़ी हूँ। आप मुझपर कृपा करें और मुझे शरण दें॥ १७॥

यदि वा दोषजातं त्वं परदारेषु पश्यसि।
आत्मानं स्पर्शयाम्यद्य पाणिं गृह्णीष्व मे द्विज॥ १८॥

ब्रह्मन्! यदि आप परायी स्त्रियोंके साथ समागममें दोष देखते हैं तो मैं स्वयं आपको अपना दान करती हूँ। आप मेरा पाणिग्रहण कीजिये॥ १८॥

न दोषो भविता चैव सत्येनैतद् ब्रवीम्यहम्।
स्वतन्त्रां मां विजानीहि योऽधर्मः सोऽस्तु वै मयि।
त्वय्यावेशितचित्ता च स्वतन्त्रास्मि भजस्व माम्॥ १९॥

मैं सच कहती हूँ, आपको कोई दोष नहीं लगेगा। आप मुझे स्वतन्त्र समझिये। इसमें जो पाप होता है, वह मुझे ही लगे। मेरा चित्त आपके ही चिन्तनमें लगा है। मैं स्वतन्त्र हूँ; अतः मुझे स्वीकार कीजिये॥ १९॥

अष्टावक्र उवाच

स्वतन्त्रा त्वं कथं भद्रे ब्रूहि कारणमत्र वै।
नास्ति त्रिलोके स्त्री काचिद् या वै स्वातन्त्र्यमर्हति॥ २०॥

अष्टावक्रने कहा—भद्रे! तुम स्वतन्त्र कैसे हो? इसमें जो कारण हो, वह बताओ! तीनों लोकोंमें कोई ऐसी स्त्री नहीं है जो स्वतन्त्र रहने योग्य हो॥ २०॥

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
पुत्राश्च स्थाविरे काले नास्ति स्त्रीणां स्वतन्त्रता॥ २१॥

कुमारावस्थामें पिता इसकी रक्षा करते हैं, जवानीमें वह पतिके संरक्षणमें रहती है और बुढ़ापेमें पुत्र उसकी देखभाल करते हैं। इस प्रकार स्त्रियोंके लिये स्वतन्त्रता नहीं है॥ २१॥

स्त्युवाच

कौमारं ब्रह्मचर्यं मे कन्यैवास्मि न संशयः।
पत्नीं कुरुष्व मां विप्र श्रद्धां विजहि मा मम॥ २२॥

स्त्री बोली—विप्रवर! मैं कुमारावस्थासे ही ब्रह्मचारिणी हूँ; अतः कन्या ही हूँ—इसमें संशय नहीं है। अब आप मुझे पत्नी बनाइये। मेरी श्रद्धाका नाश न कीजिये॥

अष्टावक्र उवाच

यथा मम तथा तुभ्यं यथा तुभ्यं तथा मम।
जिज्ञासेयमृषेस्तस्य विघ्नः सत्यं न किं भवेत्॥ २३॥

अष्टावक्रने कहा—जैसी मेरी दशा है, वैसी तुम्हारी है और जैसी तुम्हारी दशा है, वैसी मेरी है। यह वास्तवमें वदान्य ऋषिके द्वारा परीक्षा ली जा रही है या सचमुच यह कोई विघ्न तो नहीं है?॥ २३॥

आश्चर्यं परमं हीदं किं नु श्रेयो हि मे भवेत्।
दिव्याभरणवस्त्रा हि कन्येयं मामुपस्थिता॥ २४॥

(वे मन-ही-मन सोचने लगे—) यह पहले वृद्धा थी और अब दिव्य वस्त्राभूषणोंसे विभूषित कन्यारूप होकर मेरी सेवामें उपस्थित है। यह बड़े ही आश्चर्यकी बात है। क्या यह मेरे लिये कल्याणकारी होगा?॥ २४॥

किं त्वस्याः परमं रूपं जीर्णमासीत् कथं पुनः।
कन्यारूपमिहाद्यैवं किमिवात्रोत्तरं भवेत्॥ २५॥

परंतु इसका यह परम सुन्दर रूप पहले जराजीर्ण कैसे हो गया था और अब यहाँ यह कन्यारूप कैसे प्रकट हो गया? ऐसी दशामें यहाँ उसके लिये क्या उत्तर हो सकता है?॥ २५॥

यथा परं शक्तिधृतेर्न व्युत्थास्ये कथंचन।
न रोचते हि व्युत्थानं सत्येनासादयाम्यहम्॥ २६॥

मुझमें कामको दमन करनेकी शक्ति है और पूर्वप्राप्त मुनि-कन्याको किसी तरह भी प्राप्त करनेका धैर्य बना हुआ है। इस शक्ति और धृतिके ही सहारे मैं किसी तरह विचलित नहीं होऊँगा। मुझे धर्मका उल्लंघन अच्छा नहीं लगता। मैं सत्यके सहारेसे ही पत्नीको प्राप्त करूँगा॥ २६॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि अष्टावक्रदिक्संवादे विंशोऽध्यायः॥ २०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत अनुशासनपर्वके अन्तर्गत दानधर्मपर्वमें अष्टावक्र और उत्तरदिशाका संवादविषयक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २०॥

एकविंशोऽध्यायः

अष्टावक्र और उत्तरदिशाका संवाद, अष्टावक्रका अपने घर लौटकर वदान्य ऋषिकी कन्याके साथ विवाह करना

युधिष्ठिर उवाच

न बिभेति कथं सा स्त्री शापाच्च परमद्युतेः।
कथं निवृत्तो भगवांस्तद् भवान् प्रब्रवीतु मे॥ १॥

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! वह स्त्री उन महातेजस्वी ऋषिके शापसे डरती कैसे नहीं थी; और वे भगवान् अष्टावक्र किस तरह वहाँसे लौटे थे? यह सब मुझे बताइये॥ १॥

भीष्म उवाच

अष्टावक्रोऽन्वपृच्छत् तां रूपं विकुरुषे कथम्।
न चानृतं ते वक्तव्यं ब्रूहि ब्राह्मणकाम्यया॥ २॥

भीष्मजीने कहा—राजन्! सुनो, अष्टावक्रने उस स्त्रीसे पूछा, 'तुम अपना रूप बदलती क्यों रहती हो? बताओ, यदि मुझ-जैसे ब्राह्मणसे सम्मान पानेकी इच्छा हो तो झूठ न बोलना'॥ २॥

स्त्र्युवाच

द्यावापृथिव्योर्यत्रैषा काम्या ब्राह्मणसत्तम।
शृणुष्वावहितः सर्वं यदिदं सत्यविक्रम॥ ३॥

स्त्री बोली—ब्राह्मणशिरोमणे! स्वर्गलोक हो या मर्त्यलोक, जिस किसी भी स्थानमें स्त्री और पुरुष निवास करते हैं, वहाँ उनमें परस्पर संयोगकी यह कामना सदा बनी रहती है। सत्यपराक्रमी विप्र! यह सब जो रूपपरिवर्तनकी लीला की गयी है, उसका कारण बताती हूँ, सावधान होकर सुनिये॥ ३॥

जिज्ञासेयं प्रयुक्ता मे स्थिरीकर्तुं तवानघ।
अव्युत्थानेन ते लोका जिताः सत्यपराक्रम॥ ४॥

निर्दोष ब्राह्मण! आपको दृढ़ करनेके लिये आपकी परीक्षा लेनेके उद्देश्यसे ही मैंने यह कार्य किया है। सत्यपराक्रमी द्विज! आपने अपने धर्मसे विचलित न होकर समस्त पुण्यलोकोंको जीत लिया है॥ ४॥

उत्तरां मां दिशं विद्धि दृष्टं स्त्रीचापलं च ते।
स्थविराणामपि स्त्रीणां बाधते मैथुनज्वरः॥ ५॥

आप मुझे उत्तरदिशा समझें। स्त्रीमें कितनी चपलता होती है—यह आपने प्रत्यक्ष देखा है। बूढ़ी स्त्रियोंको भी मैथुनके लिये होनेवाला कामजनित संताप कष्ट देता रहता है॥ ५॥

(अविश्वासान्न व्यसनी नातिसक्तोऽप्रवासकः।
विद्वान् सुशीलः पुरुषः सदारः सुखमश्नुते॥)

जो कहीं भी विश्वास न करनेके कारण किसी व्यसनमें नहीं फँसता, कहीं भी अधिक आसक्त नहीं होता, परदेशमें नहीं रहता तथा जो विद्वान् और सुशील है, वही पुरुष स्त्रीके साथ रहकर सुख भोगता है॥

तुष्टः पितामहस्तेऽद्य तथा देवाः सवासवाः।
स त्वं येन च कार्येण सम्प्राप्तो भगवानिह॥ ६॥
प्रेषितस्तेन विप्रेण कन्यापित्रा द्विजर्षभ।
तवोपदेशं कर्तुं वै तच्च सर्वं कृतं मया॥ ७॥

आज आपके ऊपर ब्रह्माजी तथा इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता संतुष्ट हैं। भगवन् द्विजश्रेष्ठ! आप यहाँ जिस कार्यसे आये हैं, वह सफल हो गया। उस कन्याके पिता वदान्य ऋषिने मेरे पास आपको उपदेश देनेके लिये भेजा था। वह सब मैंने कर दिया॥ ६-७॥

क्षेमैर्गमिष्यसि गृहं श्रमश्च न भविष्यति।
कन्यां प्राप्स्यसि तां विप्र पुत्रिणी च भविष्यति॥ ८॥

विप्रवर! अब आप कुशलपूर्वक अपने घरको जायँगे और मार्गमें आपको कोई श्रम अथवा कष्ट नहीं होगा। उस मनोनीत कन्याको आप प्राप्त कर लेंगे और आपके द्वारा वह पुत्रवती भी होगी ही॥ ८॥

काम्यया पृष्टवांस्त्वं मां ततो व्याहृतमुत्तमम्।
अनतिक्रमणीया सा कृत्स्नैर्लोकैस्त्रिभिः सदा॥ ९॥

आपने जाननेकी इच्छासे मुझसे यह बात पूछी थी, इसलिये मैंने अच्छे ढंगसे सब कुछ बता दिया। तीनों लोकोंके सम्पूर्ण निवासियोंके लिये भी ब्राह्मणकी आज्ञा कदापि उल्लंघनीय नहीं होती॥ ९॥

गच्छस्व सुकृतं कृत्वा किं चान्यच्छ्रोतुमिच्छसि।
यावद् ब्रवीमि विप्रर्षे अष्टावक्र यथातथम्॥ १०॥

ब्रह्मर्षि अष्टावक्र! आप पुण्यका उपार्जन करके जाइये। और क्या सुनना चाहते हैं? कहिये, मैं वह सब कुछ यथार्थरूपसे बताऊँगी॥ १०॥

ऋषिणा प्रसादिता चास्मि तव हेतोर्द्विजर्षभ।
तस्य सम्माननार्थं मे त्वयि वाक्यं प्रभाषितम्॥ ११॥

द्विजश्रेष्ठ! वदान्य मुनिने आपके लिये मुझे प्रसन्न किया था; अतः उनके सम्मानके लिये ही मैंने ये सारी बातें कही हैं॥ ११॥

भीष्म उवाच

श्रुत्वा तु वचनं तस्याः स विप्रः प्राञ्जलिः स्थितः।
अनुज्ञातस्तया चापि स्वगृहं पुनराव्रजत्॥ १२॥

भीष्मजी कहते हैं—भारत! उस स्त्रीकी बात सुनकर विप्रवर अष्टावक्र उसके सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये। फिर उसकी आज्ञा ले पुनः अपने घरको लौट आये॥ १२॥

गृहमागत्य विश्रान्तः स्वजनं परिपृच्छ्य च।
अभ्यगच्छच्च तं विप्रं न्यायतः कुरुनन्दन॥ १३॥

कुरुनन्दन! घर आकर उन्होंने विश्राम किया और स्वजनोंसे पूछकर वे न्यायानुसार फिर ब्राह्मण वदान्यके घर गये॥ १३॥

पृष्टश्च तेन विप्रेण दृष्टं त्वेतन्निदर्शनम्।
प्राह विप्रं तदा विप्रः सुप्रीतेनान्तरात्मना॥ १४॥

ब्राह्मणने उनकी यात्राके विषयमें पूछा, तब उन्होंने प्रसन्नचित्तसे जो कुछ वहाँ देखा था, सब बताना आरम्भ किया— ॥ १४॥

भवता समनुज्ञातः प्रास्थितो गन्धमादनम्।
तस्य चोत्तरतो देशे दृष्टं मे दैवतं महत्॥ १५॥
तया चाहमनुज्ञातो भवांश्चापि प्रकीर्तितः।
श्रावितश्चापि तद्वाक्यं गृहं चाभ्यागतः प्रभोः॥ १६॥

'महर्षे! आपकी आज्ञा पाकर मैं उत्तर दिशामें गन्धमादनपर्वतकी ओर चल दिया। उससे भी उत्तर जानेपर मुझे एक महती देवीका दर्शन हुआ। उसने मेरी परीक्षा ली और आपका भी परिचय दिया। प्रभो! फिर उसने अपनी बात सुनायी और उसकी आज्ञा लेकर मैं अपने घर आ गया'॥

तमुवाच तदा विप्रः सुतां प्रतिगृहाण मे।
नक्षत्रविधियोगेन पात्रं हि परमं भवान्॥ १७॥

तब ब्राह्मण वदान्यने कहा—'आप उत्तम नक्षत्रमें विधिपूर्वक मेरी पुत्रीका पाणिग्रहण कीजिये; क्योंकि आप अत्यन्त सुयोग्य पात्र हैं'॥ १७॥

भीष्म उवाच

अष्टावक्रस्तथेत्युक्त्वा प्रतिगृह्य च तां प्रभो।
कन्यां परमधर्मात्मा प्रीतिमांश्चाभवत् तदा॥ १८॥

भीष्मजी कहते हैं—प्रभो! तदनन्तर 'तथास्तु' कहकर परम धर्मात्मा अष्टावक्रने उस कन्याका पाणिग्रहण किया। इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई॥ १८॥

कन्यां तां प्रतिगृह्यैव भार्यां परमशोभनाम्।
उवास मुदितस्तत्र स्वाश्रमे विगतज्वरः॥ १९॥

उस परम सुन्दरी कन्याका पत्नीरूपमें दान पाकर अष्टावक्र मुनिकी सारी चिन्ता दूर हो गयी और वे अपने आश्रममें उसके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगे॥ १९॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि अष्टावक्रदिक्संवादे एकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत अनुशासनपर्वके अन्तर्गत दानधर्मपर्वमें अष्टावक्र और उत्तरदिशाका संवादविषयक इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २१॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल २० श्लोक हैं)

द्वाविंशोऽध्यायः

युधिष्ठिरके विविध धर्मयुक्त प्रश्नोंका उत्तर तथा श्राद्ध और दानके उत्तम पात्रोंका लक्षण

[मार्कण्डेयजीके द्वारा विविध प्रश्न और नारदजीके द्वारा उनका उत्तर]

(युधिष्ठिर उवाच

पुत्रैः कथं महाराज पुरुषस्तरितो भवेत्।
यावन्न लब्धवान् पुत्रमफलः पुरुषो नृप॥

युधिष्ठिरने पूछा—नरेश्वर! महाराज! पुत्रोंद्वारा पुरुषका कैसे उद्धार होता है? जबतक पुत्रकी प्राप्ति न हो तबतक पुरुषका जीवन निष्फल क्यों माना जाता है?॥

भीष्म उवाच

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
नारदेन पुरा गीतं मार्कण्डेयाय पृच्छते॥

भीष्मजीने कहा—राजन्! इस विषयमें इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है। पूर्वकालमें मार्कण्डेयके पूछनेपर देवर्षि नारदने जो उपदेश दिया था, उसीका इस इतिहासमें उल्लेख हुआ है॥

पर्वतं नारदं चैवमसितं देवलं च तम्।
आरुणेयं च रैभ्यं च एतानत्रागतान् पुरा॥

गङ्गायमुनयोर्मध्ये भोगवत्याः समागमे।
दृष्ट्वा पूर्वसमासीनान् मार्कण्डेयोऽभ्यगच्छत॥

पहलेकी बात है, गंगा-यमुनाके मध्यभागमें जहाँ भोगवतीका समागम हुआ है वहीं पर्वत, नारद, असित, देवल, आरुणेय और रैभ्य—ये ऋषि एकत्र हुए थे। इन सब ऋषियोंको वहाँ पहलेसे विराजमान देख मार्कण्डेयजी भी गये॥

ऋषयस्तु मुनिं दृष्ट्वा समुत्थायोन्मुखाः स्थिताः।
अर्चयित्वार्हतो विप्रं किं कुर्म इति चाब्रुवन्॥

ऋषियोंने जब मुनिको आते देखा, तब वे सब-के-सब उठकर उनकी ओर मुख करके खड़े हो गये और उन ब्रह्मर्षिकी उनके योग्य पूजा करके सबने पूछा—'हम आपकी क्या सेवा करें?'॥

मार्कण्डेय उवाच

अयं समागमः सद्भिर्यत्नेनासादितो मया।
अत्र प्राप्स्यामि धर्माणामाचारस्य च निश्चयम्॥

मार्कण्डेयजीने कहा—मैंने बड़े यत्नसे सत्पुरुषोंका यह संग प्राप्त किया है। मुझे आशा है, यहाँ धर्म और आचारका निर्णय प्राप्त होगा॥

ऋजुः कृतयुगे धर्मस्तस्मिन् क्षीणे विमुह्यति।
युगे युगे महर्षिभ्यो धर्ममिच्छामि वेदितुम्॥

सत्ययुगमें धर्मका अनुष्ठान सरल होता है। उस युगके समाप्त हो जानेपर धर्मका स्वरूप मनुष्योंके मोहसे आच्छन्न हो जाता है; अतः प्रत्येक युगके धर्मका क्या स्वरूप है? इसे मैं आप सब महर्षियोंसे जानना चाहता हूँ॥

भीष्म उवाच

ऋषिभिर्नारदः प्रोक्तो ब्रूहि यत्रास्य संशयः।
धर्माधर्मेषु तत्त्वज्ञ त्वं विच्छेत्तासि संशयान्॥

भीष्मजी कहते हैं—राजन्! तब सब ऋषियोंने मिलकर नारदजीसे कहा—'तत्त्वज्ञ देवर्षे! मार्कण्डेयजीको जिस विषयमें संदेह है उसका आप निरूपण कीजिये। क्योंकि धर्म और अधर्मके विषयमें होनेवाले समस्त संशयोंका निवारण करनेमें आप समर्थ हैं'॥

ऋषिभ्योऽनुमतो वाक्यं नियोगान्नारदोऽब्रवीत्।
सर्वधर्मार्थतत्त्वज्ञं मार्कण्डेयं ततोऽब्रवीत्॥

ऋषियोंकी यह अनुमति और आदेश पाकर नारदजीने सम्पूर्ण धर्म और अर्थके तत्त्वको जाननेवाले मार्कण्डेयजीसे पूछा॥

नारद उवाच

दीर्घायो तपसा दीप्त वेदवेदाङ्गतत्त्ववित्।
यत्र ते संशयो ब्रह्मन् समुत्पन्नः स उच्यताम्॥

नारदजी बोले—तपस्यासे प्रकाशित होनेवाले दीर्घायु मार्कण्डेयजी! आप तो स्वयं ही वेदों और वेदांगोंके तत्त्वको जाननेवाले हैं, तथापि ब्रह्मन्! जहाँ आपको संशय उत्पन्न हुआ हो वह विषय उपस्थित कीजिये॥

धर्मं लोकोपकारं वा यच्चान्यच्छ्रोतुमिच्छसि।
तदहं कथयिष्यामि ब्रूहि त्वं सुमहातपाः॥

महातपस्वी महर्षे! धर्म, लोकोपकार अथवा और जिस किसी विषयमें आप सुनना चाहते हों उसे कहिये। मैं उस विषयका निरूपण करूँगा॥

मार्कण्डेय उवाच

युगे युगे व्यतीतेऽस्मिन् धर्मसेतुः प्रणश्यति।
कथं धर्मच्छलेनाहं प्राप्नुयामिति मे मतिः॥

मार्कण्डेयजी बोले—प्रत्येक युगके बीत जानेपर धर्मकी मर्यादा नष्ट हो जाती है। फिर धर्मके बहानेसे अधर्म करनेपर मैं उस धर्मका फल कैसे प्राप्त कर सकता हूँ? मेरे मनमें यही प्रश्न उठता है॥

नारद उवाच

आसीद् धर्मः पुरा विप्र चतुष्पादः कृते युगे।
ततो ह्यधर्मः कालेन प्रवृत्तः किञ्चिदुन्नतः॥

नारदजीने कहा—विप्रवर! पहले सत्ययुगमें धर्म अपने चारों पैरोंसे युक्त होकर सबके द्वारा पालित होता था। तदनन्तर समयानुसार अधर्मकी प्रवृत्ति हुई और उसने अपना सिर कुछ ऊँचा किया॥

ततस्त्रेतायुगं नाम प्रवृत्तं धर्मदूषणम्।
तस्मिन् व्यतीते सम्प्राप्तं तृतीयं द्वापरं युगम्॥
तदा धर्मस्य द्वौ पादावधर्मो नाशयिष्यति।

तदनन्तर धर्मको अंशतः दूषित करनेवाले त्रेतानामक दूसरे युगकी प्रवृत्ति हुई। जब वह भी बीत गया तब तीसरे युग द्वापरका पदार्पण हुआ। उस समय धर्मके दो पैरोंको अधर्म नष्ट कर देता है॥

द्वापरे तु परिक्षीणे नन्दिके समुपस्थिते॥
लोकवृत्तं च धर्मं च उच्यमानं निबोध मे।

द्वापरके नष्ट होनेपर जब नन्दिक (कलियुग) उपस्थित होता है उस समय लोकाचार और धर्मका जैसा स्वरूप रह जाता है, उसे बताता हूँ, सुनिये॥

चतुर्थं नन्दिकं नाम धर्मः पादावशेषितः॥

ततः प्रभृति जायन्ते क्षीणप्रज्ञायुषो नराः।
क्षीणप्राणधना लोके धर्माचारबहिष्कृताः॥

चौथे युगका नाम है नन्दिक। उस समय धर्मका एक ही पाद (अंश) शेष रह जाता है। तभीसे मन्दबुद्धि और अल्पायु मनुष्य उत्पन्न होने लगते हैं। लोकमें उनकी प्राणशक्ति बहुत कम हो जाती है। वे निर्धन तथा धर्म और सदाचारसे बहिष्कृत होते हैं॥

मार्कण्डेय उवाच

एवं विलुलिते धर्मे लोके चाधर्मसंयुते।
किं चतुर्वर्णनियतं हव्यं कव्यं न नश्यति॥

मार्कण्डेयजीने पूछा—जब इस प्रकार धर्मका लोप होकर जगत्में अधर्म छा जाता है तब चारों वर्णोंके लिये नियत हव्य और कव्यका नाश क्यों नहीं हो जाता है?॥

नारद उवाच

मन्त्रपूतं सदा हव्यं कव्यं चैव न नश्यति।
प्रतिगृह्णन्ति तद् देवा दातुर्न्यायात् प्रयच्छतः॥

नारदजीने कहा—वेदमन्त्रसे सदा पवित्र होनेके कारण हव्य और कव्य नहीं नष्ट होते हैं। यदि दाता न्यायपूर्वक उनका दान करते हैं तो देवता और पितर उन्हें सादर ग्रहण करते हैं॥

सत्त्वयुक्तश्च दाता च सर्वान् कामानवाप्नुयात्।
अवाप्तकामः स्वर्गे च महीयेत यथेप्सितम्॥

जो दाता सात्त्विक भावसे युक्त होता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण मनोवाञ्छित कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। यहाँ आप्तकाम होकर वह स्वर्गमें भी अपनी इच्छाके अनुसार सम्मानित होता है॥

मार्कण्डेय उवाच

चत्वारो ह्यथ ये वर्णा हव्यं कव्यं प्रदास्यते।
मन्त्रहीनमवज्ञातं तेषां दत्तं क्व गच्छति॥

मार्कण्डेयजीने पूछा—यहाँ जो चार वर्णके लोग हैं, उनके द्वारा यदि मन्त्ररहित और अवहेलना-पूर्वक हव्य-कव्यका दान दिया जाय तो उनका वह दान कहाँ जाता है?॥

नारद उवाच

असुरान् गच्छते दत्तं विप्रै रक्षांसि क्षत्रियैः।
वैश्यैः प्रेतानि वै दत्तं शूद्रैर्भूतानि गच्छति॥

नारदजीने कहा—यदि ब्राह्मणोंने वैसा दान किया है तो वह असुरोंको प्राप्त होता है, क्षत्रियोंने किया है तो उसे राक्षस ले जाते हैं, वैश्योंद्वारा किये गये वैसे दानको प्रेत ग्रहण करते हैं और शूद्रोंद्वारा किया गया अवज्ञापूर्वक दान भूतोंको प्राप्त होता है॥

मार्कण्डेय उवाच

अथ वर्णावरे जाताश्चातुर्वर्ण्योपदेशिनः।
दास्यन्ति हव्यकव्यानि तेषां दत्तं क्व गच्छति॥

मार्कण्डेयजीने पूछा—जो नीच वर्णमें उत्पन्न होकर चारों वर्णोंको उपदेश देते और हव्य-कव्यका दान देते हैं, उनका दिया हुआ दान कहाँ जाता है?॥

नारद उवाच

वर्णावराणां भूतानां हव्यकव्यप्रदातृणाम्।
नैव देवा न पितरः प्रतिगृह्णन्ति तत् स्वयम्॥

नारदजीने कहा—जब नीच वर्णके लोग हव्य-कव्यका दान करते हैं, तब उनके उस दानको न देवता ग्रहण करते हैं न पितर॥

यातुधानाः पिशाचाश्च भूता ये चापि नैर्ऋताः।
तेषां सा विहिता वृत्तिः पितृदैवतनिर्गता॥

जो यातुधान, पिशाच, भूत और राक्षस हैं, उन्हींके लिये उस वृत्तिका विधान किया गया है। पितरों और देवताओंने वैसी वृत्तिका परित्याग कर दिया है॥

तेषां सर्वप्रदातॄणां हव्यकव्यं समाहिताः।
यत् प्रयच्छन्ति विधिवत् तद् वै भुञ्जन्ति देवताः॥

जो सब कुछ देनेवाले और उस कर्मके अधिकारी हैं, वे एकाग्रचित्त होकर विधिपूर्वक जो हव्य और कव्य समर्पित करते हैं, उसे देवता और पितर ग्रहण करते हैं॥

मार्कण्डेय उवाच

श्रुतं वर्णावरैर्दत्तं हव्यं कव्यं च नारद।
सम्प्रयोगे च पुत्राणां कन्यानां च ब्रवीहि मे॥

मार्कण्डेयजीने पूछा—नारदजी! नीच वर्णके दिये हुए हव्य और कव्योंकी जो दशा होती है, उसे मैंने सुन ली। अब पुत्रों और कन्याओंके विषयमें एवं इनके संयोगके विषयमें मुझे कुछ बातें बताइये॥

नारद उवाच

कन्याप्रदानं पुत्राणां स्त्रीणां संयोगमेव च।
आनुपूर्व्यान्मया सम्यगुच्यमानं निबोध मे॥

नारदजीने कहा—अब मैं कन्या-विवाहके और पुत्रोंके विषयमें एवं स्त्रियोंके संयोगके विषयमें क्रमशः बता रहा हूँ, उसे सुनो॥

जातमात्रा तु दातव्या कन्यका सदृशे वरे।
काले दत्तासु कन्यासु पिता धर्मेण युज्यते॥

जो कन्या उत्पन्न हो जाती है, उसे किसी योग्य वरको सौंप देना आवश्यक होता है। यदि ठीक समयपर कन्याओंका दान हो गया तो पिता धर्मफलका भागी होता है॥

यस्तु पुष्पवतीं कन्यां बान्धवो न प्रयच्छति।
मासि मासि गते बन्धुस्तस्या भ्रौणघ्न्यमाप्नुते॥

जो भाई-बन्धु रजस्वलावस्थामें पहुँच जानेपर भी कन्याका किसी योग्य वरके साथ विवाह नहीं कर देता, वह उसके एक-एक मास बीतनेपर भ्रूणहत्याके फलका भागी होता है॥

यस्तु कन्यां गृहे रुन्ध्याद् ग्राम्यैर्भोगैर्विवर्जिताम्।
अवध्यातः स कन्याया बन्धुः प्राप्नोति भ्रूणहाम्॥

जो भाई-बन्धु कन्याको विषय-भोगोंसे वंचित करके घरमें रोके रखता है, वह उस कन्याके द्वारा अनिष्ट चिन्तन किये जानेके कारण भ्रूणहत्याके पापका भागी होता है॥

मार्कण्डेय उवाच

केन मङ्गलकृत्येषु विनियुज्यन्ति कन्यकाः।
एतदिच्छामि विज्ञातुं तत्त्वेनेह महामुने॥

मार्कण्डेयजीने पूछा—महामुने! किस कारणसे कन्याओंको मांगलिक कर्मोंमें नियुक्त किया जाता है? मैं इस बातको यथार्थरूपसे जानना चाहता हूँ॥

नारद उवाच

नित्यं निवसते लक्ष्मीः कन्यकासु प्रतिष्ठिता।
शोभना शुभयोग्या च पूज्या मङ्गलकर्मसु॥

नारदजीने कहा—कन्याओंमें सदा लक्ष्मी निवास करती हैं। वे उनमें नित्य प्रतिष्ठित होती हैं; इसलिये प्रत्येक कन्या शोभासम्पन्न, शुभ कर्मके योग्य तथा मंगल कर्मोंमें पूजनीय होती है॥

आकरस्थं यथा रत्नं सर्वकामफलोपगम्।
तथा कन्या महालक्ष्मीः सर्वलोकस्य मङ्गलम्॥

जैसे खानमें स्थित हुआ रत्न सम्पूर्ण कामनाओं एवं फलोंकी प्राप्ति करानेवाला होता है, उसी प्रकार महालक्ष्मीस्वरूपा कन्या सम्पूर्ण जगत्के लिये मंगल-कारिणी होती है॥

एवं कन्या परा लक्ष्मी रतिस्तोषश्च देहिनाम्।
महाकुलानां चारित्रं वृत्तेन निकषोपलम्॥

इस तरह कन्याको लक्ष्मीका सर्वोत्कृष्ट रूप जानना चाहिये। उससे देहधारियोंको सुख और संतोषकी प्राप्ति होती है। वह अपने सदाचारके द्वारा उच्च कुलोंके चरित्रकी कसौटी समझी जाती है॥

आनयित्वा स्वकाद् वर्णात् कन्यकां यो भजेन्नरः।
दातारं हव्यकव्यानां पुत्रकं या प्रसूयते॥

जो मनुष्य अपने ही वर्णकी कन्याको विवाहके द्वारा लाकर उसे पत्नीके स्थानपर प्रतिष्ठित करता है, उसकी वह साध्वी पत्नी हव्य-कव्य प्रदान करनेवाले पुत्रको जन्म देती है॥

साध्वी कुलं वर्धयति साध्वी पुष्टिर्गृहे परा।
साध्वी लक्ष्मी रतिः साक्षात् प्रतिष्ठा संततिस्तथा॥

साध्वी स्त्री कुलकी वृद्धि करती है। साध्वी स्त्री घरमें परम पुष्टिरूप है तथा साध्वी स्त्री घरकी लक्ष्मी है, रति है, मूर्तिमती प्रतिष्ठा है तथा संतान-परम्पराकी आधार है॥

मार्कण्डेय उवाच

कानि तीर्थानि भगवन् नृणां देहाश्रितानि वै।
तानि वै शंस भगवन् याथातथ्येन पृच्छतः॥

मार्कण्डेयजीने पूछा—भगवन्! मनुष्योंके शरीरमें कौन-कौन-से तीर्थ हैं? मैं यह जानना चाहता हूँ। अतः आप यथार्थरूपसे मुझे बताइये॥

नारद उवाच

देवर्षिपितृतीर्थानि ब्राह्मं मध्येऽथ वैष्णवम्।
नृणां तीर्थानि पञ्चाहुः पाणौ संनिहितानि वै॥

नारदजीने कहा—मनीषी पुरुष कहते हैं, मनुष्योंके हाथमें ही पाँच तीर्थ हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—देवतीर्थ, ऋषितीर्थ, पितृतीर्थ, ब्राह्मतीर्थ और वैष्णवतीर्थ। (अंगुलियोंके अग्रभागमें देवतीर्थ है। कनिष्ठा और अनामिका अंगुलिके मूलभागमें आर्षतीर्थ है। इसीको कायतीर्थ और प्राजापत्यतीर्थ भी कहते हैं। अंगुष्ठ और तर्जनीके मध्यभागमें पितृतीर्थ है। अंगुष्ठके मूलभागमें ब्राह्मतीर्थ है और हथेलीके मध्यभागमें वैष्णवतीर्थ है।)॥

आद्यतीर्थं तु तीर्थानां वैष्णवो भाग उच्यते।
यत्रोपस्पृश्य वर्णानां चतुर्णां वर्धते कुलम्॥
पितृदैवतकार्याणि वर्धन्ते प्रेत्य चेह च।

हाथमें जो वैष्णवतीर्थका भाग है, उसे सब तीर्थोंमें प्रधान कहा जाता है। जहाँ जल रखकर आचमन करनेसे चारों वर्णोंके कुलकी वृद्धि होती है, तथा देवता और पितरोंके कार्यकी इहलोक और परलोकमें वृद्धि होती है॥

मार्कण्डेय उवाच

धर्मेष्वधिकृतानां तु नराणां मुह्यते मनः।
कथं न विघ्नं भवति एतदिच्छामि वेदितुम्॥

मार्कण्डेयजीने पूछा—जो धर्मके अधिकारी हैं, ऐसे मनुष्योंका मन कभी-कभी धर्मके विषयमें संशयापन्न हो जाता है। क्या करनेसे उनके धर्माचरणमें विघ्न न पड़े? यह मैं जानना चाहता हूँ॥

नारद उवाच

अर्थाश्च नार्यश्च समानमेत-
च्छ्रेयांसि पुंसामिह मोहयन्ति।
रतिप्रमोदात् प्रमदा हरन्ति
भोगैर्धनं चाप्युपहन्ति धर्मान्॥

नारदजीने कहा—धन और नारी दोनोंकी अवस्था एक-सी है। दोनों ही मनुष्योंको कल्याणके पथपर जानेमें बाधा देते हैं—उन्हें मोहित कर लेते हैं। रतिजनित आमोद-प्रमोदसे स्त्रियाँ मनको हर लेती हैं और धन भोगोंके द्वारा धर्मको चौपट कर देता है॥

हव्यं कव्यं च धर्मात्मा सर्वं तच्छ्रोत्रियोऽर्हति।
दत्तं हि श्रोत्रिये साधौ ज्वलिताग्नाविवाहुतिः॥

धर्मात्मा श्रोत्रिय ब्राह्मण समस्त हव्य और कव्यको पानेका अधिकारी है। श्रेष्ठ श्रोत्रियको दिया हुआ हव्य-कव्य प्रज्वलित अग्निमें डाली हुई आहुतिके समान सफल होता है॥

भीष्म उवाच

इति सम्भाष्य ऋषिभिर्मार्कण्डेयो महातपाः।
नारदं चापि सत्कृत्य तेन चैवाभिसत्कृतः॥

भीष्मजी कहते हैं—इस प्रकार ऋषियोंके साथ बात-चीत करके महातपस्वी मार्कण्डेयने नारदजीका सत्कार किया और स्वयं भी वे उनके द्वारा सम्मानित हुए॥

आमन्त्रयित्वा ऋषिभिः प्रययावाश्रमं मुनिः।
ऋषयश्चापि तीर्थानां परिचर्यां प्रचक्रमुः॥)

तत्पश्चात् ऋषियोंसे विदा लेकर मार्कण्डेय मुनि अपने आश्रमको चले गये तथा वे ऋषि भी तीर्थोंमें भ्रमण करने लगे॥

[दाक्षिणात्य अध्याय समाप्त]

युधिष्ठिर उवाच

किमाहुर्भरतश्रेष्ठ पात्रं विप्राः सनातनाः।
ब्राह्मणं लिङ्गिनं चैव ब्राह्मणं वाप्यलिङ्गिनम्॥ १॥

युधिष्ठिरने पूछा—भरतश्रेष्ठ! प्राचीन ब्राह्मण किसको दानका श्रेष्ठ पात्र बताते हैं? दण्ड-कमण्डलु आदि चिह्न धारण करनेवाले ब्रह्मचारी ब्राह्मणको अथवा चिह्नरहित गृहस्थ ब्राह्मणको?॥ १॥

भीष्म उवाच

स्ववृत्तिमभिपन्नाय लिङ्गिने चेतराय च।
देयमाहुर्महाराज उभावेतौ तपस्विनौ॥ २॥

भीष्मजीने कहा—महाराज! जीवन-रक्षाके लिये अपनी वर्णाश्रमोचित वृत्तिका आश्रय लेनेवाले चिह्नधारी या चिह्नरहित किसी भी ब्राह्मणको दान दिया जाना उचित बताया गया है; क्योंकि स्वधर्मका आश्रय लेनेवाले ये दोनों ही तपस्वी एवं दानपात्र हैं॥ २॥

युधिष्ठिर उवाच

श्रद्धया परया पूतो यः प्रयच्छेद् द्विजातये।
हव्यं कव्यं तथा दानं को दोषः स्यात् पितामह॥ ३॥

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! जो केवल उत्कृष्ट श्रद्धासे ही पवित्र होकर ब्राह्मणको हव्य-कव्य तथा अन्य वस्तुका दान देता है, उसे अन्य प्रकारकी पवित्रता न होनेके कारण किस दोषकी प्राप्ति होती है?॥ ३॥

भीष्म उवाच

श्रद्धापूतो नरस्तात दुर्दान्तोऽपि न संशयः।
पूतो भवति सर्वत्र किमुत त्वं महाद्युते॥ ४॥

भीष्मजीने कहा—तात! मनुष्य जितेन्द्रिय न होनेपर भी केवल श्रद्धामात्रसे पवित्र हो जाता है—इसमें संशय नहीं है। महातेजस्वी नरेश! श्रद्धापूत मनुष्य सर्वत्र पवित्र होता है, फिर तुम-जैसे धर्मात्माके पवित्र होनेमें तो संदेह ही क्या है?॥ ४॥

युधिष्ठिर उवाच

न ब्राह्मणं परीक्षेत दैवेषु सततं नरः।
कव्यप्रदाने तु बुधाः परीक्ष्यं ब्राह्मणं विदुः॥ ५॥

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! विद्वानोंका कहना है कि देवकार्यमें कभी ब्राह्मणकी परीक्षा न करे, किंतु श्राद्धमें अवश्य उसकी परीक्षा करे; इसका क्या कारण है?॥ ५॥

भीष्म उवाच

न ब्राह्मणः साधयते हव्यं दैवात् प्रसिद्ध्यति।
देवप्रसादादिज्यन्ते यजमानैर्न संशयः॥ ६॥

भीष्मजीने कहा—बेटा! यज्ञ-होम आदि देवकार्यकी सिद्धि ब्राह्मणके अधीन नहीं है, वह दैवसे सिद्ध होता है। देवताओंकी कृपासे ही यजमान यज्ञ करते हैं। इसमें संशय नहीं है॥ ६॥

ब्राह्मणान् भरतश्रेष्ठ सततं ब्रह्मवादिनः।
मार्कण्डेयः पुरा प्राह इति लोकेषु बुद्धिमान्॥ ७॥

भरतश्रेष्ठ! बुद्धिमान् मार्कण्डेयजीने बहुत पहलेसे

ही यह बता रखा है कि श्राद्धमें सदा वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको ही निमन्त्रित करना चाहिये (क्योंकि उसकी सिद्धि सुपात्र ब्राह्मणके ही अधीन है)॥ ७॥

युधिष्ठिर उवाच

अपूर्वोऽप्यथवा विद्वान् सम्बन्धी वा यथा भवेत्।
तपस्वी यज्ञशीलो वा कथं पात्रं भवेत् तु सः॥ ८॥

युधिष्ठिरने पूछा—जो अपरिचित, विद्वान्, सम्बन्धी, तपस्वी अथवा यज्ञशील हों, इनमेंसे कौन किस प्रकारके गुणोंसे सम्पन्न होनेपर श्राद्ध एवं दानका उत्तम पात्र हो सकता है?॥ ८॥

भीष्म उवाच

कुलीनः कर्मकृद् वैद्यस्तथैवाप्यानृशंस्यवान्।
ह्रीमानृजुः सत्यवादी पात्रं पूर्वे च ये त्रयः॥ ९॥

भीष्मजीने कहा—कुलीन, कर्मठ, वेदोंके विद्वान्, दयालु, सलज्ज, सरल और सत्यवादी—इन सात प्रकारके गुणवाले जो पूर्वोक्त तीन (अपरिचित विद्वान्, सम्बन्धी और तपस्वी) ब्राह्मण हैं, वे उत्तम पात्र माने गये हैं॥ ९॥

तत्रेमं शृणु मे पार्थ चतुर्णां तेजसां मतम्।
पृथिव्याः काश्यपस्याग्नेर्मार्कण्डेयस्य चैव हि॥ १०॥

कुन्तीनन्दन! इस विषयमें तुम मुझसे पृथ्वी, काश्यप, अग्नि और मार्कण्डेय—इन चार तेजस्वी व्यक्तियोंका मत सुनो॥ १०॥

पृथिव्युवाच

यथा महार्णवे क्षिप्तः क्षिप्रं लेष्टुर्विनश्यति।
तथा दुश्चरितं सर्वं त्रिवृत्यां च निमज्जति॥ ११॥

पृथ्वी कहती है—जिस प्रकार महासागरमें फेंका हुआ ढेला तुरंत गलकर नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार याजन, अध्यापन और प्रतिग्रह—इन तीन वृत्तियोंसे जीविका चलानेवाले ब्राह्मणमें सारे दुष्कर्मोंका लय हो जाता है॥ ११॥

काश्यप उवाच

सर्वे च वेदाः सह षड्भिरङ्गैः
सांख्यं पुराणं च कुले च जन्म।
नैतानि सर्वाणि गतिर्भवन्ति
शीलव्यपेतस्य नृप द्विजस्य॥ १२॥

काश्यप कहते हैं—नरेश्वर! जो ब्राह्मण शीलसे रहित हैं, उसे छहों अंगोंसहित वेद, सांख्य और पुराणका ज्ञान तथा उत्तम कुलमें जन्म—ये सब मिलकर भी उत्तम गति नहीं प्रदान कर सकते॥ १२॥

अग्निरुवाच

अधीयानः पण्डितं मन्यमानो
यो विद्यया हन्ति यशः परेषाम्।
प्रभ्रश्यतेऽसौ चरते न सत्यं
लोकास्तस्य ह्यन्तवन्तो भवन्ति॥ १३॥

अग्नि कहते हैं—जो ब्राह्मण अध्ययन करके अपनेको बहुत बड़ा पण्डित मानता और अपनी विद्वत्तापर गर्व करने लगता है तथा जो अपनी विद्याके बलसे दूसरोंके यशका नाश करता है, वह धर्मसे भ्रष्ट होकर सत्यका पालन नहीं करता; अतः उसे नाशवान् लोकोंकी प्राप्ति होती है॥ १३॥

मार्कण्डेय उवाच

अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम्।
नाभिजानामि यद्यस्य सत्यस्यार्धमवाप्नुयात्॥ १४॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—यदि तराजूके एक पलड़ेमें एक हजार अश्वमेध-यज्ञको और दूसरेमें सत्यको रखकर तौला जाय तो भी न जाने वे सारे अश्वमेध-यज्ञ इस सत्यके आधेके बराबर भी होंगे या नहीं?॥ १४॥

भीष्म उवाच

इत्युक्त्वा ते जग्मुराशु चत्वारोऽमिततेजसः।
पृथिवी काश्यपोऽग्निश्च प्रकृष्टायुश्च भार्गवः॥ १५॥

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर! इस प्रकार अपना मत प्रकट करके वे चारों अमिततेजस्वी व्यक्ति—पृथ्वी, काश्यप, अग्नि और मार्कण्डेय शीघ्र ही चले गये॥ १५॥

युधिष्ठिर उवाच

यदि ते ब्राह्मणा लोके व्रतिनो भुञ्जते हविः।
दत्तं ब्राह्मणकामाय कथं तत् सुकृतं भवेत्॥ १६॥

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! यदि ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करनेवाले ब्राह्मण श्राद्धमें हविष्यान्नका भोजन करते हैं तो श्रेष्ठ ब्राह्मणकी कामनासे उन्हें दिया हुआ दान कैसे सफल हो सकता है?॥ १६॥

भीष्म उवाच

आदिष्टिनो ये राजेन्द्र ब्राह्मणा वेदपारगाः।
भुञ्जते ब्रह्मकामाय व्रतलुप्ता भवन्ति ते॥ १७॥

भीष्मजीने कहा—राजेन्द्र! (जिन्हें गुरुने नियत वर्षोंतक ब्रह्मचर्य-व्रत पालन करनेका आदेश दे रखा

है वे आदिष्टी कहलाते हैं।) ऐसे वेदके पारङ्गत आदिष्टी ब्राह्मण यदि यजमानकी ब्राह्मणको दान देनेकी इच्छापूर्तिके लिये श्राद्धमें भोजन करते हैं तो उनका अपना ही व्रत नष्ट हो जाता है (इससे दाताका दान दूषित नहीं होता है)*॥ १७॥

युधिष्ठिर उवाच

अनेकान्तं बहुद्वारं धर्ममाहुर्मनीषिणः।
किंनिमित्तं भवेदत्र तन्मे ब्रूहि पितामह॥ १८॥

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! विद्वानोंका कहना है कि धर्मके साधन और फल अनेक प्रकारके हैं। पात्रके कौन-से गुण उसकी दानपात्रतामें कारण होते हैं? यह मुझे बताइये॥ १८॥

भीष्म उवाच

अहिंसा सत्यमक्रोध आनृशंस्यं दमस्तथा।
आर्जवं चैव राजेन्द्र निश्चितं धर्मलक्षणम्॥ १९॥

भीष्मजीने कहा—राजेन्द्र! अहिंसा, सत्य, अक्रोध, कोमलता, इन्द्रियसंयम और सरलता—ये धर्मके निश्चित लक्षण हैं॥ १९॥

ये तु धर्मं प्रशंसन्तश्चरन्ति पृथिवीमिमाम्।
अनाचरन्तस्तद् धर्मं संकरेऽभिरताः प्रभो॥ २०॥

प्रभो! जो लोग इस पृथ्वीपर धर्मकी प्रशंसा करते हुए घूमते-फिरते हैं; परंतु स्वयं उस धर्मका आचरण नहीं करते, वे ढोंगी हैं और धर्मसंकरता फैलानेमें लगे हैं॥ २०॥

तेभ्यो हिरण्यं रत्नं वा गामश्वं वा ददाति यः।
दश वर्षाणि विष्ठां स भुङ्क्ते निरयमास्थितः॥ २१॥

ऐसे लोगोंको जो सुवर्ण, रत्न, गौ अथवा अश्व आदि वस्तुओंका दान करता है वह नरकमें पड़कर दस वर्षोंतक विष्ठा खाता है॥ २१॥

मेदानां पुल्कसानां च तथैवान्तेवसायिनाम्।
कृतं कर्माकृतं वापि रागमोहेन जल्पताम्॥ २२॥

जो उच्चवर्णके लोग राग और मोहके वशीभूत हो अपने किये अथवा बिना किये शुभ कर्मका जनसमुदायमें वर्णन करते हैं वे मेद, पुल्कस तथा अन्त्यजोंके तुल्य माने जाते हैं॥ २२॥

वैश्वदेवं च ये मूढा विप्राय ब्रह्मचारिणे।
ददते नेह राजेन्द्र ते लोकान् भुञ्जतेऽशुभान्॥ २३॥

राजेन्द्र! जो मूढ़ मानव ब्रह्मचारी ब्राह्मणको बलि-वैश्वदेवसम्बन्धी अन्न (अतिथियोंको देनेयोग्य हन्तकार) नहीं देते हैं, वे अशुभ लोकोंका उपभोग करते हैं॥ २३॥

युधिष्ठिर उवाच

किं परं ब्रह्मचर्यं च किं परं धर्मलक्षणम्।
किं च श्रेष्ठतमं शौचं तन्मे ब्रूहि पितामह॥ २४॥

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! उत्तम ब्रह्मचर्य क्या है? धर्मका सबसे श्रेष्ठ लक्षण क्या है? तथा सर्वोत्तम पवित्रता किसे कहते हैं? यह मुझे बताइये॥ २४॥

भीष्म उवाच

ब्रह्मचर्यात् परं तात मधुमांसस्य वर्जनम्।
मर्यादायां स्थितो धर्मः शमश्चैवास्य लक्षणम्॥ २५॥

भीष्मजीने कहा—तात! मांस और मदिराका त्याग ब्रह्मचर्यसे भी श्रेष्ठ है—वही उत्तम ब्रह्मचर्य है। वेदोक्त मर्यादामें स्थित रहना सबसे श्रेष्ठ धर्म है तथा मन और इन्द्रियोंको संयममें रखना ही सर्वोत्तम पवित्रता है॥ २५॥

युधिष्ठिर उवाच

कस्मिन् काले चरेद् धर्मं कस्मिन् कालेऽर्थमाचरेत्।
कस्मिन् काले सुखी च स्यात् तन्मे ब्रूहि पितामह॥ २६॥

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! मनुष्य किस

---

* श्राद्धमें भोजन करने योग्य ब्राह्मणोंके विषयमें स्मृतियोंमें इस प्रकार उल्लेख मिलता है—कर्मनिष्ठास्तपोनिष्ठाः पञ्चाग्निब्रह्मचारिणः। पितृमातृपराश्चैव ब्राह्मणाः श्राद्धसम्पदः॥ तथा—'व्रतस्थमपि दौहित्रं श्राद्धे यत्नेन भोजयेत्।' तात्पर्य यह है कि क्रियानिष्ठ, तपस्वी, पञ्चाग्निका सेवन करनेवाले, ब्रह्मचारी तथा पिता-माताके भक्त—ये पाँच प्रकारके ब्राह्मण श्राद्धकी सम्पत्ति हैं। इन्हें भोजन करानेसे श्राद्धकर्मका पूर्णतया सम्पादन होता है।' तथा 'अपनी कन्याका बेटा ब्रह्मचारी हो तो भी यत्नपूर्वक उसे श्राद्धमें भोजन कराना चाहिये।' ऐसा करनेसे श्राद्धकर्ता पुण्यका भागी होता है। केवल श्राद्धमें ही ऐसी छूट दी गयी है। श्राद्धके अतिरिक्त और किसी कर्ममें ब्रह्मचारीको लोभ आदि दिखाकर जो उसके व्रतको भंग करता है, उसे दोषका भागी होना पड़ता है और अपने किये हुए दानका भी पूरा-पूरा फल नहीं मिलता। इसीलिये शास्त्रमें लिखा है कि 'मनसा पात्रमुद्दिश्य जलमध्ये जलं क्षिपेत्। दाता तत्फलमाप्नोति प्रतिग्राही न दोषभाक्॥' अर्थात् 'यदि किसी सुपात्र (ब्रह्मचारी आदि)-को दान देना हो तो उसका मनमें ध्यान करे और उसे दान देनेके उद्देश्यसे हाथमें संकल्पका जल लेकर उसे जलहीमें छोड़ दे। इससे दाताको दानका फल मिल जाता है और दान लेनेवालेको दोषका भागी नहीं होना पड़ता।' यह बात सत्पात्रका आदर करनेके लिये बतायी गयी है। (नीलकण्ठी)

समय धर्मका आचरण करे? कब अर्थोपार्जनमें लगे तथा किस समय सुखभोगमें प्रवृत्त हो? यह मुझे बताइये॥

भीष्म उवाच

कल्यमर्थं निषेवेत ततो धर्ममनन्तरम्।
पश्चात् कामं निषेवेत न च गच्छेत् प्रसङ्गिताम्॥ २७॥

भीष्मजीने कहा—राजन्! पूर्वाह्णमें धनका उपार्जन करे, तदनन्तर धर्मका और उसके बाद कामका सेवन करे; परंतु काममें आसक्त न हो॥ २७॥

ब्राह्मणांश्चैव मन्येत गुरूंश्चाप्यभिपूजयेत्।
सर्वभूतानुलोमश्च मृदुशीलः प्रियंवदः॥ २८॥

ब्राह्मणोंका सम्मान करे। गुरुजनोंकी सेवा-पूजामें संलग्न रहे। सब प्राणियोंके अनुकूल रहे। नम्रताका बर्ताव करे और सबसे मीठे वचन बोले॥ २८॥

अधिकारे यदनृतं यच्च राजसु पैशुनम्।
गुरोश्चालीककरणं तुल्यं तद् ब्रह्महत्यया॥ २९॥

न्यायका अधिकार पाकर झूठा फैसला देना अथवा न्यायालयमें जाकर झूठ बोलना, राजाओंके पास किसीकी चुगली करना और गुरुके साथ कपटपूर्ण बर्ताव करना—ये तीन ब्रह्महत्याके समान पाप हैं॥ २९॥

प्रहरेन्न नरेन्द्रेषु न हन्याद् गां तथैव च।
भ्रूणहत्यासमं चैव उभयं यो निषेवते॥ ३०॥

राजाओंपर प्रहार न करे और गायको न मारे। जो राजा और गौपर प्रहाररूप द्विविध दुष्कर्मका सेवन करता है, उसे भ्रूणहत्याके समान पाप लगता है॥ ३०॥

नाग्निं परित्यजेज्जातु न च वेदान् परित्यजेत्।
न च ब्राह्मणमाक्रोशेत् समं तद् ब्रह्महत्यया॥ ३१॥

अग्निहोत्रका कभी त्याग न करे। वेदोंका स्वाध्याय न छोड़े तथा ब्राह्मणकी निन्दा न करे; क्योंकि ये तीनों दोष ब्रह्महत्याके समान हैं॥ ३१॥

युधिष्ठिर उवाच

कीदृशाः साधवो विप्राः केभ्यो दत्तं महाफलम्।
कीदृशानां च भोक्तव्यं तन्मे ब्रूहि पितामह॥ ३२॥

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! कैसे ब्राह्मणोंको श्रेष्ठ समझना चाहिये? किनको दिया हुआ दान महान् फल देनेवाला होता है? तथा कैसे ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये? यह मुझे बताइये॥ ३२॥

भीष्म उवाच

अक्रोधना धर्मपराः सत्यनित्या दमे रताः।
तादृशाः साधवो विप्रास्तेभ्यो दत्तं महाफलम्॥ ३३॥

भीष्मजीने कहा—राजन्! जो क्रोधरहित, धर्मपरायण, सत्यनिष्ठ और इन्द्रियसंयममें तत्पर हैं, ऐसे ब्राह्मणोंको श्रेष्ठ समझना चाहिये और उन्हींको दान देनेसे महान् फलकी प्राप्ति होती है (अतः उन्हींको श्राद्धमें भोजन कराना चाहिये)॥ ३३॥

अमानिनः सर्वसहा दृढार्था विजितेन्द्रियाः।
सर्वभूतहिता मैत्रास्तेभ्यो दत्तं महाफलम्॥ ३४॥

जिनमें अभिमानका नाम नहीं है, जो सब कुछ सह लेते हैं, जिनका विचार दृढ़ है, जो जितेन्द्रिय, सम्पूर्ण प्राणियोंके हितकारी तथा सबके प्रति मैत्रीभाव रखनेवाले हैं, उनको दिया हुआ दान महान् फल देनेवाला है॥

अलुब्धाः शुचयो वैद्या ह्रीमन्तः सत्यवादिनः।
स्वकर्मनिरता ये च तेभ्यो दत्तं महाफलम्॥ ३५॥

जो निर्लोभ, पवित्र, विद्वान्, संकोची, सत्यवादी और अपने कर्तव्यका पालन करनेवाले हैं, उनको दिया हुआ दान भी महान् फलदायक होता है॥ ३५॥

साङ्गांश्च चतुरो वेदानधीते यो द्विजर्षभः।
षड्भ्यः प्रवृत्तः कर्मभ्यस्तं पात्रमृषयो विदुः॥ ३६॥

जो श्रेष्ठ ब्राह्मण अंगोंसहित चारों वेदोंका अध्ययन करता और ब्राह्मणोचित छः कर्मों (अध्ययन-अध्यापन, यजन-याजन और दान-प्रतिग्रह) में प्रवृत्त रहता है, उसे ऋषिलोग दानका उत्तम पात्र समझते हैं॥ ३६॥

ये त्वेवंगुणजातीयास्तेभ्यो दत्तं महाफलम्।
सहस्रगुणमाप्नोति गुणार्हाय प्रदायकः॥ ३७॥

जो ब्राह्मण ऊपर बताये हुए गुणोंसे युक्त होते हैं, उन्हें दिया हुआ दान महान् फल देनेवाला है। गुणवान् एवं सुयोग्य पात्रको दान देनेवाला दाता सहस्रगुना फल पाता है॥

प्रज्ञाश्रुताभ्यां वृत्तेन शीलेन च समन्वितः।
तारयेत कुलं सर्वमेकोऽपीह द्विजर्षभः॥ ३८॥

यदि उत्तम बुद्धि, शास्त्रकी विद्वत्ता, सदाचार और सुशीलता आदि उत्तम गुणोंसे सम्पन्न एक श्रेष्ठ ब्राह्मण भी दान स्वीकार कर ले तो वह दाताके सम्पूर्ण कुलका उद्धार कर देता है॥ ३८॥

गामश्वं वित्तमन्नं वा तद्विधे प्रतिपादयेत्।
द्रव्याणि चान्यानि तथा प्रेत्यभावे न शोचति॥ ३९॥

अतः ऐसे गुणवान् पुरुषको ही गाय, घोड़ा, अन्न, धन तथा दूसरे पदार्थ देने चाहिये। ऐसा करनेसे दाताको मरनेके बाद पश्चात्ताप नहीं करना पड़ता॥ ३९॥

तारयेत कुलं सर्वमेकोऽपीह द्विजोत्तमः।
किमङ्ग पुनरेवैते तस्मात् पात्रं समाचरेत्॥ ४०॥
(तृप्ते तृप्ताः सर्व देवाः पितरो मुनयोऽपि च।)

एक भी ब्राह्मण श्राद्धमें श्राद्धकर्ताके सम्पन्न कुलको तार सकता है। यदि उपर्युक्त बहुत-से ब्राह्मण तार दें इसमें तो कहना ही क्या है। अतः सुयोग्यको निमन्त्रण करना चाहिये। उसके तृप्त होनेपर सम्पूर्ण देवता, पितर और ऋषि भी तृप्त हो जाते हैं॥ ४०॥

निशाम्य च गुणोपेतं ब्राह्मणं साधुसम्मतम्।
दूरादानाय्य सत्कृत्य सर्वलक्षणयाचिते पूजयेत्॥ ४१॥

सत्पुरुषोंद्वारा सम्मानित गुणवान् ब्राह्मण यदि कहीं दूर भी बुलाये जाये तो उसके लिये अपने यहाँ बुलाकर उसका इस प्रकारसे पूजन और सत्कार करना चाहिये॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि बहुप्राहिके द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत अनुशासनपर्वके अन्तर्गत दानधर्मपर्वमें बहुत-से प्रसंगोंका निर्णयविषयक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २२॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ४६ श्लोक मिलाकर कुल ८७ श्लोक हैं)

त्रयोविंशोऽध्यायः

देवता और पितरोंके कार्यमें निमन्त्रण देने योग्य पात्रों तथा नरकगामी और स्वर्गगामी मनुष्योंके लक्षणोंका वर्णन

युधिष्ठिर उवाच

आद्धकाले च दैवे च पित्र्येऽपि च पितामह।
इच्छामीह त्वयाऽऽख्यातं विधिं वत् सुरर्षिभिः॥ १॥

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! देवता और ऋषियोंने श्राद्धके समय देवकार्य तथा पितृकार्यमें जिस-जिस कर्मका विधान किया है, उसका वर्णन मैं आपके मुखसे सुनना चाहता हूँ॥ १॥

भीष्म उवाच

दैवं पौर्वाह्णिके कुर्यादपराह्णे तु पैतृकम्।
मङ्गलाचारसम्पन्नः कृताह्नीकः प्रयत्नवान्॥ २॥
मनुष्याणां तु मध्याह्ने प्रदद्यादुपपत्तिभिः।
कालहीनं तु यद् दानं तं भागं रक्षसां विदुः॥ ३॥

भीष्मजीने कहा—राजन्! मनुष्यको चाहिये कि वह स्नान आदिसे शुद्ध हो, मांगलिक कृत्य सम्पन्न करके प्रयत्नशील हो पूर्वाह्णमें देव-सम्बन्धी दान, अपराह्णमें पैतृक दान और मध्याह्नकालमें मनुष्य-सम्बन्धी दान आदरपूर्वक करे। असमयमें किया हुआ दान राक्षसोंका भाग माना गया है॥ २-३॥

सङ्कीर्णं चावलीढं च क्रीलिपूर्वं च यत् कृतम्।
राजस्वलाभिदृष्टं च तं भागं रक्षसां विदुः॥ ४॥

जिस भोज्य पदार्थको किसीने लाँघ दिया हो, चाट लिया हो, जो लड़ाई-झगड़ा करके तैयार किया गया हो तथा जिसपर रजस्वला स्त्रीकी दृष्टि पड़ी हो, उसे भी राक्षसोंका ही भाग जान गया है॥ ४॥

अवधूतं च यद् भुक्तमवटेन च भारत।
पतनदृष्टं शुना चैव तं भागं रक्षसां विदुः॥ ५॥

भरतनन्दन! जिसके लिये लोगोंमें घोषणा की गयी हो, जिसे अवहेलन मनुष्यने भोजन किया हो अथवा जो कुत्तेसे छू गया हो, वह अन्न भी राक्षसोंका ही भाग समझा गया है॥ ५॥

केशकीटावपन्नं च श्रुतं दुष्टैरवेक्षितम्।
कदिन्नं वाससूतं च तं भागं रक्षसां विदुः॥ ६॥

जिसमें केश या कीड़े पड़ गये हों, जो दोषोंसे दूषित हो गया हो, जिसपर कुत्तोंकी दृष्टि पड़ गयी हो तथा जो रोकर और तिरस्कारपूर्वक दिया गया हो, वह अन्न भी राक्षसोंका ही भाग माना गया है॥ ६॥

निरोङ्कारेण यद् भुक्तं सशस्त्रेण च भारत।
दुष्टामना च यद् भुक्तं तं भागं रक्षसां विदुः॥ ७॥

भरतनन्दन! जिस अन्नमेंसे पहले ऐसे व्यक्तिने खा लिया हो, जिसे खानेकी अनुमति नहीं दी गयी है अथवा जिसमेंसे पहले कुत्ता आदि वैदमन्योंके अनधिकारी जीव आदिने भोजन कर लिया हो अथवा किसी शस्त्रधारी या दुष्टहृदय पुरुषने जिसका उपयोग कर लिया हो, उस अन्नको भी राक्षसोंका ही भाग बताया गया है॥ ७॥

परोच्छिष्टं च यद् भुक्तं परिभुक्तं च यद् भवेत्।
दैवे पित्र्ये च सततं तं भागं रक्षसां विदुः॥ ८॥

जिसे दूसरोंने उच्छिष्ट कर दिया हो, जिसमेंसे किसीने भोजन कर लिया हो तथा जो देवता, पितर, अतिथि एवं बालक आदिको दिये बिना ही अपने उपभोगमें लाया गया हो, वह अन्न देवकर्म तथा पितृकर्ममें सदा राक्षसोंका ही भाग माना गया है॥ ८॥

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं यच्छ्राद्धं परिविष्यते।
त्रिभिर्वर्णैर्नरश्रेष्ठ तं भागं रक्षसां विदुः॥ ९॥

नरश्रेष्ठ! तीनों वर्णोंके लोग वैदिक मन्त्र एवं उसके विधि-विधानसे रहित जो श्राद्धका अन्न परोसते हैं, उसे राक्षसोंका ही भाग माना गया है॥ ९॥

आज्याहुतिं विना चैव यत्किंचित् परिविष्यते।
दुराचारैश्च यद् भुक्तं तं भागं रक्षसां विदुः॥ १०॥
ये भागा रक्षसां प्राप्तास्त उक्ता भरतर्षभ।

घीकी आहुति दिये बिना ही जो कुछ परोसा जाता है तथा जिसमेंसे पहले कुछ दुराचारी मनुष्योंको भोजन करा दिया गया हो, वह राक्षसोंका भाग माना गया है। भरतश्रेष्ठ! अन्नके जो भाग राक्षसोंको प्राप्त होते हैं, उनका वर्णन यहाँ किया गया॥ १०½॥

अत ऊर्ध्वं विसर्गस्य परीक्षां ब्राह्मणे शृणु॥ ११॥
यावन्तः पतिता विप्रा जडोन्मत्तास्तथैव च।
दैवे वाप्यथ पित्र्ये वा राजन् नार्हन्ति केतनम्॥ १२॥

अब दान और भोजनके लिये ब्राह्मणकी परीक्षा करनेके विषयमें जो बात बतायी जाती है, उसे सुनो। राजन्! जो ब्राह्मण पतित, जड या उन्मत्त हो गये हों वे देवकार्य या पितृकार्यमें निमन्त्रण पानेके योग्य नहीं हैं॥ ११-१२॥

श्वित्री क्लीबश्च कुष्ठी च तथा यक्ष्महतश्च यः।
अपस्मारी च यश्चान्धो राजन् नार्हन्ति केतनम्॥ १३॥

राजन्! जिसके शरीरमें सफेद दाग हो, जो कोढ़ी, नपुंसक, राजयक्ष्मासे पीड़ित, मृगीका रोगी और अन्धा हो, ऐसे लोग श्राद्धमें निमन्त्रण पानेके अधिकारी नहीं हैं॥ १३॥

चिकित्सका देवलका वृथा नियमधारिणः।
सोमविक्रयिणश्चैव राजन् नार्हन्ति केतनम्॥ १४॥

नरेश्वर! चिकित्सक या वैद्य, देवालयके पुजारी, पाखण्डी और सोमरस बेचनेवाले ब्राह्मण निमन्त्रण देने योग्य नहीं हैं॥ १४॥

गायना नर्तकाश्चैव प्लवका वादकास्तथा।
कथका योधकाश्चैव राजन् नार्हन्ति केतनम्॥ १५॥

राजन्! जो गाते-बजाते, नाचते, खेल-कूदकर तमाशा दिखाते, व्यर्थकी बातें बनाते और पहलवानी करते हैं, वे भी निमन्त्रण पानेके अधिकारी नहीं हैं॥

होतारो वृषलानां च वृषलाध्यापकास्तथा।
तथा वृषलशिष्याश्च राजन् नार्हन्ति केतनम्॥ १६॥

नरेश्वर! जो शूद्रोंका यज्ञ कराते, उनको पढ़ाते अथवा स्वयं उनके शिष्य बनकर उनसे शिक्षा लेते या उनकी दासता करते हैं, वे भी निमन्त्रण देने योग्य नहीं हैं॥ १६॥

अनुयोक्ता च यो विप्रो अनुयुक्तश्च भारत।
नार्हतस्तावपि श्राद्धं ब्रह्मविक्रयिणौ हि तौ॥ १७॥

भरतनन्दन! जो ब्राह्मण वेतन लेकर पढ़ाता है और वेतन देकर पढ़ता है, वे दोनों ही वेदको बेचनेवाले हैं; अतः वे श्राद्धमें सम्मिलित करनेयोग्य नहीं हैं॥ १७॥

अग्रणीर्यः कृतः पूर्वं वर्णावरपरिग्रहः।
ब्राह्मणः सर्वविद्योऽपि राजन् नार्हति केतनम्॥ १८॥

राजन्! जो ब्राह्मण पहले समाजका अगुआ रहा हो और पीछे उसने शूद्र-स्त्रीसे विवाह कर लिया हो, वह ब्राह्मण सम्पूर्ण विद्याओंका ज्ञाता होनेपर भी श्राद्धमें बुलाने योग्य नहीं है॥ १८॥

अनग्नयश्च ये विप्रा मृतनिर्यातकाश्च ये।
स्तेनाश्च पतिताश्चैव राजन् नार्हन्ति केतनम्॥ १९॥

नरेश्वर! जो ब्राह्मण अग्निहोत्र नहीं करते, जो मुर्दा ढोते, चोरी करते और जो पापोंके कारण पतित हो गये हैं, वे भी श्राद्धमें बुलाने योग्य नहीं हैं॥ १९॥

अपरिज्ञातपूर्वाश्च गणपूर्वाश्च भारत।
पुत्रिकापूर्वपुत्राश्च श्राद्धे नार्हन्ति केतनम्॥ २०॥

भारत! जिनके विषयमें पहलेसे कुछ ज्ञात न हो, जो गाँवके अगुआ हों तथा पुत्रिका*-धर्मके अनुसार व्याही गयी स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न होकर नानाके घरमें निवास करते हों, ऐसे ब्राह्मण भी श्राद्धमें निमन्त्रण पानेके अधिकारी नहीं हैं॥ २०॥

ऋणकर्ता च यो राजन् यश्च वार्धुषिको नरः।
प्राणिविक्रयवृत्तिश्च राजन् नार्हन्ति केतनम्॥ २१॥

राजन्! जो ब्राह्मण रुपया-पैसा बढ़ानेके लिये लोगोंको ब्याजपर ऋण देता हो अथवा जो सस्ता अन्न खरीदकर उसे मँहगे भावपर बेचता और उसका मुनाफा खाता हो अथवा प्राणियोंके क्रय-विक्रयसे जीविका

* जब कोई अपनी कन्याको इस शर्तपर ब्याहता है कि 'इससे जो पहला पुत्र होगा, उसे मैं गोद ले लूँगा और अपना पुत्र मानूँगा' तो उसे 'पुत्रिकाधर्मके अनुसार विवाह' कहते हैं। इस नियमसे प्राप्त होनेवाला पुत्र श्राद्धका अधिकारी नहीं है।

चलाता हो, ऐसे ब्राह्मण श्राद्धमें बुलाने योग्य नहीं हैं॥

स्त्रीपूर्वाः काण्डपृष्ठाश्च यावन्तो भरतर्षभ।
अजपा ब्राह्मणाश्चैव श्राद्धे नार्हन्ति केतनम्॥ २२॥

जो स्त्रीकी कमाई खाते हों, वेश्याके पति हों और गायत्री-जप एवं संध्या-वन्दनसे हीन हों, ऐसे ब्राह्मण भी श्राद्धमें सम्मिलित होने योग्य नहीं हैं॥ २२॥

श्राद्धे दैवे च निर्दिष्टो ब्राह्मणो भरतर्षभ।
दातुः प्रतिग्रहीतुश्च शृणुष्वानुग्रहं पुनः॥ २३॥

भरतश्रेष्ठ! देवयज्ञ और श्राद्धकर्ममें वर्जित ब्राह्मणका निर्देश किया गया। अब दान देने और लेनेवाले ऐसे पुरुषोंका वर्णन करता हूँ जो श्राद्धमें निषिद्ध होनेपर भी किसी विशेष गुणके कारण अनुग्रहपूर्वक ग्राह्य माने गये हैं। उनके विषयमें सुनो॥ २३॥

चीर्णव्रता गुणैर्युक्ता भवेयुर्येऽपि कर्षकाः।
सावित्रीज्ञाः क्रियावन्तस्ते राजन् केतनक्षमाः॥ २४॥

राजन्! जो ब्राह्मण व्रतका पालन करनेवाले, सद्गुण-सम्पन्न, क्रियानिष्ठ और गायत्रीमन्त्रके ज्ञाता हों, वे खेती करनेवाले होनेपर भी उन्हें श्राद्धमें निमन्त्रण दिया जा सकता है॥ २४॥

क्षात्रधर्मिणमप्याजौ केतयेत् कुलजं द्विजम्।
न त्वेव वणिजं तात श्राद्धे च परिकल्पयेत्॥ २५॥

तात! जो कुलीन ब्राह्मण युद्धमें क्षत्रियधर्मका पालन करता हो, उसे भी श्राद्धमें निमन्त्रित करना चाहिये; परंतु जो वाणिज्य करता हो उसे कभी श्राद्धमें सम्मिलित न करें॥ २५॥

अग्निहोत्री च यो विप्रो ग्रामवासी च यो भवेत्।
अस्तेनश्चातिथिज्ञश्च स राजन् केतनक्षमः॥ २६॥

राजन्! जो ब्राह्मण अग्निहोत्री हो, अपने ही गाँवका निवासी हो, चोरी न करता हो और अतिथिसत्कारमें प्रवीण हो, उसे भी निमन्त्रण दिया जा सकता है॥ २६॥

सावित्रीं जपते यस्तु त्रिकालं भरतर्षभ।
भिक्षावृत्तिः क्रियावांश्च स राजन् केतनक्षमः॥ २७॥

भरतभूषण नरेश! जो तीनों समय गायत्री-मन्त्रका जप करता है, भिक्षासे जीविका चलाता है और क्रियानिष्ठ है, वह श्राद्धमें निमन्त्रण पानेका अधिकारी है॥ २७॥

उदितास्तमितो यश्च तथैवास्तमितोदितः।
अहिंस्त्रश्चाल्पदोषश्च स राजन् केतनक्षमः॥ २८॥

राजन्! जो ब्राह्मण उन्नत होकर तत्काल ही अवनत और अवनत होकर उन्नत हो जाता है एवं किसी जीवकी हिंसा नहीं करता है, वह थोड़ा दोषी हो तो भी उसे श्राद्धमें निमन्त्रण देना उचित है॥ २८॥

अकल्कको ह्यतर्कश्च ब्राह्मणो भरतर्षभ।
संसर्गे भैक्ष्यवृत्तिश्च स राजन् केतनक्षमः॥ २९॥

भरतश्रेष्ठ! जो दम्भरहित, व्यर्थ तर्क-वितर्क न करनेवाला तथा सम्पर्क स्थापित करनेके योग्य घरसे भिक्षा लेकर जीवन-निर्वाह करनेवाला है, वह ब्राह्मण निमन्त्रण पानेका अधिकारी है॥ २९॥

अव्रती कितवः स्तेनः प्राणिविक्रयिको वणिक्।
पश्चाच्च पीतवान् सोमं स राजन् केतनक्षमः॥ ३०॥

राजन्! जो व्रतहीन, धूर्त, चोर, प्राणियोंका क्रय-विक्रय करनेवाला तथा वणिक्-वृत्तिसे जीविका चलानेवाला होकर भी पीछे यज्ञका अनुष्ठान करके उसमें सोमरसका पान कर चुका है, वह भी निमन्त्रण पानेका अधिकारी है॥ ३०॥

अर्जयित्वा धनं पूर्वं दारुणैरपि कर्मभिः।
भवेत् सर्वातिथिः पश्चात् स राजन् केतनक्षमः॥ ३१॥

नरेश्वर! जो पहले कठोर कर्मोंद्वारा भी धनका उपार्जन करके पीछे सब प्रकारसे अतिथियोंका सेवक हो जाता है, वह श्राद्धमें बुलाने योग्य है॥ ३१॥

ब्रह्मविक्रयनिर्दिष्टं स्त्रिया यच्चार्जितं धनम्।
अदेयं पितृविप्रेभ्यो यच्च क्लैब्यादुपार्जितम्॥ ३२॥

जो धन वेद बेचकर लाया गया हो या स्त्रीकी कमाईसे प्राप्त हुआ हो अथवा लोगोंके सामने दीनता दिखाकर माँग लाया गया हो, वह श्राद्धमें ब्राह्मणोंको देने योग्य नहीं है॥ ३२॥

क्रियमाणेऽपवर्गे च यो द्विजो भरतर्षभ।
न व्याहरति यद्युक्तं तस्याधर्मो गवानृतम्॥ ३३॥

भरतश्रेष्ठ! जो ब्राह्मण श्राद्धकी समाप्ति होनेपर '**अस्तु स्वधा**' आदि तत्कालोचित वचनोंका प्रयोग नहीं करता है, उसे गायकी झूठी शपथ खानेका पाप लगता है॥

श्राद्धस्य ब्राह्मणः कालः प्राप्तं दधि घृतं तथा।
सोमक्षयश्च मांसं च यदारण्यं युधिष्ठिर॥ ३४॥

युधिष्ठिर! जिस दिन भी सुपात्र ब्राह्मण, दही, घी, अमावास्या तिथि तथा जंगली कन्द, मूल और फलोंका गूदा प्राप्त हो जाय, वही श्राद्धका उत्तम काल है॥ ३४॥

(मुहूर्तानां त्रयं पूर्वमह्नः प्रातरिति स्मृतम्।
जपध्यानादिभिस्तस्मिन् विप्रैः कार्यं शुभव्रतम्॥

दिनका प्रथम तीन मुहूर्त प्रातःकाल कहलाता है। उसमें ब्राह्मणोंको जप और ध्यान आदिके द्वारा अपने लिये कल्याणकारी व्रत आदिका पालन करना चाहिये॥

सङ्गवाख्यं त्रिभागं तु मध्याह्नस्त्रिमुहूर्तकः।
लौकिकं सङ्गवेऽर्थ्यं च स्नानादि ह्यथ मध्यमे॥

उसके बादका तीन मुहूर्त सङ्गव कहलाता है तथा सङ्गवके बादका तीन मुहूर्त मध्याह्न कहलाता है। सङ्गव कालमें लौकिक कार्य देखना चाहिये और मध्याह्नकालमें स्नान-संध्यावन्दन आदि करना उचित है॥

चतुर्थमपराह्णं तु त्रिमुहूर्तं तु पित्र्यकम्।
सायाह्नस्त्रिमुहूर्तं च मध्यमं कविभिः स्मृतम्॥)

मध्याह्नके बादका तीन मुहूर्त अपराह्न कहलाता है। यह दिनका चौथा भाग पितृकार्यके लिये उपयोगी है। उसके बादका तीन मुहूर्त सायाह्न कहा गया है। इसे विद्वानोंने दिन और रातके बीचका समय माना है॥

श्राद्धापवर्गे विप्रस्य स्वधा वै मुदिता भवेत्।
क्षत्रियस्यापि यो ब्रूयात् प्रीयन्तां पितरस्त्विति॥ ३५॥

ब्राह्मणके यहाँ श्राद्ध समाप्त होनेपर '**स्वधा सम्पद्यताम्**' इस वाक्यका उच्चारण करनेपर पितरोंको प्रसन्नता होती है। क्षत्रियके यहाँ श्राद्धकी समाप्तिमें '**पितरः प्रीयन्ताम्**' (पितर तृप्त हो जायँ) इस वाक्यका उच्चारण करना चाहिये॥ ३५॥

अपवर्गे तु वैश्यस्य श्राद्धकर्मणि भारत।
अक्षय्यमभिधातव्यं स्वस्ति शूद्रस्य भारत॥ ३६॥

भारत! वैश्यके घर श्राद्धकर्मकी समाप्तिपर '**अक्षय्यमस्तु**' (श्राद्धका दान अक्षय हो) कहना चाहिये और शूद्रके श्राद्धकी समाप्तिके अवसरपर '**स्वस्ति**' (कल्याण हो) इस वाक्यका उच्चारण करना उचित है॥ ३६॥

पुण्याहवाचनं दैवं ब्राह्मणस्य विधीयते।
एतदेव निरोङ्कारं क्षत्रियस्य विधीयते॥ ३७॥

इसी तरह जब ब्राह्मणके यहाँ देवकार्य होता हो, तब उसमें ॐकारसहित पुण्याहवाचनका विधान है (अर्थात् '**पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्तु**—आपलोग पुण्याहवाचन करें' ऐसा यजमानके कहनेपर ब्राह्मणोंको '**ॐ पुण्याहम् ॐ पुण्याहम्**' इस प्रकार कहना चाहिये)। यही वाक्य क्षत्रियके यहाँ बिना ॐकारके उच्चारण करना चाहिये॥

वैश्यस्य दैवे वक्तव्यं प्रीयन्तां देवता इति।
कर्मणामानुपूर्व्येण विधिपूर्वं कृतं शृणु॥ ३८॥

वैश्यके घर देवकर्ममें '**प्रीयन्तां देवताः**' इस वाक्यका उच्चारण करना चाहिये। अब क्रमशः तीनों वर्णोंके कर्मानुष्ठानकी विधि सुनो॥ ३८॥

जातकर्मादिकाः सर्वास्त्रिषु वर्णेषु भारत।
ब्रह्मक्षत्रे हि मन्त्रोक्ता वैश्यस्य च युधिष्ठिर॥ ३९॥

भरतवंशी युधिष्ठिर! तीनों वर्णोंमें जातकर्म आदि समस्त संस्कारोंका विधान है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनोंके सभी संस्कार वेद-मन्त्रोंके उच्चारण-पूर्वक होने चाहिये॥ ३९॥

विप्रस्य रशना मौञ्जी मौर्वी राजन्यगामिनी।
बाल्वजी ह्येव वैश्यस्य धर्म एष युधिष्ठिर॥ ४०॥

युधिष्ठिर! उपनयनके समय ब्राह्मणको मूँजकी, क्षत्रियको प्रत्यञ्चाकी और वैश्यको शणकी मेखला धारण करनी चाहिये। यही धर्म है॥ ४०॥

(पालाशो द्विजदण्डः स्यादश्वत्थः क्षत्रियस्य तु।
औदुम्बरश्च वैश्यस्य धर्म एष युधिष्ठिर॥)

ब्राह्मणका दण्ड पलाशका, क्षत्रियके लिये पीपलका और वैश्यके लिये गूलरका होना चाहिये। युधिष्ठिर! ऐसा ही धर्म है॥

दातुः प्रतिग्रहीतुश्च धर्माधर्माविमौ शृणु।
ब्राह्मणस्यानृतेऽधर्मः प्रोक्तः पातकसंज्ञितः।
चतुर्गुणः क्षत्रियस्य वैश्यस्याष्टगुणः स्मृतः॥ ४१॥

अब दान देने और दान लेनेवालेके धर्माधर्मका वर्णन सुनो। ब्राह्मणको झूठ बोलनेसे जो अधर्म या पातक बताया गया है उससे चौगुना क्षत्रियको और आठगुना वैश्यको लगता है॥ ४१॥

नान्यत्र ब्राह्मणोऽश्नीयात् पूर्वं विप्रेण केतितः।
यवीयान् पशुहिंसायां तुल्यधर्मो भवेत् स हि॥ ४२॥

यदि किसी ब्राह्मणने पहलेसे ही श्राद्धका निमन्त्रण दे रखा हो तो निमन्त्रित ब्राह्मणको दूसरी जगह जाकर भोजन नहीं करना चाहिये। यदि वह करता है तो छोटा समझा जाता है और उसे पशुहिंसाके समान पाप लगता है॥ ४२॥

तथा राजन्यवैश्याभ्यां यद्यश्नीयात्तु केतितः।
यवीयान् पशुहिंसायां भागार्धं समवाप्नुयात्॥ ४३॥

यदि उसे क्षत्रिय या वैश्यने पहलेसे निमन्त्रण दे रखा हो और वह कहीं अन्यत्र जाकर भोजन कर ले तो छोटा समझे जानेके साथ ही वह पशुहिंसाके आधे पापका भागी होता है॥ ४३॥

दैवं वाप्यथवा पित्र्यं योऽश्नीयाद् ब्राह्मणादिषु।
अस्नातो ब्राह्मणो राजंस्तस्याधर्मो गवानृतम्॥ ४४॥

नरेश्वर! जो ब्राह्मण ब्राह्मणादि तीनों वर्णोंके यहाँ देवयज्ञ अथवा श्राद्धमें स्नान किये बिना ही भोजन करता है, उसे गौकी झूठी शपथ खानेके समान पाप लगता है॥ ४४॥

आशौचो ब्राह्मणो राजन् योऽश्नीयाद् ब्राह्मणादिषु।
ज्ञानपूर्वमथो लोभात् तस्याधर्मो गवानृतम्॥ ४५॥

राजन्! जो ब्राह्मण अपने घरमें अशौच रहते हुए भी लोभवश जान-बूझकर दूसरे ब्राह्मण आदिके यहाँ श्राद्धका अन्न ग्रहण करता है उसे भी गौकी झूठी शपथ खानेका पाप लगता है॥ ४५॥

अर्थेनान्येन यो लिप्सेत् कर्मार्थं चैव भारत।
आमन्त्रयति राजेन्द्र तस्याधर्मोऽनृतं स्मृतम्॥ ४६॥

भरतनन्दन! राजेन्द्र! जो तीर्थयात्रा आदि दूसरा प्रयोजन बताकर उसीके बहाने अपनी जीविकाके लिये धन माँगता है अथवा 'मुझे अमुक (यज्ञादि) कर्म करनेके लिये धन दीजिये' ऐसा कहकर जो दाताको अपनी ओर अभिमुख करता है उसके लिये भी वही झूठी शपथ खानेका पाप बताया गया है॥ ४६॥

अवेदव्रतचारित्रास्त्रिभिर्वर्णैर्युधिष्ठिर ।
मन्त्रवत्परिविष्यन्ते तस्याधर्मो गवानृतम्॥ ४७॥

युधिष्ठिर! जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वेदव्रतका पालन न करनेवाले ब्राह्मणोंको श्राद्धमें मन्त्रोच्चारणपूर्वक अन्न परोसते हैं, उन्हें भी गायकी झूठी शपथ खानेका पाप लगता है॥ ४७॥

युधिष्ठिर उवाच

पित्र्यं वाप्यथवा दैवं दीयते यत् पितामह।
एतदिच्छाम्यहं ज्ञातुं दत्तं केषु महाफलम्॥ ४८॥

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! देवयज्ञ अथवा श्राद्ध-कर्ममें जो दान दिया जाता है, वह कैसे पुरुषोंको देनेसे महान् फलकी प्राप्ति करानेवाला होता है? मैं इस बातको जानना चाहता हूँ॥ ४८॥

भीष्म उवाच

येषां दाराः प्रतीक्षन्ते सुवृष्टिमिव कर्षकाः।
उच्छेषपरिशेषं हि तान् भोजय युधिष्ठिर॥ ४९॥

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! जैसे किसान वर्षाकी बाट जोहता रहता है, उसी प्रकार जिनके घरोंकी स्त्रियाँ अपने स्वामीके खा लेनेपर बचे हुए अन्नकी प्रतीक्षा करती रहती हैं (अर्थात् जिनके घरमें बनी हुई रसोईके सिवा और कोई अन्नका संग्रह न हो), उन निर्धन ब्राह्मणोंको तुम अवश्य भोजन कराओ॥ ४९॥

चारित्रनिरता राजन् ये कृशाः कृशवृत्तयः।
अर्थिनश्चोपगच्छन्ति तेषु दत्तं महाफलम्॥ ५०॥

राजन्! जो सदाचारपरायण हों, जिनकी जीविकाका साधन नष्ट हो गया हो और इसीलिये भोजन न मिलनेके कारण जो अत्यन्त दुर्बल हो गये हों, ऐसे लोग यदि याचक होकर दाताके पास आते हैं तो उन्हें दिया हुआ दान महान् फलकी प्राप्ति करानेवाला होता है॥ ५०॥

तद्भक्तास्तद्गृहा राजंस्तद्बलास्तदपाश्रयाः।
अर्थिनश्च भवन्त्यर्थे तेषु दत्तं महाफलम्॥ ५१॥

नरेश्वर! जो सदाचारके ही भक्त हैं, जिनके घरमें सदाचारका ही पालन होता है, जिन्हें सदाचारका ही बल है तथा जिन्होंने सदाचारका ही आश्रय ले रखा है, वे यदि आवश्यकता पड़नेपर याचना करते हैं तो उनको दिया हुआ दान महान् फलकी प्राप्ति करानेवाला होता है॥ ५१॥

तस्करेभ्यः परेभ्यो वा ये भयार्ता युधिष्ठिर।
अर्थिनो भोक्तुमिच्छन्ति तेषु दत्तं महाफलम्॥ ५२॥

युधिष्ठिर! चोरों और शत्रुओंके भयसे पीड़ित होकर आये हुए जो याचक केवल भोजन चाहते हैं उन्हें दिया हुआ दान महान् फलकी प्राप्ति करानेवाला होता है॥ ५२॥

अकल्ककस्य विप्रस्य रौक्ष्यात् करकृतात्मनः।
वटवो यस्य भिक्षन्ति तेभ्यो दत्तं महाफलम्॥ ५३॥

जिसके मनमें किसी तरहका कपट नहीं है, अत्यन्त दरिद्रताके कारण जिसके हाथमें अन्न आते ही उसके भूखे बच्चे 'मुझे दो,' मुझे दो' ऐसा कहकर माँगने लगते हैं; ऐसे निर्धन ब्राह्मण और उसके उन बच्चोंको दिया हुआ दान महान् फलदायक होता है॥ ५३॥

हृतस्वा हृतदाराश्च ये विप्रा देशसम्प्लवे।
अर्थार्थमभिगच्छन्ति तेभ्यो दत्तं महाफलम्॥ ५४॥

देशमें विप्लव होनेके समय जिनके धन और स्त्रियाँ छिन गयी हों; वे ब्राह्मण यदि धनकी याचनाके लिये आयें तो उन्हें दिया हुआ दान महान् फलदायक होता है॥ ५४॥

व्रतिनो नियमस्थाश्च ये विप्राः श्रुतसम्मताः।
तत्समाप्त्यर्थमिच्छन्ति तेभ्यो दत्तं महाफलम्॥ ५५॥

जो व्रत और नियममें लगे हुए ब्राह्मण वेद-शास्त्रोंकी सम्मतिके अनुसार चलते हैं और अपने व्रतकी समाप्तिके लिये धन चाहते हैं, उन्हें देनेसे महान् फलकी प्राप्ति होती है॥ ५५॥

अत्युक्रान्ताश्च धर्मेषु पाषण्डसमयेषु च।
कृशप्राणाः कृशधनास्तेभ्यो दत्तं महाफलम्॥ ५६॥

जो पाखण्डियोंके धर्मसे दूर रहते हैं, जिनके

पास धनका अभाव है तथा जो अन्न न मिलनेके कारण दुर्बल हो गये हैं, उनको दिया हुआ दान महान् फलदायक होता है॥ ५६॥

(व्रतानां पारणार्थाय गुर्वर्थे यज्ञदक्षिणाम्।
निवेशार्थं च विद्वांसस्तेषां दत्तं महाफलम्॥

जो विद्वान् पुरुष व्रतोंका पारण, गुरुदक्षिणा, यज्ञदक्षिणा तथा विवाहके लिये धन चाहते हों, उन्हें दिया हुआ दान महान् फलदायक होता है॥

पित्रोश्च रक्षणार्थाय पुत्रदारार्थमेव वा।
महाव्याधिविमोक्षाय तेषु दत्तं महाफलम्॥

जो माता-पिताकी रक्षाके लिये, स्त्री-पुत्रोंके पालन तथा महान् रोगोंसे छुटकारा पानेके लिये धन चाहते हैं, उन्हें दिया हुआ दान महान् फलदायक होता है॥

बालाः स्त्रियश्च वाञ्छन्ति सुभक्तं चाप्यसाधनाः।
स्वर्गमायान्ति दत्त्वैषां निरयान् नोपयान्ति ते॥)

जो बालक और स्त्रियाँ सब प्रकारके साधनोंसे रहित होनेके कारण केवल भोजन चाहती हैं, उन्हें भोजन देकर दाता स्वर्गमें जाते हैं। वे नरकमें नहीं पड़ते हैं॥

कृतसर्वस्वहरणा निर्दोषाः प्रभविष्णुभिः।
स्पृहयन्ति च भुक्त्वान्नं तेषु दत्तं महाफलम्॥ ५७॥

प्रभावशाली डाकुओंने जिन निर्दोष मनुष्योंका सर्वस्व छीन लिया हो, अतः जो खानेके लिये अन्न चाहते हों, उन्हें दिया हुआ दान महान् फलदायक होता है॥ ५७॥

तपस्विनस्तपोनिष्ठास्तेषां भैक्षचराश्च ये।
अर्थिनः किञ्चिदिच्छन्ति तेषु दत्तं महाफलम्॥ ५८॥

जो तपस्वी और तपोनिष्ठ हैं तथा तपस्वी जनोंके लिये ही भीख माँगते हैं, ऐसे याचक यदि कुछ चाहते हैं तो उन्हें दिया हुआ दान महान् फलदायक होता है॥ ५८॥

महाफलविधिर्दाने श्रुतस्ते भरतर्षभ।
निरयं येन गच्छन्ति स्वर्गं चैव हि तत् शृणु॥ ५९॥

भरतश्रेष्ठ! किनको दान देनेसे महान् फलकी प्राप्ति होती है, यह विषय मैंने तुम्हें सुना दिया। अब जिन कर्मोंसे मनुष्य नरक या स्वर्गमें जाते हैं, उन्हें सुनो॥ ५९॥

गुर्वर्थमभयार्थं वा वर्जयित्वा युधिष्ठिर।
येऽनृतं कथयन्ति स्म ते वै निरयगामिनः॥ ६०॥

युधिष्ठिर! गुरुकी भलाईके लिये तथा दूसरेको भयसे मुक्त करनेके लिये जो झूठ बोलनेका अवसर आता है, उसे छोड़कर अन्यत्र जो झूठ बोलते हैं वे मनुष्य निश्चय ही नरकगामी होते हैं॥ ६०॥

परदाराभिहर्तारः परदाराभिमर्शिनः।
परदारप्रयोक्तारस्ते वै निरयगामिनः॥ ६१॥

जो दूसरोंकी स्त्री चुरानेवाले, परायी स्त्रीका सतीत्व नष्ट करनेवाले तथा दूत बनकर परस्त्रीको दूसरोंसे मिलानेवाले हैं, वे निश्चय ही नरकगामी होते हैं॥ ६१॥

ये परस्वापहर्तारः परस्वानां च नाशकाः।
सूचकाश्च परेषां ये ते वै निरयगामिनः॥ ६२॥

जो दूसरोंके धनको हड़पनेवाले और नष्ट करनेवाले हैं तथा दूसरोंकी चुगली खानेवाले हैं, उन्हें निश्चय ही नरकमें गिरना पड़ता है॥ ६२॥

प्रपाणां च सभानां च संक्रमाणां च भारत।
अगाराणां च भेत्तारो नरा निरयगामिनः॥ ६३॥

भरतनन्दन! जो पौंसलों, सभाओं, पुलों और किसीके घरोंको नष्ट करनेवाले हैं, वे मनुष्य निश्चय ही नरकमें पड़ते हैं॥ ६३॥

अनाथां प्रमदां बालां वृद्धां भीतां तपस्विनीम्।
वञ्चयन्ति नरा ये च ते वै निरयगामिनः॥ ६४॥

जो लोग अनाथ, बूढ़ी, तरुणी, बालिका, भयभीत और तपस्विनी स्त्रियोंको धोखेमें डालते हैं, वे निश्चय ही नरकगामी होते हैं॥ ६४॥

वृत्तिच्छेदं गृहच्छेदं दारच्छेदं च भारत।
मित्रच्छेदं तथाऽऽशायास्ते वै निरयगामिनः॥ ६५॥

भरतनन्दन! जो दूसरोंकी जीविका नष्ट करते, घर उजाड़ते, पति-पत्नीमें विछोह डालते, मित्रोंमें विरोध पैदा करते और किसीकी आशा भङ्ग करते हैं, वे निश्चय ही नरकमें जाते हैं॥ ६५॥

सूचकाः सेतुभेत्तारः परवृत्त्युपजीवकाः।
अकृतज्ञाश्च मित्राणां ते वै निरयगामिनः॥ ६६॥

जो चुगली खानेवाले, कुल या धर्मकी मर्यादा नष्ट करनेवाले, दूसरोंकी जीविकापर गुजारा करनेवाले तथा मित्रोंद्वारा किये गये उपकारको भुला देनेवाले हैं, वे निश्चय ही नरकमें पड़ते हैं॥ ६६॥

पाषण्डा दूषकाश्चैव समयानां च दूषकाः।
ये प्रत्यवसिताश्चैव ते वै निरयगामिनः॥ ६७॥

जो पाखण्डी, निन्दक, धार्मिक नियमोंके विरोधी तथा एक बार संन्यास लेकर फिर गृहस्थ-आश्रममें लौट आनेवाले हैं, वे निश्चय ही नरकगामी होते हैं॥ ६७॥

विषमव्यवहाराश्च विषमाश्चैव वृद्धिषु।
लाभेषु विषमाश्चैव ते वै निरयगामिनः॥ ६८॥

जिनका व्यवहार सबके प्रति समान नहीं है तथा जो लाभ और वृद्धिमें विषम दृष्टि रखते हैं—ईमानदारीसे उसका वितरण नहीं करते हैं, वे अवश्य ही नरकगामी होते हैं॥ ६८॥

दूतसंव्यवहाराश्च निष्परीक्षाश्च मानवाः।
प्राणिहिंसाप्रवृत्ताश्च ते वै निरयगामिनः॥ ६९॥

जो किसी मनुष्यकी परख करनेमें समर्थ नहीं हैं और दूतका काम करते हैं, जिनकी सदा जीवहिंसामें प्रवृत्ति होती है, वे निश्चय ही नरकमें गिरते हैं॥ ६९॥

कृताशं कृतनिर्देशं कृतभक्तं कृतश्रमम्।
भेदैर्ये व्यपकर्षन्ति ते वै निरयगामिनः॥ ७०॥

जो वेतनपर रखे हुए परिश्रमी नौकरको कुछ देनेकी आशा देकर और देनेका समय नियत करके उसके पहले ही भेदनीतिके द्वारा उसे मालिकके यहाँसे निकलवा देते हैं, वे अवश्य ही नरकमें जाते हैं॥ ७०॥

पर्यश्नन्ति च ये दारानग्निभृत्यातिथींस्तथा।
उत्सन्नपितृदेवेज्यास्ते वै निरयगामिनः॥ ७१॥

जो पितरों और देवताओंके यजन-पूजनका त्याग करके अग्निमें आहुति दिये बिना तथा अतिथि, पोष्यवर्ग और स्त्री-बच्चोंको अन्न दिये बिना ही भोजन कर लेते हैं, वे निःसंदेह नरकगामी होते हैं॥ ७१॥

वेदविक्रयिणश्चैव वेदानां चैव दूषकाः।
वेदानां लेखकाश्चैव ते वै निरयगामिनः॥ ७२॥

जो वेद बेचते हैं, वेदोंकी निन्दा करते हैं और विक्रयके लिये ही वेदोंके मन्त्र लिखते हैं, वे भी निश्चय ही नरकगामी होते हैं॥ ७२॥

चातुराश्रम्यबाह्याश्च श्रुतिबाह्याश्च ये नराः।
विकर्मभिश्च जीवन्ति ते वै निरयगामिनः॥ ७३॥

जो मनुष्य चारों आश्रमों और वेदोंकी मर्यादासे बाहर हैं तथा शास्त्रविरुद्ध कर्मोंसे ही जीविका चलाते हैं, उन्हें निश्चय ही नरकमें गिरना पड़ता है॥ ७३॥

केशविक्रयिका राजन् विषविक्रयिकाश्च ये।
क्षीरविक्रयिकाश्चैव ते वै निरयगामिनः॥ ७४॥

राजन्! जो (ब्राह्मण) केश, विष और दूध बेचते हैं, वे भी नरकमें ही जाते हैं॥ ७४॥

ब्राह्मणानां गवां चैव कन्यानां च युधिष्ठिर।
येऽन्तरं यान्ति कार्येषु ते वै निरयगामिनः॥ ७५॥

युधिष्ठिर! जो ब्राह्मण, गौ तथा कन्याओंके लिये हितकर कार्यमें विघ्न डालते हैं, वे भी अवश्य ही नरकगामी होते हैं॥ ७५॥

शस्त्रविक्रयिकाश्चैव कर्तारश्च युधिष्ठिर।
शल्यानां धनुषां चैव ते वै निरयगामिनः॥ ७६॥

राजा युधिष्ठिर! जो (ब्राह्मण) हथियार बेचते और धनुष-बाण आदि शस्त्रोंको बनाते हैं, वे नरकगामी होते हैं॥ ७६॥

शिलाभिः शङ्कुभिर्वापि श्वभ्रैर्वा भरतर्षभ।
ये मार्गमनुरुन्धन्ति ते वै निरयगामिनः॥ ७७॥

भरतश्रेष्ठ! जो पत्थर रखकर, काँटे बिछाकर और गड्ढे खोदकर रास्ता रोकते हैं, वे भी नरकमें ही गिरते हैं॥ ७७॥

उपाध्यायांश्च भृत्यांश्च भक्ताश्च भरतर्षभ।
ये त्यजन्त्यविकारांस्त्रींस्ते वै निरयगामिनः॥ ७८॥

भरतभूषण! जो अध्यापकों, सेवकों तथा अपने भक्तोंको बिना किसी अपराधके ही त्याग देते हैं, उन्हें भी नरकमें ही गिरना पड़ता है॥ ७८॥

अप्राप्तदमकाश्चैव नासानां वेधकाश्च ये।
बन्धकाश्च पशूनां ये ते वै निरयगामिनः॥ ७९॥

जो काबूमें न आनेवाले पशुओंका दमन करते, नाथते अथवा कटघरेमें बंद करते हैं, वे नरकगामी होते हैं॥ ७९॥

अगोप्तारश्च राजानो बलिषड्भागतस्कराः।
समर्थाश्चाप्यदातारस्ते वै निरयगामिनः॥ ८०॥

जो राजा होकर भी प्रजाकी रक्षा नहीं करते और उसकी आमदनीके छठे भागको लगानके रूपमें लूटते रहते हैं तथा जो समर्थ होनेपर भी दान नहीं करते, उन्हें भी निःसंदेह नरकमें जाना पड़ता है॥ ८०॥

(संश्रुत्य चाप्रदातारो दरिद्राणां विनिन्दकाः।
श्रोत्रियाणां विनीतानां दरिद्राणां विशेषतः॥
क्षमिणां निन्दकाश्चैव ते वै निरयगामिनः।)

जो देनेकी प्रतिज्ञा करके भी नहीं देते, दरिद्रोंकी एवं विनयशील निर्धन श्रोत्रियोंकी और क्षमाशीलोंकी निन्दा करते हैं, वे भी अवश्य ही नरकमें जाते हैं॥

क्षान्तान् दान्तांस्तथा प्राज्ञान् दीर्घकालं सहोषितान्।
त्यजन्ति कृतकृत्या ये ते वै निरयगामिनः॥ ८१॥

जो क्षमाशील, जितेन्द्रिय तथा दीर्घकालतक साथ रहे हुए विद्वानोंको अपना काम निकल जानेके बाद त्याग देते हैं, वे नरकमें गिरते हैं॥ ८१॥

बालानामथ वृद्धानां दासानां चैव ये नराः।
अदत्त्वा भक्षयन्त्यग्रे ते वै निरयगामिनः॥ ८२॥

जो बालकों, बूढ़ों और सेवकोंको दिये बिना ही पहले स्वयं भोजन कर लेते हैं, वे भी निःसंदेह नरकगामी होते हैं॥ ८२॥

एते पूर्वं विनिर्दिष्टाः प्रोक्ता निरयगामिनः।
भागिनः स्वर्गलोकस्य वक्ष्यामि भरतर्षभ॥ ८३॥

भरतश्रेष्ठ! पहलेके संकेतके अनुसार यहाँ नरकगामी मनुष्योंका वर्णन किया गया है। अब स्वर्गलोकमें जानेवालोंका परिचय देता हूँ, सुनो॥ ८३॥

सर्वेष्वेव तु कार्येषु दैवपूर्वेषु भारत।
हन्ति पुत्रान् पशून् कृत्स्नान् ब्राह्मणातिक्रमः कृतः॥ ८४॥

भरतनन्दन! जिनमें पहले देवताओंकी पूजा की जाती है, उन समस्त कार्योंमें यदि ब्राह्मणका अपमान किया जाय तो वह अपमान करनेवालेके समस्त पुत्रों और पशुओंका नाश कर देता है॥ ८४॥

दानेन तपसा चैव सत्येन च युधिष्ठिर।
ये धर्ममनुवर्तन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः॥ ८५॥

जो दान, तपस्या और सत्यके द्वारा धर्मका अनुष्ठान करते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं॥ ८५॥

शुश्रूषाभिस्तपोभिश्च विद्यामादाय भारत।
ये प्रतिग्रहनिःस्नेहास्ते नराः स्वर्गगामिनः॥ ८६॥

भारत! जो गुरुशुश्रूषा और तपस्यापूर्वक वेदाध्ययन करके प्रतिग्रहमें आसक्त नहीं होते, वे लोग स्वर्गगामी होते हैं॥ ८६॥

भयात्पापात्तथा बाधाद् दारिद्र्याद् व्याधिधर्षणात्।
यत्कृते प्रतिमुच्यन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः॥ ८७॥

जिनके प्रयत्नसे मनुष्य भय, पाप, बाधा, दरिद्रता तथा व्याधिजनित पीड़ासे छुटकारा पा जाते हैं, वे लोग स्वर्गमें जाते हैं॥ ८७॥

क्षमावन्तश्च धीराश्च धर्मकार्येषु चोत्थिताः।
मङ्गलाचारसम्पन्नाः पुरुषाः स्वर्गगामिनः॥ ८८॥

जो क्षमावान्, धीर, धर्मकार्यके लिये उद्यत रहनेवाले और मांगलिक आचारसे सम्पन्न हैं, वे पुरुष भी स्वर्गगामी होते हैं॥ ८८॥

निवृत्ता मधुमांसेभ्यः परदारेभ्य एव च।
निवृत्ताश्चैव मद्येभ्यस्ते नराः स्वर्गगामिनः॥ ८९॥

जो मद, मांस, मदिरा और परस्त्रीसे दूर रहते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोकमें जाते हैं॥ ८९॥

आश्रमाणां च कर्तारः कुलानां चैव भारत।
देशानां नगराणां च ते नराः स्वर्गगामिनः॥ ९०॥

भारत! जो आश्रम, कुल, देश और नगरके निर्माता तथा संरक्षक हैं, वे पुरुष स्वर्गमें जाते हैं॥ ९०॥

वस्त्राभरणदातारो भक्तपानान्नदास्तथा।
कुटुम्बानां च दातारः पुरुषाः स्वर्गगामिनः॥ ९१॥

जो वस्त्र, आभूषण, भोजन, पानी तथा अन्न दान करते हैं एवं दूसरोंके कुटुम्बकी वृद्धिमें सहायक होते हैं, वे पुरुष स्वर्गलोकमें जाते हैं॥ ९१॥

सर्वहिंसानिवृत्ताश्च नराः सर्वसहाश्च ये।
सर्वस्याश्रयभूताश्च ते नराः स्वर्गगामिनः॥ ९२॥

जो सब प्रकारकी हिंसाओंसे अलग रहते हैं, सब कुछ सहते हैं और सबको आश्रय देते रहते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोकमें जाते हैं॥ ९२॥

मातरं पितरं चैव शुश्रूषन्ति जितेन्द्रियाः।
भ्रातॄणां चैव सस्नेहास्ते नराः स्वर्गगामिनः॥ ९३॥

जो जितेन्द्रिय होकर माता-पिताकी सेवा करते हैं तथा भाइयोंपर स्नेह रखते हैं, वे लोग स्वर्गलोकमें जाते हैं॥ ९३॥

आढ्याश्च बलवन्तश्च यौवनस्थाश्च भारत।
ये वै जितेन्द्रिया धीरास्ते नराः स्वर्गगामिनः॥ ९४॥

भारत! जो धनी, बलवान् और नौजवान होकर भी अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखते हैं, वे धीर पुरुष स्वर्गगामी होते हैं॥ ९४॥

अपराधिषु सस्नेहा मृदवो मृदुवत्सलाः।
आराधनसुखाश्चापि पुरुषाः स्वर्गगामिनः॥ ९५॥

जो अपराधियोंके प्रति भी दया रखते हैं, जिनका स्वभाव मृदुल होता है, जो मृदुल स्वभाववाले व्यक्तियोंपर प्रेम रखते हैं तथा जिन्हें दूसरोंकी आराधना (सेवा) करनेमें ही सुख मिलता है, वे मनुष्य स्वर्गलोकमें जाते हैं॥ ९५॥

सहस्रपरिवेष्टारस्तथैव च सहस्रदाः।
त्रातारश्च सहस्राणां ते नराः स्वर्गगामिनः॥ ९६॥

जो मनुष्य सहस्रों मनुष्योंको भोजन परोसते, सहस्रोंको दान देते तथा सहस्रोंकी रक्षा करते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं॥ ९६॥

सुवर्णस्य च दातारो गवां च भरतर्षभ।
यानानां वाहनानां च ते नराः स्वर्गगामिनः॥ ९७॥

भरतश्रेष्ठ! जो सुवर्ण, गौ, पालकी और सवारीका दान करते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोकमें जाते हैं॥ ९७॥

वैवाहिकानां द्रव्याणां प्रेष्याणां च युधिष्ठिर।
दातारो वाससां चैव ते नराः स्वर्गगामिनः॥ ९८॥

युधिष्ठिर! जो वैवाहिक द्रव्य, दास-दासी तथा

वस्त्र दान करते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं॥ ९८॥

विहारावसथोद्यानकूपारामसभाप्रपाः ।
वप्राणां चैव कर्तारस्ते नराः स्वर्गगामिनः॥ ९९॥

जो दूसरोंके लिये आश्रम, गृह, उद्यान, कुआँ, बागीचा, धर्मशाला, पौंसला तथा चहारदीवारी बनवाते हैं, वे लोग स्वर्गलोकमें जाते हैं॥ ९९॥

निवेशनानां क्षेत्राणां वसतीनां च भारत।
दातारः प्रार्थितानां च ते नराः स्वर्गगामिनः॥ १००॥

भरतनन्दन! जो याचकोंकी याचनाके अनुसार घर, खेत और गाँव प्रदान करते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोकमें जाते हैं॥ १००॥

रसानां चाथ बीजानां धान्यानां च युधिष्ठिर।
स्वयमुत्पाद्य दातारः पुरुषाः स्वर्गगामिनः॥ १०१॥

युधिष्ठिर! जो स्वयं ही पैदा करके रस, बीज और अन्नका दान करते हैं, वे पुरुष स्वर्गगामी होते हैं॥ १०१॥

यस्मिंस्तस्मिन् कुले जाता बहुपुत्राः शतायुषः।
सानुक्रोशा जितक्रोधाः पुरुषाः स्वर्गगामिनः॥ १०२॥

जो किसी भी कुलमें उत्पन्न हो बहुत-से पुत्रों और सौ वर्षकी आयुसे युक्त होते हैं, दूसरोंपर दया करते हैं और क्रोधको काबूमें रखते हैं, वे पुरुष स्वर्गलोकमें जाते हैं॥ १०२॥

एतदुक्तममुत्रार्थं दैवं पित्र्यं च भारत।
दानधर्मं च दानस्य यत् पूर्वमृषिभिः कृतम्॥ १०३॥

भारत! यह मैंने तुमसे परलोकमें कल्याण करनेवाले देवकार्य और पितृकार्यका वर्णन किया तथा प्राचीनकालमें ऋषियोंद्वारा बतलाये हुए दानधर्म और दानकी महिमाका भी निरूपण किया है॥ १०३॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि स्वर्गनरकगामिवर्णने त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत अनुशासनपर्वके अन्तर्गत दानधर्मपर्वमें स्वर्ग और नरकमें जानेवालोंका वर्णनविषयक तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २३॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ८½ श्लोक मिलाकर कुल १११ ½ श्लोक हैं)

चतुर्विंशोऽध्यायः

ब्रह्महत्याके समान पापोंका निरूपण

युधिष्ठिर उवाच

इदं मे तत्त्वतो राजन् वक्तुमर्हसि भारत।
अहिंसयित्वापि कथं ब्रह्महत्या विधीयते॥ १॥

युधिष्ठिरने पूछा—भरतवंशी नरेश! अब आप मुझे यह ठीक-ठीक बतानेकी कृपा करें कि ब्राह्मणकी हिंसा न करनेपर भी मनुष्यको ब्रह्महत्याका पाप कैसे लगता है?॥ १॥

भीष्म उवाच

व्यासमामन्त्र्य राजेन्द्र पुरा यत् पृष्टवानहम्।
तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि तदिहैकमनाः शृणु॥ २॥

भीष्मजीने कहा—राजेन्द्र! पूर्वकालमें मैंने एक बार व्यासजीको बुलाकर उनसे जो प्रश्न किया था (तथा उन्होंने मुझे उसका जो उत्तर दिया था), वह सब तुम्हें बता रहा हूँ। तुम यहाँ एकाग्रचित्त होकर सुनो॥ २॥

चतुर्थस्त्वं वसिष्ठस्य तत्त्वमाख्याहि मे मुने।
अहिंसयित्वा केनेह ब्रह्महत्या विधीयते॥ ३॥

मैंने पूछा था—'मुने! आप वसिष्ठजीके वंशजोंमें चौथी पीढ़ीके पुरुष हैं। कृपया मुझे यह ठीक-ठीक बताइये कि ब्राह्मणकी हिंसा न करनेपर भी किन कर्मोंके करनेसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है?'॥ ३॥

इति पृष्टो मया राजन् पराशरशरीरजः।
अब्रवीन्निपुणो धर्मे निःसंशयमनुत्तमम्॥ ४॥

राजन्! मेरे द्वारा इस प्रकार पूछनेपर पराशर-पुत्र धर्मनिपुण व्यासजीने यह संदेहरहित परम उत्तम बात कही—॥ ४॥

ब्राह्मणं स्वयमाहूय भिक्षार्थे कृशवृत्तिनम्।
ब्रूयान्नास्तीति यः पश्चात्तं विद्याद् ब्रह्मघातिनम्॥ ५॥

'भीष्म! जिसकी जीविकावृत्ति नष्ट हो गयी है, ऐसे ब्राह्मणको भिक्षा देनेके लिये स्वयं बुलाकर जो पीछे देनेसे इनकार कर देता है, उसे ब्रह्महत्यारा समझो॥ ५॥

मध्यस्थस्येह विप्रस्य योऽनूचानस्य भारत।
वृत्तिं हरति दुर्बुद्धिस्तं विद्याद् ब्रह्मघातिनम्॥ ६॥

'भरतनन्दन! जो दुष्ट बुद्धिवाला मनुष्य तटस्थ रहनेवाले विद्वान् ब्राह्मणकी जीविका छीन लेता है, उसे भी ब्रह्महत्यारा ही समझना चाहिये॥ ६॥

गोकुलस्य तृषार्तस्य जलार्थे वसुधाधिप।
उत्पादयति यो विघ्नं तं विद्याद् ब्रह्मघातिनम्॥ ७॥

'पृथ्वीनाथ! जो प्याससे पीड़ित हुई गौओंके पानी पीनेमें विघ्न डालता है, उसे भी ब्रह्मघाती जाने॥ ७॥

यः प्रवृत्तां श्रुतिं सम्यक् शास्त्रं वा मुनिभिः कृतम्।
दूषयत्यनभिज्ञाय तं विद्याद् ब्रह्मघातिनम्॥ ८॥

'जो मनुष्य उत्तम कर्मका विधान करनेवाली श्रुतियों और ऋषिप्रणीत शास्त्रोंपर बिना समझे-बूझे दोषारोपण करता है, उसको भी ब्रह्मघाती ही समझो॥ ८॥

आत्मजां रूपसम्पन्नां महतीं सदृशे वरे।
न प्रयच्छति यः कन्यां तं विद्याद् ब्रह्मघातिनम्॥ ९॥

जो अपनी रूपवती कन्याकी बड़ी उम्र हो जानेपर भी उसका योग्य वरके साथ विवाह नहीं करता, उसे ब्रह्महत्यारा जाने॥ ९॥

अधर्मनिरतो मूढो मिथ्या यो वै द्विजातिषु।
दद्यान्मर्मातिगं शोकं तं विद्याद् ब्रह्मघातिनम्॥ १०॥

'जो पापपरायण मूढ़ मनुष्य ब्राह्मणोंको अकारण ही मर्मभेदी शोक प्रदान करता है, उसे ब्रह्मघाती जाने॥

चक्षुषा विप्रहीणस्य पंगुलस्य जडस्य वा।
हरेत यो वै सर्वस्वं तं विद्याद् ब्रह्मघातिनम्॥ ११॥

'जो अन्धे, लूले और गूँगे मनुष्योंका सर्वस्व हर लेता है, उसे ब्रह्मघाती जाने॥ ११॥

आश्रमे वा वने वापि ग्रामे वा यदि वा पुरे।
अग्निं समुत्सृजेन्मोहात्तं विद्याद् ब्रह्मघातिनम्॥ १२॥

'जो मोहवश आश्रम, वन, गाँव अथवा नगरमें आग लगा देता है, उसे भी ब्रह्मघाती ही समझना चाहिये'॥ १२॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि ब्रह्मघ्नकथने चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत अनुशासनपर्वके अन्तर्गत दानधर्मपर्वमें ब्रह्महत्यारोंका कथनविषयक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २४॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

विभिन्न तीर्थोंके माहात्म्यका वर्णन

युधिष्ठिर उवाच

तीर्थानां दर्शनं श्रेयः स्नानं च भरतर्षभ।
श्रवणं च महाप्राज्ञ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥ १॥

युधिष्ठिरने पूछा—महाज्ञानी भरतश्रेष्ठ! तीर्थोंका दर्शन, उनमें किया जानेवाला स्नान और उनकी महिमाका श्रवण श्रेयस्कर बताया गया है। अतः मैं तीर्थोंका यथावत् रूपसे वर्णन सुनना चाहता हूँ॥ १॥

पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यानि भरतर्षभ।
वक्तुमर्हसि मे तानि श्रोतास्मि नियतं प्रभो॥ २॥

भरतभूषण! इस पृथ्वीपर जो-जो पवित्र तीर्थ हैं, उन्हें मैं नियमपूर्वक सुनना चाहता हूँ। आप उन्हें बतलानेकी कृपा करें॥ २॥

भीष्म उवाच

इममङ्गिरसा प्रोक्तं तीर्थवंशं महाद्युते।
श्रोतुमर्हसि भद्रं ते प्राप्स्यसे धर्ममुत्तमम्॥ ३॥

भीष्मजीने कहा—महातेजस्वी नरेश! पूर्वकालमें अंगिरामुनिने तीर्थसमुदायका वर्णन किया था। तुम्हारा भला हो, तुम उसीको सुनो। इससे तुम्हें उत्तम धर्मकी प्राप्ति होगी॥ ३॥

तपोवनगतं विप्रमभिगम्य महामुनिम्।
पप्रच्छाङ्गिरसं धीरं गौतमः संशितव्रतः॥ ४॥

एक समयकी बात है, महामुनि विप्रवर धैर्यवान् अंगिरा अपने तपोवनमें विराजमान थे। उस समय कठिन व्रतका पालन करनेवाले महर्षि गौतमने उनके पास जाकर पूछा—॥ ४॥

अस्ति मे भगवन् कश्चित्तीर्थेभ्यो धर्मसंशयः।
तत् सर्वं श्रोतुमिच्छामि तन्मे शंस महामुने॥ ५॥

'भगवन्! महामुने! मुझे तीर्थोंके सम्बन्धमें कुछ धर्मविषयक संदेह है। वह सब मैं सुनना चाहता हूँ। आप कृपया मुझे बताइये॥ ५॥

उपस्पृश्य फलं किं स्यात्तेषु तीर्थेषु वै मुने।
प्रेत्यभावे महाप्राज्ञ तद् यथास्ति तथा वद॥ ६॥

'महाज्ञानी मुनीश्वर! उन तीर्थोंमें स्नान करनेसे मृत्युके बाद किस फलकी प्राप्ति होती है? इस विषयमें जैसी वस्तुस्थिति है, वह बताइये'॥ ६॥

अङ्गिरा उवाच

सप्ताहं चन्द्रभागां वै वितस्तामूर्मिमालिनीम्।
विगाह्य वै निराहारो निर्मलो मुनिवद् भवेत्॥ ७॥

अंगिराने कहा—मुने! मनुष्य उपवास करके चन्द्रभागा (चनाव) और तरंगमालिनी वितस्ता (झेलम)-में सात दिनतक स्नान करे तो मुनिके समान निर्मल हो जाता है॥ ७॥

काश्मीरमण्डले नद्यो याः पतन्ति महानदम्।
ता नदीः सिन्धुमासाद्य शीलवान् स्वर्गमाप्नुयात्॥ ८॥

काश्मीर प्रान्तकी जो-जो नदियाँ महानद सिन्धुमें मिलती हैं, उनमें तथा सिन्धुमें स्नान करके शीलवान् पुरुष मरनेके बाद स्वर्गमें जाता है॥ ८॥

पुष्करं च प्रभासं च नैमिषं सागरोदकम्।
देविकामिन्द्रमार्गं च स्वर्णबिन्दुं विगाह्य च॥ ९॥
विबोध्यते विमानस्थः सोऽप्सरोभिरभिष्टुतः।

पुष्कर, प्रभास, नैमिषारण्य, सागरोदक (समुद्रजल), देविका, इन्द्रमार्ग तथा स्वर्णविन्दु—इन तीर्थोंमें स्नान करनेसे मनुष्य विमानपर बैठकर स्वर्गमें जाता है और अप्सराएँ उसकी स्तुति करती हुई उसे जगाती हैं॥ ९½॥

हिरण्यबिन्दुं विक्षोभ्य प्रयतश्चाभिवाद्य च॥ १०॥
कुशेशयं च देवं तं धूयते तस्य किल्बिषम्।

जो मनुष्य मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए हिरण्यविन्दु तीर्थमें स्नान करके वहाँके प्रमुख देवता भगवान् कुशेशयको प्रणाम करता है, उसके सारे पाप धुल जाते हैं॥ १०½॥

इन्द्रतोयां समासाद्य गन्धमादनसंनिधौ॥ ११॥
करतोयां कुरङ्गे च त्रिरात्रोपोषितो नरः।
अश्वमेधमवाप्नोति विगाह्य प्रयतः शुचिः॥ १२॥

गन्धमादन पर्वतके निकट इन्द्रतोया नदीमें और कुरंग क्षेत्रके भीतर करतोया नदीमें संयतचित्त एवं शुद्धभावसे स्नान करके तीन रात उपवास करनेवाला मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता है॥ ११-१२॥

गङ्गाद्वारे कुशावर्ते बिल्वके नीलपर्वते।
तथा कनखले स्नात्वा धूतपाप्मा दिवं व्रजेत्॥ १३॥

गंगाद्वार, कुशावर्त, बिल्वक तीर्थ, नील पर्वत तथा कनखलमें स्नान करके पापरहित हुआ मनुष्य स्वर्गलोकको जाता है॥ १३॥

अपां ह्रद उपस्पृश्य वाजिमेधफलं लभेत्।
ब्रह्मचारी जितक्रोधः सत्यसंधस्त्वहिंसकः॥ १४॥

यदि कोई क्रोधहीन, सत्यप्रतिज्ञ और अहिंसक होकर ब्रह्मचर्यके पालनपूर्वक सलिलह्रद नामक तीर्थमें डुबकी लगाये तो उसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है॥ १४॥

यत्र भागीरथी गङ्गा पतते दिशमुत्तराम्।
महेश्वरस्य त्रिस्थाने यो नरस्त्वभिषिच्यते॥ १५॥
एकमासं निराहारः स पश्यति हि देवताः।

जहाँ उत्तर दिशामें भागीरथी गंगा गिरती हैं और वहाँ उनका स्रोत तीन भागोंमें विभक्त हो जाता है, वह भगवान् महेश्वरका त्रिस्थान नामक तीर्थ है। जो मनुष्य एक मासतक निराहार रहकर वहाँ स्नान करता है, उसे देवताओंका प्रत्यक्ष दर्शन होता है॥ १५½॥

सप्तगङ्गे त्रिगङ्गे च इन्द्रमार्गे च तर्पयन्॥ १६॥
सुधां वै लभते भोक्तुं यो नरो जायते पुनः।

सप्तगङ्ग, त्रिगङ्ग और इन्द्रमार्गमें पितरोंका तर्पण करनेवाला मनुष्य यदि पुनर्जन्म लेता है तो उसे अमृत भोजन मिलता है (अर्थात् वह देवता हो जाता है।)॥ १६½॥

महाश्रम उपस्पृश्य योऽग्निहोत्रपरः शुचिः॥ १७॥
एकमासं निराहारः सिद्धिं मासेन स व्रजेत्।

महाश्रम तीर्थमें स्नान करके प्रतिदिन पवित्र भावसे अग्निहोत्र करते हुए जो एक महीनेतक उपवास करता है, वह उतने ही समयमें सिद्ध हो जाता है॥ १७½॥

महाह्रद उपस्पृश्य भृगुतुङ्गे त्वलोलुपः॥ १८॥
त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा मुच्यते ब्रह्महत्यया।

जो लोभका त्याग करके भृगुतुङ्ग-क्षेत्रके महाह्रद नामक तीर्थमें स्नान करता है और तीन राततक भोजन छोड़ देता है, वह ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त हो जाता है॥ १८½॥

कन्याकूप उपस्पृश्य बलाकायां कृतोदकः॥ १९॥
देवेषु लभते कीर्तिं यशसा च विराजते॥ २०॥

कन्याकूपमें स्नान करके बलाका तीर्थमें तर्पण करनेवाला पुरुष देवताओंमें कीर्ति पाता है और अपने यशसे प्रकाशित होता है॥ १९-२०॥

देविकायामुपस्पृश्य तथा सुन्दरिकाह्रदे।
अश्विन्यां रूपवर्चस्कं प्रेत्य वै लभते नरः॥ २१॥

देविकामें स्नान करके सुन्दरिकाकुण्ड और अश्विनीतीर्थमें स्नान करनेपर मृत्युके पश्चात् दूसरे जन्ममें मनुष्यको रूप और तेजकी प्राप्ति होती है॥ २१॥

महागङ्गामुपस्पृश्य कृत्तिकाङ्गारके तथा।
पक्षमेकं निराहारः स्वर्गमाप्नोति निर्मलः॥ २२॥

महागङ्गा और कृतिकाङ्गारक तीर्थमें स्नान करके एक पक्षतक निराहार रहनेवाला मनुष्य निर्मल—निष्पाप होकर स्वर्गलोकमें जाता है॥ २२॥

वैमानिक उपस्पृश्य किङ्किणीकाश्रमे तथा।
निवासेऽप्सरसां दिव्ये कामचारी महीयते॥ २३॥

जो वैमानिक और किङ्किणीकाश्रमतीर्थमें स्नान करता है, वह अप्सराओंके दिव्यलोकमें जाकर सम्मानित होता और इच्छानुसार विचरता है॥ २३॥

कालिकाश्रममासाद्य विपाशायां कृतोदकः।
ब्रह्मचारी जितक्रोधस्त्रिरात्रं मुच्यते भवात्॥ २४॥

जो कालिकाश्रममें स्नान करके विपाशा (व्यास) नदीमें पितरोंका तर्पण करता है और क्रोधको जीतकर ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए तीन रात वहाँ निवास करता है, वह जन्म-मरणके बन्धनसे छूट जाता है॥ २४॥

आश्रमे कृत्तिकानां तु स्नात्वा यस्तर्पयेत् पितॄन्।
तोषयित्वा महादेवं निर्मलाः स्वर्गमाप्नुयात्॥ २५॥

जो कृत्तिकाश्रममें स्नान करके पितरोंका तर्पण करता है और महादेवजीको संतुष्ट करता है, वह पापमुक्त होकर स्वर्गलोकमें जाता है॥ २५॥

महापुर उपस्पृश्य त्रिरात्रोपोषितः शुचिः।
त्रसानां स्थावराणां च द्विपदानां भयं त्यजेत्॥ २६॥

महापुरतीर्थमें स्नान करके पवित्रतापूर्वक तीन रात उपवास करनेसे मनुष्य चराचर प्राणियों तथा मनुष्योंसे प्राप्त होनेवाले भयको त्याग देता है॥ २६॥

देवदारुवने स्नात्वा धूतपाप्मा कृतोदकः।
देवलोकमवाप्नोति सप्तरात्रोषितः शुचिः॥ २७॥

जो देवदारुवनमें स्नान करके तर्पण करता है, उसके सारे पाप धुल जाते हैं तथा जो वहाँ सात राततक निवास करता है, वह पवित्र हो मृत्युके पश्चात् देवलोकमें जाता है॥

शरस्तम्बे कुशस्तम्बे द्रोणशर्मपदे तथा।
अपां प्रपतनासेवी सेव्यते सोऽप्सरोगणैः॥ २८॥

जो शरस्तम्ब, कुशस्तम्ब और द्रोणशर्मपदतीर्थके झरनोंमें स्नान करता है वह स्वर्गमें अप्सराओंद्वारा सेवित होता है॥ २८॥

चित्रकूटे जनस्थाने तथा मन्दाकिनीजले।
विगाह्य वै निराहारो राजलक्ष्म्या निषेव्यते॥ २९॥

जो चित्रकूटमें मन्दाकिनीके जलमें तथा जनस्थानमें गोदावरीके जलमें स्नान करके उपवास करता है वह पुरुष राजलक्ष्मीसे सेवित होता है॥ २९॥

श्यामायास्त्वाश्रमं गत्वा उषित्वा चाभिषिच्य च।
एकपक्षं निराहारस्त्वन्तर्धानफलं लभेत्॥ ३०॥

श्यामाश्रममें जाकर वहाँ स्नान, निवास तथा एक पक्षतक उपवास करनेवाला पुरुष अन्तर्धानके फलको प्राप्त कर लेता है॥ ३०॥

कौशिकीं तु समासाद्य वायुभक्षस्त्वलोलुपः।
एकविंशतिरात्रेण स्वर्गमारोहते नरः॥ ३१॥

जो कौशिकी नदीमें स्नान करके लोलुपता त्यागकर इक्कीस रातोंतक केवल हवा पीकर रह जाता है वह मनुष्य स्वर्गको प्राप्त होता है॥ ३१॥

मतङ्गवाप्यां यः स्नायादेकरात्रेण सिद्ध्यति।
विगाहति ह्यनालम्बमन्धकं वै सनातनम्॥ ३२॥
नैमिषे स्वर्गतीर्थे च उपस्पृश्य जितेन्द्रियः।
फलं पुरुषमेधस्य लभेन्मासं कृतोदकः॥ ३३॥

जो मतङ्गवापी तीर्थमें स्नान करता है, उसे एक रातमें सिद्धि प्राप्त होती है। जो अनालम्ब, अन्धक और सनातन तीर्थमें गोता लगाता है तथा नैमिषारण्यके स्वर्गतीर्थमें स्नान करके इन्द्रिय-संयमपूर्वक एक मासतक पितरोंको जलाञ्जलि देता है उसे पुरुषमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है॥ ३२-३३॥

गङ्गाह्रद उपस्पृश्य तथा चैवोत्पलावने।
अश्वमेधमवाप्नोति तत्र मासं कृतोदकः॥ ३४॥

जो गङ्गाह्रद और उत्पलावनतीर्थमें स्नान करके एक मासतक वहाँ पितरोंका तर्पण करता है, वह अश्वमेधयज्ञका फल पाता है॥ ३४॥

गङ्गायमुनयोस्तीर्थे तथा कालञ्जरे गिरौ।
दशाश्वमेधानाप्नोति तत्र मासं कृतोदकः॥ ३५॥

गङ्गा-यमुनाके सङ्गमतीर्थमें तथा कालञ्जरतीर्थमें एक मासतक स्नान और तर्पण करनेसे दस अश्वमेध-यज्ञोंका फल प्राप्त होता है॥ ३५॥

षष्टिह्रद उपस्पृश्य चान्नदानाद् विशिष्यते।
दशतीर्थसहस्राणि तिस्रः कोट्यस्तथा पराः॥ ३६॥
समागच्छन्ति माघ्यां तु प्रयागे भरतर्षभ।

भरतश्रेष्ठ! षष्टिह्रद नामक तीर्थमें स्नान करनेसे अन्नदानसे भी अधिक फल प्राप्त होता है। माघ-मासकी अमावास्याको प्रयागराजमें तीन करोड़ दस हजार अन्य तीर्थोंका समागम होता है॥ ३६½॥

माघमासं प्रयागे तु नियतः संशितव्रतः॥ ३७॥
स्नात्वा तु भरतश्रेष्ठ निर्मलः स्वर्गमाप्नुयात्।

भरतश्रेष्ठ! जो नियमपूर्वक उत्तम व्रतका पालन करते हुए माघके महीनेमें प्रयागमें स्नान करता है वह सब पापोंसे मुक्त होकर स्वर्गमें जाता है॥ ३७½॥

मरुद्गण उपस्पृश्य पितॄणामाश्रमे शुचिः॥ ३८॥
वैवस्वतस्य तीर्थे च तीर्थभूतो भवेन्नरः।

जो पवित्र भावसे मरुद्गण तीर्थ, पितरोंके आश्रम तथा वैवस्वततीर्थमें स्नान करता है, वह मनुष्य स्वयं तीर्थरूप हो जाता है॥ ३८½ ॥

तथा ब्रह्मसरो गत्वा भागीरथ्यां कृतोदकः॥ ३९॥
एकमासं निराहारः सोमलोकमवाप्नुयात्॥ ४०॥

जो ब्रह्मसरोवर (पुष्करतीर्थ) और भागीरथी गङ्गामें स्नान करके पितरोंका तर्पण करता और वहाँ एक मासतक निराहार रहता है उसे चन्द्रलोककी प्राप्ति होती है॥ ३९-४०॥

उत्पातके नरः स्नात्वा अष्टावक्रे कृतोदकः।
द्वादशाहं निराहारो नरमेधफलं लभेत्॥ ४१॥

उत्पातक तीर्थमें स्नान और अष्टावक्र तीर्थमें तर्पण करके बारह दिनोंतक निराहार रहनेसे नरमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है॥ ४१॥

अश्मपृष्ठे गयायां च निरविन्दे च पर्वते।
तृतीयां क्रौञ्चपद्यां च ब्रह्महत्यां विशुध्यते॥ ४२॥

गयामें अश्मपृष्ठ (प्रेतशिला)-पर पितरोंको पिण्ड देनेसे पहली, निरविन्द पर्वतपर पिण्डदान करनेसे दूसरी तथा क्रौञ्चपदी नामक तीर्थमें पिण्ड अर्पित करनेसे तीसरी ब्रह्महत्याको दूर करके मनुष्य सर्वथा शुद्ध हो जाता है॥ ४२॥

कलविङ्के उपस्पृश्य विद्याच्च बहुशो जलम्।
अग्नेः पुरे नरः स्नात्वा अग्निकन्यापुरे वसेत्॥ ४३॥

कलविङ्क तीर्थमें स्नान करनेसे अनेक तीर्थोंमें गोते लगानेका फल मिलता है। अग्निपुर तीर्थमें स्नान करनेसे अग्निकन्यापुरका निवास प्राप्त होता है॥ ४३॥

करवीरपुरे स्नात्वा विशालायां कृतोदकः।
देवह्रदं उपस्पृश्य ब्रह्मभूतो विराजते॥ ४४॥

करवीरपुरमें स्नान, विशालामें तर्पण और देवह्रदमें मज्जन करनेसे मनुष्य ब्रह्मरूप हो जाता है॥ ४४॥

पुनरावर्तनन्दां च महानन्दां च सेव्य वै।
नन्दने सेव्यते दान्तस्त्वप्सरोभिरहिंसकः॥ ४५॥

जो सब प्रकारकी हिंसाका त्याग करके जितेन्द्रिय-भावसे आवर्तनन्दा और महानन्दा तीर्थका सेवन करता है उसकी स्वर्गस्थ नन्दनवनमें अप्सराएँ सेवा करती हैं॥ ४५॥

उर्वशीं कृत्तिकायोगे गत्वा चैव समाहितः।
लौहित्ये विधिवत् स्नात्वा पुण्डरीकफलं लभेत्॥ ४६॥

जो कार्तिककी पूर्णिमाको कृत्तिकाका योग होनेपर एकाग्रचित्त हो उर्वशी तीर्थ और लौहित्य तीर्थमें विधिपूर्वक स्नान करता है उसे पुण्डरीक यज्ञका फल मिलता है॥ ४६॥

रामह्रद उपस्पृश्य विपाशायां कृतोदकः।
द्वादशाहं निराहारः कल्मषाद् विप्रमुच्यते॥ ४७॥

रामह्रद (परशुराम-कुण्ड)-में स्नान और विपाशा नदीमें तर्पण करके बारह दिनोंतक उपवास करनेवाला पुरुष सब पापोंसे छूट जाता है॥ ४७॥

महाह्रद उपस्पृश्य शुद्धेन मनसा नरः।
एकमासं निराहारो जमदग्निगतिं लभेत्॥ ४८॥

महाह्रदमें स्नान करके यदि मनुष्य शुद्ध चित्तसे वहाँ एक मासतक निराहार रहे तो उसे जमदग्निके समान सद्गति प्राप्त होती है॥ ४८॥

विन्ध्ये संताप्य चात्मानं सत्यसंधस्त्वहिंसकः।
विनयात्तप आस्थाय मासेनैकेन सिध्यति॥ ४९॥

जो हिंसाका त्याग करके सत्यप्रतिज्ञ होकर विन्ध्याचलमें अपने शरीरको कष्ट दे विनीतभावसे तपस्याका आश्रय लेकर रहता है उसे एक महीनेमें सिद्धि प्राप्त हो जाती है॥ ४९॥

नर्मदायामुपस्पृश्य तथा शूर्पारकोदके।
एकपक्षं निराहारो राजपुत्रो विधीयते॥ ५०॥

नर्मदा नदी और शूर्पारक क्षेत्रके जलमें स्नान करके एक पक्षतक निराहार रहनेवाला मनुष्य दूसरे जन्ममें राजकुमार होता है॥ ५०॥

जम्बूमार्गे त्रिभिर्मासैः संयतः सुसमाहितः।
अहोरात्रेण चैकेन सिद्धिं समधिगच्छति॥ ५१॥

साधारण भावसे तीन महीनेतक जम्बूमार्गमें स्नान करनेसे तथा इन्द्रिय-संयमपूर्वक एकाग्रचित्त हो वहाँ एक ही दिन स्नान करनेसे भी मनुष्य सिद्धि प्राप्त कर लेता है॥ ५१॥

कोकामुखे विगाह्याथ गत्वा चाञ्जलिकाश्रमम्।
शाकभक्षश्चीरवासाः कुमारीर्विन्दते दश॥ ५२॥
वैवस्वतस्य सदनं न स गच्छेत् कदाचन।
यस्य कन्याह्रदे वासो देवलोकं स गच्छति॥ ५३॥

जो कोकामुख तीर्थमें स्नान करके अञ्जलिकाश्रम-तीर्थमें जाकर सागका भोजन करता हुआ चीरवस्त्र धारण करके कुछ कालतक निवास करता है उसे दस बार कन्याकुमारी तीर्थके सेवनका फल प्राप्त होता है तथा उसे कभी यमराजके घर नहीं जाना पड़ता। जो कन्याकुमारी तीर्थमें निवास करता है वह मृत्युके पश्चात् देवलोकमें जाता है॥ ५२-५३॥

प्रभासे त्वेकरात्रेण अमावास्यां समाहितः।
सिध्यते तु महाबाहो यो नरो जायतेऽमरः॥ ५४॥

महाबाहो! जो एकाग्रचित्त होकर अमावास्याको प्रभास-तीर्थका सेवन करता है उसे एक ही रातमें सिद्धि मिल जाती है तथा वह मृत्युके पश्चात् देवता होता है॥ ५४॥

उज्जानक उपस्पृश्य आर्ष्टिषेणस्य चाश्रमे।
पिङ्गायाश्चाश्रमे स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ५५॥

उज्जानकतीर्थमें स्नान करके आर्ष्टिषेणके आश्रम तथा पिङ्गाके आश्रममें गोता लगानेसे मनुष्य सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है॥ ५५॥

कुल्यायां समुपस्पृश्य जप्त्वा चैवाघमर्षणम्।
अश्वमेधमवाप्नोति त्रिरात्रोपोषितो नरः॥ ५६॥

जो मनुष्य कुल्यामें स्नान करके अघमर्षण मन्त्रका जप करता है तथा तीन राततक वहाँ उपवासपूर्वक रहता है उसे अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है॥ ५६॥

पिण्डारक उपस्पृश्य एकरात्रोषितो नरः।
अग्निष्टोममवाप्नोति प्रभातां शर्वरीं शुचिः॥ ५७॥

जो मानव पिण्डारक तीर्थमें स्नान करके वहाँ एक रात निवास करता है वह प्रातःकाल होते ही पवित्र होकर अग्निष्टोमयज्ञका फल प्राप्त कर लेता है॥ ५७॥

तथा ब्रह्मसरो गत्वा धर्मारण्योपशोभितम्।
पुण्डरीकमवाप्नोति उपस्पृश्य नरः शुचिः॥ ५८॥

धर्मारण्यसे सुशोभित ब्रह्मसर तीर्थमें जाकर वहाँ स्नान करके पवित्र हुआ मनुष्य पुण्डरीकयज्ञका फल पाता है॥ ५८॥

मैनाके पर्वते स्नात्वा तथा संध्यामुपास्य च।
कामं जित्वा च वै मासं सर्वयज्ञफलं लभेत्॥ ५९॥

मैनाक पर्वतपर एक महीनेतक स्नान और संध्योपासन करनेसे मनुष्य कामको जीतकर समस्त यज्ञोंका फल पा लेता है॥ ५९॥

कालोदकं नन्दिकुण्डं तथा चोत्तरमानसम्।
अभ्येत्य योजनशताद् भ्रूणहा विप्रमुच्यते॥ ६०॥

सौ योजन दूरसे आकर कालोदक, नन्दि-कुण्ड तथा उत्तरमानस तीर्थमें स्नान करनेवाला मनुष्य यदि भ्रूणहत्यारा भी हो तो वह उस पापसे मुक्त हो जाता है॥ ६०॥

नन्दीश्वरस्य मूर्तिं तु दृष्ट्वा मुच्येत किल्बिषैः।
स्वर्गमार्गे नरः स्नात्वा ब्रह्मलोकं स गच्छति॥ ६१॥

वहाँ नन्दीश्वरकी मूर्तिका दर्शन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। स्वर्गमार्गमें स्नान करनेसे वह ब्रह्मलोकमें जाता है॥ ६१॥

विख्यातो हिमवान् पुण्यः शङ्करश्वशुरो गिरिः।
आकरः सर्वरत्नानां सिद्धचारणसेवितः॥ ६२॥

भगवान् शंकरका श्वशुर हिमवान् पर्वत परम पवित्र और संसारमें विख्यात है। वह सब रत्नोंकी खान तथा सिद्ध और चारणोंसे सेवित है॥ ६२॥

शरीरमुत्सृजेत् तत्र विधिपूर्वमनाशके।
अध्रुवं जीवितं ज्ञात्वा यो वै वेदान्तगो द्विजः॥ ६३॥
अभ्यर्च्य देवतास्तत्र नमस्कृत्य मुनींस्तथा।
ततः सिद्धो दिवं गच्छेद् ब्रह्मलोकं सनातनम्॥ ६४॥

जो वेदान्तका ज्ञाता द्विज इस जीवनको नाशवान् समझकर उस पर्वतपर रहता और देवताओंका पूजन तथा मुनियोंको प्रणाम करके विधिपूर्वक अनशनके द्वारा अपने प्राणोंको त्याग देता है वह सिद्ध होकर सनातन ब्रह्मलोकको प्राप्त हो जाता है॥ ६३-६४॥

कामं क्रोधं च लोभं च यो जित्वा तीर्थमावसेत्।
न तेन किञ्चिन्न प्राप्तं तीर्थाभिगमनाद् भवेत्॥ ६५॥

जो काम, क्रोध और लोभको जीतकर तीर्थोंमें स्नान करता है उसे उस तीर्थयात्राके पुण्यसे कोई वस्तु दुर्लभ नहीं रहती॥ ६५॥

यान्यगम्यानि तीर्थानि दुर्गाणि विषमाणि च।
मनसा तानि गम्यानि सर्वतीर्थसमीक्षया॥ ६६॥

जो समस्त तीर्थोंके दर्शनकी इच्छा रखता हो, वह दुर्गम और विषम होनेके कारण जिन तीर्थोंमें शरीरसे न जा सके, वहाँ मनसे यात्रा करे॥ ६६॥

इदं मेध्यमिदं पुण्यमिदं स्वर्ग्यमनुत्तमम्।
इदं रहस्यं वेदानामाप्लाव्यं पावनं तथा॥ ६७॥

यह तीर्थ-सेवनका कार्य परम पवित्र, पुण्यप्रद, स्वर्गकी प्राप्तिका सर्वोत्तम साधन और वेदोंका गुप्त रहस्य है। प्रत्येक तीर्थ पावन और स्नानके योग्य होता है॥

इदं दद्याद् द्विजातीनां साधोरात्महितस्य च।
सुहृदां च जपेत् कर्णे शिष्यस्यानुगतस्य च॥ ६८॥

तीर्थोंका यह माहात्म्य द्विजातियोंके, अपने हितैषी श्रेष्ठ पुरुषके, सुहृदोंके तथा अनुगत शिष्यके ही कानमें डालना चाहिये॥ ६८॥

दत्तवान् गौतमस्यैतदङ्गिरा वै महातपाः।
अङ्गिराः समनुज्ञातः काश्यपेन च धीमता॥ ६९॥

सबसे पहले महातपस्वी अङ्गिराने गौतमको इसका उपदेश दिया। अङ्गिराको बुद्धिमान् काश्यपजीसे

इसका ज्ञान आपने हुआ था ॥ ६९ ॥

महर्षीणामिदं श्रेष्ठं पावनानां पवित्रतमम्।
अपश्चाच्युत्थितः शत्रुर्नित्यमेति स्वर्गमाप्नुयात् ॥ ७० ॥

यह ऊँचा महर्षियोंके सुनने योग्य और पावन वस्तुओंमें परम पवित्र है। जो महाभाग एवं उत्साहयुक्त होकर प्रातः इसका पाठ करता है वह सब पापोंसे मुक्त होकर स्वर्गलोकमें जाता है ॥ ७० ॥

इदं पठन्नपि शृणुयाद् रहस्यं स्वङ्गिरोमतम्।
उत्तमे च कुले जन्म लभेज्जातिं च संस्मरेत् ॥ ७१ ॥

जो अङ्गिरामुनिके इस रहस्यमय मतको सुनता है, वह उत्तम कुलमें जन्म पाता और पूर्वजन्मकी बातोंको स्मरण करता है ॥ ७१ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि अङ्गिरसमतीक्षोपाख्याने पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत अनुशासनपर्वके अन्तर्गत दानधर्मपर्वमें अङ्गिरसमतीक्षोपाख्यानविषयक पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः

श्रीगङ्गाजीके माहात्म्यका वर्णन

श्रीमहादेव उवाच

बृहस्पतिसमं बुद्ध्या क्षमया पृथिवीसमम्।
पराक्रमे शक्रसमं पितृभिस्तमतेजसम् ॥ १ ॥
गाङ्गेयमग्निसंकाशं पितरं भूरितेजसम्।
भ्रातृभिः सहितोऽन्वेत्य पर्यपृच्छत् पृथिष्ठिरः ॥ २ ॥
इच्छामि वीरशयने ऽऽलोकाङ्गिरसमद्युतम्।
आजग्मुर्भरतश्रेष्ठं द्रष्टुकामा महर्षयः ॥ ३ ॥

श्रीमहादेवजी कहते हैं—उमादेवि! जो बुद्धिमें बृहस्पतिके, क्षमामें पृथ्वीके, पराक्रममें इन्द्रके और तेजमें सूर्यके समान थे, अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले वे महातेजस्वी महाभाग भीष्मजी जब अर्जुनके हाथसे मारे जाकर युद्धमें वीरशय्यापर पड़े हुए कालकी बाट जोह रहे थे और भाइयों तथा अन्य लोगोंसहित राजा युधिष्ठिर उनसे आठ-आठके क्रमसे कह रहे थे, उसी समय बहुत-से दिव्य महर्षि भीष्मजीको देखनेके लिये आये ॥ १—३ ॥

अत्रिर्वसिष्ठोऽथ भृगुः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
अङ्गिरा गौतमोऽगस्त्यः सुमतिः सुव्रतस्तथा ॥ ४ ॥
विश्वामित्रः स्थूलशिराः संवर्तः प्रमतिर्दमः।
बृहस्पतिरुशनोव्यासश्चयवनः कक्षवर्षभौ ध्रुवः ॥ ५ ॥
दुर्वासा जमदग्निश्च मार्कण्डेयोऽथ गालवः।
भारद्वाजोऽथ रैभ्यश्च दक्षकौशिकसंशितव्रतौ ॥ ६ ॥
स्थूलाक्षः शबलाक्षश्च कण्वो मेधातिथिः कृशः।
गार्दभः पर्वतश्चैव सुधन्वाथैकतो द्विजः ॥ ७ ॥
निलम्बुर्धूम्रवर्णो भीमः शतानन्दोऽकृतव्रणः।
जामदग्न्यस्तथा रामः कक्षश्चैवेत्येवमादयः ॥ ८ ॥

उनके नाम ये हैं—अत्रि, वसिष्ठ, भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अङ्गिरा, गौतम, अगस्त्य, संयमशील सुमति, विश्वामित्र, स्थूलशिरा, संवर्त, प्रमति, दम, बृहस्पति, शुक्राचार्य, व्यास, चयवन, कक्षवान्, ध्रुव, दुर्वासा, जमदग्नि, मार्कण्डेय, गालव, भरद्वाज, रैभ्य, दक्ष और कौशिक, शित, स्थूलाक्ष, शबलाक्ष, कण्व, मेधातिथि, कृश, गार्द, पर्वत, सुधन्वा, एकत, त्रिनम्बु, धूम्र, भीम, शतानन्द, अकृतव्रण, जमदग्निनन्दन परशुराम और कक्ष ॥ ४—८ ॥

समागता महात्मानो भीष्मं द्रष्टुं महर्षयः।
तेषां महात्मनां पूजामागतानां पृथिष्ठिरः ॥ ९ ॥
भ्रातृभिः सहिताश्चक्रे यथावदनुपूर्वशः।

ये सभी महात्मा महर्षि आज भीष्मजीको देखनेके लिये यहाँ पधारे, तब भाइयोंसहित राजा युधिष्ठिरने इनकी क्रमशः विधिवत् पूजा की ॥ ९½ ॥

ते पूजिताः सुखासीनाः कथाश्चक्रुर्महर्षयः ॥ १० ॥
भीष्मार्थिताः सुमधुराः सर्वेन्द्रियमनोहराः।

पूजनके पश्चात् वे महर्षि सुखपूर्वक बैठकर भीष्मजीसे सम्बन्ध रखनेवाली मधुर एवं मनोहर कथाएँ कहने लगे। उनकी वे कथाएँ सम्पूर्ण इन्द्रियों और मनको मोह लेती थीं ॥ १०½ ॥

भीष्मशेषा कथाः श्रुत्वा ऋषीणां भावितात्मनाम् ॥ ११ ॥
सेने दिविष्ठमात्मानं मुदया परमया युतः।

शुद्ध अन्तःकरणवाले उन ऋषि-मुनियोंकी बातें सुनकर भीष्मजी बहुत संतुष्ट हुए और अपनेको स्वर्गमें ही स्थित मानने लगे ॥ ११½ ॥

ततस्ते भीष्ममामन्त्र्य पाण्डवांश्च महर्षयः ॥ १२ ॥
अन्तर्धाने गताः सर्वे सर्वेषामेव पश्यताम्।

तदनन्तर वे महर्षिगण भीष्मजी और पाण्डवोंकी अनुमति लेकर सबके देखते-देखते ही वहाँसे अदृश्य हो गये ॥ १२½ ॥

तानृषीन् सुमहाभागानन्तर्धानगतानपि॥ १३॥
पाण्डवास्तुष्टुवुः सर्वे प्रणेमुश्च मुहुर्मुहुः।

उन महाभाग मुनियोंके अदृश्य हो जानेपर भी समस्त पाण्डव बारंबार उनकी स्तुति और उन्हें प्रणाम करते रहे॥ १३½॥

प्रसन्नमनसः सर्वे गाङ्गेयं कुरुसत्तमम्॥ १४॥
उपतस्थुर्यथोद्यन्तमादित्यं मन्त्रकोविदाः।

जैसे वेदमन्त्रोंके ज्ञाता ब्राह्मण उगते हुए सूर्यका उपस्थान करते हैं, उसी प्रकार प्रसन्न चित्त हुए समस्त पाण्डव कुरुश्रेष्ठ गङ्गानन्दन भीष्मको प्रणाम करने लगे॥ १४½॥

प्रभावात् तपसस्तेषामृषीणां वीक्ष्य पाण्डवाः॥ १५॥
प्रकाशन्तो दिशः सर्वा विस्मयं परमं ययुः।

उन ऋषियोंकी तपस्याके प्रभावसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित होती देख पाण्डवोंको बड़ा विस्मय हुआ॥ १५½॥

महाभाग्यं परं तेषामृषीणामनुचिन्त्य ते।
पाण्डवाः सह भीष्मेण कथाश्चक्रुस्तदाश्रयाः॥ १६॥

उन महर्षियोंके महान् सौभाग्यका चिन्तन करके पाण्डव भीष्मजीके साथ उन्हींके सम्बन्धमें बातें करने लगे॥ १६॥

वैशम्पायन उवाच

कथान्ते शिरसा पादौ स्पृष्ट्वा भीष्मस्य पाण्डवः।
धर्म्यं धर्मसुतः प्रश्नं पर्यपृच्छद् युधिष्ठिरः॥ १७॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! बातचीतके अन्तमें भीष्मके चरणोंमें सिर रखकर धर्मपुत्र पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरने यह धर्मानुकूल प्रश्न पूछा—॥ १७॥

युधिष्ठिर उवाच

के देशाः के जनपदा आश्रमाः के च पर्वताः।
प्रकृष्टाः पुण्यतः काश्च ज्ञेया नद्यः पितामह॥ १८॥

युधिष्ठिर बोले—पितामह! कौन-से देश, कौन-से प्रान्त, कौन-कौन आश्रम, कौन-से पर्वत और कौन-कौन-सी नदियाँ पुण्यकी दृष्टिसे सर्वश्रेष्ठ समझने योग्य हैं?॥ १८॥

भीष्म उवाच

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
शिलोञ्छवृत्तेः संवादं सिद्धस्य च युधिष्ठिर॥ १९॥

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! इस विषयमें शिलोञ्छवृत्तिसे जीविका चलानेवाले एक पुरुषका किसी सिद्ध पुरुषके साथ जो संवाद हुआ था, वह प्राचीन इतिहास सुनो॥ १९॥

इमां कश्चित् परिक्रम्य पृथिवीं शैलभूषणाम्।
असकृद् द्विपदां श्रेष्ठः श्रेष्ठस्य गृहमेधिनः॥ २०॥
शिलवृत्तेर्गृहं प्राप्तः स तेन विधिनार्चितः।
उवास रजनीं तत्र सुमुखः सुखभागृषिः॥ २१॥

मनुष्योंमें श्रेष्ठ कोई सिद्ध पुरुष शैलमालाओंसे अलंकृत इस समूची पृथ्वीकी अनेक बार परिक्रमा करनेके पश्चात् शिलोञ्छवृत्तिसे जीविका चलानेवाले एक श्रेष्ठ गृहस्थके घर गया। उस गृहस्थने उसकी विधिपूर्वक पूजा की। वह समागत ऋषि वहाँ बड़े सुखसे रातभर रहा। उसके मुखपर प्रसन्नता छा रही थी॥ २०-२१॥

शिलवृत्तिस्तु यत् कृत्यं प्रातस्तत् कृतवान् शुचिः।
कृतकृत्यमुपातिष्ठत् सिद्धं तमतिथिं तदा॥ २२॥

सबेरा होनेपर वह शिलवृत्तिवाला गृहस्थ स्नान आदिसे पवित्र होकर प्रातःकालीन नित्यकर्ममें लग गया। नित्यकर्म पूर्ण करके वह उस सिद्ध अतिथिकी सेवामें उपस्थित हुआ। इसी बीचमें अतिथिने भी प्रातःकालके स्नान-पूजन आदि आवश्यक कृत्य पूर्ण कर लिये थे॥ २२॥

तौ समेत्य महात्मानौ सुखासीनौ कथाः शुभाः।
चक्रतुर्वेदसम्बद्धास्तच्छेषकृतलक्षणाः॥ २३॥

वे दोनों महात्मा एक-दूसरेसे मिलकर सुखपूर्वक बैठे तथा वेदोंसे सम्बद्ध और वेदान्तसे उपलक्षित शुभ चर्चाएँ करने लगे॥ २३॥

शिलवृत्तिः कथान्ते तु सिद्धमामन्त्र्य यत्नतः।
प्रश्नं पप्रच्छ मेधावी यन्मां त्वं परिपृच्छसि॥ २४॥

बातचीत पूरी होनेपर शिलोञ्छवृत्तिवाले बुद्धिमान् गृहस्थ ब्राह्मणने सिद्धको सम्बोधित करके यत्नपूर्वक वही प्रश्न पूछा, जो तुम मुझसे पूछ रहे हो॥ २४॥

शिलवृत्तिरुवाच

के देशाःके जनपदाः केऽऽश्रमाः के च पर्वताः।
प्रकृष्टाः पुण्यतः काश्च ज्ञेया नद्यस्तदुच्यताम्॥ २५॥

शिलवृत्तिवाले ब्राह्मणने पूछा—ब्रह्मन्! कौन-से देश, कौन-से जनपद, कौन-कौन आश्रम, कौन-से पर्वत और कौन-कौन-सी नदियाँ पुण्यकी दृष्टिसे सर्वश्रेष्ठ समझनेयोग्य हैं? यह बतानेकी कृपा करें॥ २५॥

सिद्ध उवाच

ते देशास्ते जनपदास्तेऽऽश्रमास्ते च पर्वताः।
येषां भागीरथी गङ्गा मध्येनैति सरिद्वरा॥ २६॥

सिद्धने कहा—ब्रह्मन्! वे ही देश, जनपद, आश्रम और पर्वत पुण्यकी दृष्टिसे सर्वश्रेष्ठ हैं, जिनके बीचसे होकर सरिताओंमें उत्तम भागीरथी गङ्गा बहती हैं॥ २६॥

तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञैस्त्यागेन वा पुनः।
गतिं तां न लभेज्जन्तुर्गङ्गां संसेव्य यां लभेत्॥ २७॥

गङ्गाजीका सेवन करनेसे जीव जिस उत्तम गतिको प्राप्त करता है उसे वह तपस्या, ब्रह्मचर्य, यज्ञ अथवा त्यागसे भी नहीं पा सकता ॥ २७॥

स्पृष्टानि येषां गाङ्गेयैस्तोयैर्गात्राणि देहिनाम्।
न्यस्तानि न पुनस्तेषां त्यागः स्वर्गाद् विधीयते॥ २८॥

जिन देहधारियोंके शरीर गङ्गाजीके जलसे भीगते हैं अथवा मरनेपर जिनकी हड्डियाँ गंगाजीमें डाली जाती हैं वे कभी स्वर्गसे नीचे नहीं गिरते॥ २८॥

सर्वाणि येषां गाङ्गेयैस्तोयैः कार्याणि देहिनाम्।
गां त्यक्त्वा मानवा विप्र दिवि तिष्ठन्ति ते जनाः॥ २९॥

विप्रवर! जिन देहधारियोंके सम्पूर्ण कार्य गङ्गाजलसे ही सम्पन्न होते हैं वे मानव मरनेके बाद पृथ्वीका निवास छोड़कर स्वर्गमें विराजमान होते हैं॥ २९॥

पूर्वे वयसि कर्माणि कृत्वा पापानि ये नराः।
पश्चाद् गङ्गां निषेवन्ते तेऽपि यान्त्युत्तमां गतिम्॥ ३०॥

जो मनुष्य जीवनकी पहली अवस्थामें पापकर्म करके भी पीछे गङ्गाजीका सेवन करने लगते हैं वे भी उत्तम गतिको ही प्राप्त होते हैं॥ ३०॥

स्नातानां शुचिभिस्तोयैर्गाङ्गेयैः प्रयतात्मनाम्।
व्युष्टिर्भवति या पुंसां न सा क्रतुशतैरपि॥ ३१॥

गङ्गाजीके पवित्र जलसे स्नान करके जिनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया है उन पुरुषोंके पुण्यकी जैसी वृद्धि होती है; वैसी सैकड़ों यज्ञ करनेसे भी नहीं हो सकती॥ ३१॥

यावदस्थि मनुष्यस्य गङ्गातोयेषु तिष्ठति।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥ ३२॥

मनुष्यकी हड्डी जितने समयतक गङ्गाजीके जलमें पड़ी रहती है, उतने हजार वर्षोंतक वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ ३२॥

अपहत्य तमस्तीव्रं यथा भात्युदये रविः।
तथापहत्य पाप्मानं भाति गङ्गाजलोक्षितः॥ ३३॥

जैसे सूर्य उदयकालमें घने अन्धकारको विदीर्ण करके प्रकाशित होते हैं, उसी प्रकार गङ्गाजलमें स्नान करनेवाला पुरुष अपने पापोंको नष्ट करके सुशोभित होता है॥ ३३॥

विसोमा इव शर्वर्यो विपुष्पास्तरवो यथा।
तद्वद् देशा दिशश्चैव हीना गङ्गाजलैः शिवैः॥ ३४॥

जैसे बिना चाँदनीकी रात और बिना फूलोंके वृक्ष शोभा नहीं पाते, उसी प्रकार गङ्गाजीके कल्याणमय जलसे वञ्चित हुए देश और दिशाएँ भी शोभा एवं सौभाग्य हीन हैं॥ ३४॥

वर्णाश्रमा यथा सर्वे धर्मज्ञानविवर्जिताः।
क्रतवश्च यथासोमास्तथा गङ्गां विना जगत्॥ ३५॥

जैसे धर्म और ज्ञानसे रहित होनेपर सम्पूर्ण वर्णों और आश्रमोंकी शोभा नहीं होती है तथा जैसे सोमरसके बिना यज्ञ सुशोभित नहीं होते, उसी प्रकार गङ्गाके बिना जगत्की शोभा नहीं है॥ ३५॥

यथा हीनं नभोऽर्केण भूःशैलैः खं च वायुना।
तथा देशा दिशश्चैव गङ्गाहीना न संशयः॥ ३६॥

जैसे सूर्यके बिना आकाश, पर्वतोंके बिना पृथ्वी और वायुके बिना अन्तरिक्षकी शोभा नहीं होती, उसी प्रकार जो देश और दिशाएँ गङ्गाजीसे रहित हैं उनकी भी शोभा नहीं होती—इसमें संशय नहीं है॥ ३६॥

त्रिषु लोकेषु ये केचित् प्राणिनः सर्व एव ते।
तर्प्यमाणाः परां तृप्तिं यान्ति गङ्गाजलैः शुभैः॥ ३७॥

तीनों लोकोंमें जो कोई भी प्राणी हैं, उन सबका गङ्गाजीके शुभ जलसे तर्पण करनेपर वे सब परम तृप्ति

लाभ करते हैं॥ ३७॥

यस्तु सूर्येण निष्टप्तं गाङ्गेयं पिबते जलम्।
गवां निर्हारनिर्मुक्ताद् यावकात् तद् विशिष्यते॥ ३८॥

जो मनुष्य सूर्यकी किरणोंसे तपे हुए गङ्गाजलका पान करता है, उसका वह जलपान गायके गोबरसे निकले हुए जौकी लप्सी खानेसे अधिक पवित्रकारक है॥ ३८॥

इन्दुव्रतसहस्रं तु यश्चरेत् कायशोधनम्।
पिबेद् यश्चापि गङ्गाम्भः समौ स्यातां न वा समौ॥ ३९॥

जो शरीरको शुद्ध करनेवाले एक सहस्र चान्द्रायण व्रतोंका अनुष्ठान करता है और जो केवल गङ्गाजल पीता है, वे दोनों समान ही हैं अथवा यह भी हो सकता है कि दोनों समान न हों (गङ्गाजल पीनेवाला बढ़ जाय)॥ ३९॥

तिष्ठेद् युगसहस्रं तु पदेनैकेन यः पुमान्।
मासमेकं तु गङ्गायां समौ स्यातां न वा समौ॥ ४०॥

जो पुरुष एक हजार युगोंतक एक पैरसे खड़ा होकर तपस्या करता है और जो एक मासतक गङ्गातटपर निवास करता है, वे दोनों समान हो सकते हैं अथवा यह भी सम्भव है कि समान न हों॥ ४०॥

लंबतेऽवाक्शिरा यस्तु युगानामयुतं पुमान्।
तिष्ठेद् यथेष्टं यश्चापि गङ्गायां स विशिष्यते॥ ४१॥

जो मनुष्य दस हजार युगोंतक नीचे सिर करके वृक्षमें लटका रहे और जो इच्छानुसार गङ्गाजीके तटपर निवास करे, उन दोनोंमें गङ्गाजीपर निवास करनेवाला ही श्रेष्ठ है॥ ४१॥

अग्नौ प्रास्तं प्रधूयेत यथा तूलं द्विजोत्तम।
तथा गङ्गावगाढस्य सर्वपापं प्रधूयते॥ ४२॥

द्विजश्रेष्ठ! जैसे आगमें डाली हुई रूई तुरंत जलकर भस्म हो जाती है, उसी प्रकार गङ्गामें गोता लगानेवाले मनुष्यके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं॥ ४२॥

भूतानामिह सर्वेषां दुःखोपहतचेतसाम्।
गतिमन्वेषमाणानां न गङ्गासदृशी गतिः॥ ४३॥

इस संसारमें दुःखसे व्याकुलचित्त होकर अपने लिये कोई आश्रय ढूँढ़नेवाले समस्त प्राणियोंके लिये गंगाजीके समान कोई दूसरा सहारा नहीं है॥ ४३॥

भवन्ति निर्विषाः सर्पा यथा तार्क्ष्यस्य दर्शनात्।
गङ्गाया दर्शनात् तद्वत् सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ४४॥

जैसे गरुड़को देखते ही सारे सर्पोंके विष झड़ जाते हैं, उसी प्रकार गङ्गाजीके दर्शनमात्रसे मनुष्य सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है॥ ४४॥

अप्रतिष्ठाश्च ये केचिदधर्मशरणाश्च ये।
तेषां प्रतिष्ठा गङ्गेह शरणं शर्म वर्म च॥ ४५॥

जगत्में जिनका कहीं आधार नहीं है; तथा जिन्होंने धर्मकी शरण नहीं ली है, उनका आधार और उन्हें शरण देनेवाली श्रीगङ्गाजी ही हैं। वे ही उसका कल्याण करनेवाली तथा कवचकी भाँति उसे सुरक्षित रखनेवाली हैं॥ ४५॥

प्रकृष्टैरशुभैर्ग्रस्ताननेकैः पुरुषाधमान्।
पततो नरके गङ्गा संश्रितान् प्रेत्य तारयेत्॥ ४६॥

जो नीच मानव अनेक बड़े-बड़े अमङ्गलकारी पापकर्मोंसे ग्रस्त होकर नरकमें गिरनेवाले हैं, वे भी यदि गङ्गाजीकी शरणमें आ जाते हैं तो ये मरनेके बाद उनका उद्धार कर देती हैं॥ ४६॥

ते संविभक्ता मुनिभिर्नूनं देवैः सवासवैः।
येऽभिगच्छन्ति सततं गङ्गां मतिमतां वर॥ ४७॥

बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण! जो लोग सदा गङ्गाजीकी यात्रा करते हैं, उनपर निश्चय ही इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता तथा मुनिलोग पृथक्-पृथक् कृपा करते आये हैं॥ ४७॥

विनयाचारहीनाश्च अशिवाश्च नराधमाः।
ते भवन्ति शिवा विप्र ये वै गङ्गामुपाश्रिताः॥ ४८॥

विप्रवर! विनय और सदाचारसे हीन अमङ्गलकारी नीच मनुष्य भी गङ्गाजीकी शरणमें जानेपर कल्याणस्वरूप हो जाते हैं॥ ४८॥

यथा सुराणाममृतं पितॄणां च यथा स्वधा।
सुधा यथा च नागानां तथा गङ्गाजलं नृणाम्॥ ४९॥

जैसे देवताओंको अमृत, पितरोंको स्वधा और नागोंको सुधा तृप्त करती है, उसी प्रकार मनुष्योंके लिये गंगाजल ही पूर्ण तृप्तिका साधन है॥ ४९॥

उपासते यथा बाला मातरं क्षुधयार्दिताः।
श्रेयस्कामास्तथा गङ्गामुपासन्तीह देहिनः॥ ५०॥

जैसे भूखसे पीड़ित हुए बच्चे माताके पास जाते हैं, उसी प्रकार कल्याणकी इच्छा रखनेवाले प्राणी इस जगत्में गङ्गाजीकी उपासना करते हैं॥ ५०॥

स्वायम्भुवं यथा स्थानं सर्वेषां श्रेष्ठमुच्यते।
स्नातानां सरितां श्रेष्ठा गङ्गा तद्वदिहोच्यते॥ ५१॥

जैसे ब्रह्मलोक सब लोकोंसे श्रेष्ठ बताया जाता है, वैसे ही स्नान करनेवाले पुरुषोंके लिये गङ्गाजी ही सब नदियोंमें श्रेष्ठ कही गयी हैं॥ ५१॥

यथोपजीविनां धेनुर्देवादीनां धरा स्मृता।
तथोपजीविनां गङ्गा सर्वप्राणभृतामिह॥ ५२॥

जैसे धेनुस्वरूपा पृथ्वी उपजीवी देवता आदिके लिये आदरणीय है, उसी प्रकार इस जगत्में गंगा समस्त उपजीवी प्राणियोंके लिये आदरणीय हैं॥ ५२॥

देवाः सोमार्कसंस्थानि यथा सत्रादिभिर्मखैः।
अमृतान्युपजीवन्ति तथा गङ्गाजलं नराः॥ ५३॥

जैसे देवता सत्र आदि यज्ञोंद्वारा चन्द्रमा और सूर्यमें स्थित अमृतसे आजीविका चलाते हैं, उसी प्रकार संसारके मनुष्य गंगाजलका सहारा लेते हैं॥ ५३॥

जाह्नवीपुलिनोत्थाभिः सिकताभिः समुक्षितम्।
आत्मानं मन्यते लोको दिविष्ठमिव शोभितम्॥ ५४॥

गंगाजीके तटसे उड़े हुए बालुका-कणोंसे अभिषिक्त हुए अपने शरीरको ज्ञानी पुरुष स्वर्गलोकमें स्थित हुआ-सा शोभासम्पन्न मानता है॥ ५४॥

जाह्नवीतीरसम्भूतां मृदं मूर्ध्ना बिभर्ति यः।
बिभर्ति रूपं सोऽर्कस्य तमोनाशाय निर्मलम्॥ ५५॥

जो मनुष्य गंगाके तीरकी मिट्टी अपने मस्तकमें लगाता है वह अज्ञानान्धकारका नाश करनेके लिये सूर्यके समान निर्मल स्वरूप धारण करता है॥ ५५॥

गङ्गोर्मिभिरथो दिग्धः पुरुषं पवनो यदा।
स्पृशते सोऽस्य पाप्मानं सद्य एवापकर्षति॥ ५६॥

गंगाकी तरंगमालाओंसे भीगकर बहनेवाली वायु जब मनुष्यके शरीरका स्पर्श करती है, उसी समय वह उसके सारे पापोंको नष्ट कर देती है॥ ५६॥

व्यसनैरभितप्तस्य नरस्य विनशिष्यतः।
गङ्गादर्शनजा प्रीतिर्व्यसनान्यपकर्षति॥ ५७॥

दुर्व्यसनजनित दुःखोंसे संतप्त होकर मरणासन्न हुआ मनुष्य भी यदि गंगाजीका दर्शन करे तो उसे इतनी प्रसन्नता होती है कि उसकी सारी पीड़ा तत्काल नष्ट हो जाती है॥ ५७॥

हंसारावैः कोकरवै रवैरन्यैश्च पक्षिणाम्।
पस्पर्ध गङ्गा गन्धर्वान् पुलिनैश्च शिलोच्चयान्॥ ५८॥

हंसोंकी मीठी वाणी, चक्रवाकोंके सुमधुर शब्द तथा अन्यान्य पक्षियोंके कलरवोंद्वारा गंगाजी गन्धर्वोंसे होड़ लगाती हैं तथा अपने ऊँचे-ऊँचे तटोंद्वारा पर्वतोंके साथ स्पर्धा करती हैं॥ ५८॥

हंसादिभिः सुबहुभिर्विविधैः पक्षिभिर्वृताम्।
गङ्गां गोकुलसम्बाधां दृष्ट्वा स्वर्गोऽपि विस्मृतः॥ ५९॥

हंस आदि बहुसंख्यक एवं विविध पक्षियोंसे घिरी हुई तथा गौओंके समुदायसे व्याप्त हुई गंगाजीको देखकर मनुष्य स्वर्गलोकको भी भूल जाता है॥ ५९॥

न सा प्रीतिर्दिविष्ठस्य सर्वकामानुपाश्नतः।
सम्भवेद् या परा प्रीतिर्गङ्गायाः पुलिने नृणाम्॥ ६०॥

गंगाजीके तटपर निवास करनेसे मनुष्योंको जो परम प्रीति—अनुपम आनन्द मिलता है वह स्वर्गमें रहकर सम्पूर्ण भोगोंका अनुभव करनेवाले पुरुषको भी नहीं प्राप्त हो सकता॥ ६०॥

वाङ्मनःकर्मजैर्ग्रस्तः पापैरपि पुमानिह।
वीक्ष्य गङ्गां भवेत् पूतो अत्र मे नास्ति संशयः॥ ६१॥

मन, वाणी और क्रियाद्वारा होनेवाले पापोंसे ग्रस्त मनुष्य भी गंगाजीका दर्शन करने मात्रसे पवित्र हो जाता है—इसमें मुझे संशय नहीं है॥ ६१॥

सप्तावरान् सप्त परान् पितॄंस्तेभ्यश्च ये परे।
पुमांस्तारयते गङ्गां वीक्ष्य स्पृष्ट्वावगाह्य च॥ ६२॥

गंगाजीका दर्शन, उनके जलका स्पर्श तथा उस जलके भीतर स्नान करके मनुष्य सात पीढ़ी पहलेके पूर्वजोंका और सात पीढ़ी आगे होनेवाली संतानोंका तथा इनसे भी ऊपरके पितरों और संतानोंका उद्धार कर देता है॥ ६२॥

श्रुताभिलषिता पीता स्पृष्टा दृष्टावगाहिता।
गङ्गा तारयते नृणामुभौ वंशौ विशेषतः॥ ६३॥

जो पुरुष गंगाजीका माहात्म्य सुनता, उनके तटपर जानेकी अभिलाषा रखता, उनका दर्शन करता, जल पीता, स्पर्श करता तथा उनके भीतर गोते लगाता है, उसके दोनों कुलोंका भगवती गंगा विशेषरूपसे उद्धार कर देती हैं॥ ६३॥

दर्शनात् स्पर्शनात् पानात् तथा गङ्गेति कीर्तनात्।
पुनात्यपुण्यान् पुरुषान् शतशोऽथ सहस्रशः॥ ६४॥

गंगाजी अपने दर्शन, स्पर्श, जलपान तथा अपने गंगानामके कीर्तनसे सैकड़ों और हजारों पापियोंको तार देती हैं॥ ६४॥

य इच्छेत् सफलं जन्म जीवितं श्रुतमेव च।
स पितॄंस्तर्पयेद् गाङ्गमभिगम्य सुरांस्तथा॥ ६५॥

जो अपने जन्म, जीवन और वेदाध्ययनको सफल बनाना चाहता हो वह गंगाजीके पास जाकर उनके जलसे देवताओं तथा पितरोंका तर्पण करे॥ ६५॥

न सुतैर्न च वित्तेन कर्मणा न च तत्फलम्।
प्राप्नुयात् पुरुषोऽत्यन्तं गङ्गां प्राप्य यदाप्नुयात्॥ ६६॥

मनुष्य गंगास्नान करके जिस अक्षय फलको प्राप्त

करता है उसे पुत्रोंसे, धनसे तथा किसी कर्मसे भी नहीं पा सकता॥ ६६॥

जात्यन्धैरिह तुल्यास्ते मृतैः पङ्गुभिरेव च।
समर्था ये न पश्यन्ति गङ्गां पुण्यजलां शिवाम्॥ ६७॥

जो सामर्थ्य होते हुए भी पवित्र जलवाली कल्याणमयी गंगाका दर्शन नहीं करते वे जन्मके अन्धों, पंगुओं और मुर्दोंके समान हैं॥ ६७॥

भूतभव्यभविष्यज्ञैर्महर्षिभिरुपस्थिताम् ।
देवैः सेन्द्रैश्च को गङ्गां नोपसेवेत मानवः॥ ६८॥

भूत, वर्तमान और भविष्यके ज्ञाता महर्षि तथा इन्द्र आदि देवता भी जिनकी उपासना करते हैं, उन गंगाजीका सेवन कौन मनुष्य नहीं करेगा?॥ ६८॥

वानप्रस्थैर्गृहस्थैश्च यतिभिर्ब्रह्मचारिभिः।
विद्यावद्भिः श्रितां गङ्गां पुमान् को नाम नाश्रयेत्॥ ६९॥

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी और विद्वान् पुरुष भी जिनकी शरण लेते हैं, ऐसी गंगाजीका कौन मनुष्य आश्रय नहीं लेगा?॥ ६९॥

उत्क्रामद्भिश्च यः प्राणः प्रयतः शिष्टसम्मतः।
चिन्तयेन्मनसा गङ्गां स गतिं परमां लभेत्॥ ७०॥

जो साधु पुरुषोंद्वारा सम्मानित तथा संयतचित्त मनुष्य प्राण निकलते समय मन-ही-मन गंगाजीका स्मरण करता है, वह परम उत्तम गतिको प्राप्त कर लेता है॥ ७०॥

न भयेभ्यो भयं तस्य न पापेभ्यो न राजतः।
आ देहपतनाद् गङ्गामुपास्ते यः पुमानिह॥ ७१॥

जो पुरुष यहाँ जीवनपर्यन्त गंगाजीकी उपासना करता है उसे भयदायक वस्तुओंसे, पापोंसे तथा राजासे भी भय नहीं होता॥ ७१॥

महापुण्यां च गगनात् पतन्तीं वै महेश्वरः।
दधार शिरसा गङ्गां तामेव दिवि सेवते॥ ७२॥

भगवान् महेश्वरने आकाशसे गिरती हुई परम पवित्र गंगाजीको सिरपर धारण किया, उन्हींका वे स्वर्गमें सेवन करते हैं॥ ७२॥

अलंकृतास्त्रयो लोकाः पथिभिर्विमलैस्त्रिभिः।
यस्तु तस्या जलं सेवेत् कृतकृत्यः पुमान् भवेत्॥ ७३॥

जिन्होंने तीन निर्मल मार्गोंद्वारा आकाश, पाताल तथा भूतल—इन तीन लोकोंको अलंकृत किया है उन गंगाजीके जलका जो मनुष्य सेवन करेगा वह कृतकृत्य हो जायगा॥ ७३॥

दिवि ज्योतिर्यथाऽऽदित्यः पितॄणां चैव चन्द्रमाः।
देवेशश्च तथा नॄणां गङ्गा च सरितां तथा॥ ७४॥

स्वर्गवासी देवताओंमें जैसे सूर्यका तेज श्रेष्ठ है, जैसे पितरोंमें चन्द्रमा तथा मनुष्योंमें राजाधिराज श्रेष्ठ है, उसी प्रकार समस्त सरिताओंमें गंगाजी उत्तम हैं॥ ७४॥

मात्रा पित्रा सुतैर्दारैर्विमुक्तस्य धनेन वा।
न भवेद्धि तथा दुःखं यथा गङ्गावियोगजम्॥ ७५॥

(गंगाजीमें भक्ति रखनेवाले पुरुषको) माता, पिता, पुत्र, स्त्री और धनका वियोग होनेपर भी उतना दुःख नहीं होता, जितना गंगाके बिछोहसे होता है॥ ७५॥

नारण्यैर्नेष्टविषयैर्न सुतैर्न धनागमैः।
तथा प्रसादो भवति गङ्गां वीक्ष्य यथा भवेत्॥ ७६॥

इसी प्रकार उसे गंगाजीके दर्शनसे जितनी प्रसन्नता होती है, उतनी वनके दर्शनोंसे, अभीष्ट विषयसे, पुत्रोंसे तथा धनकी प्राप्तिसे भी नहीं होती॥ ७६॥

पूर्णमिन्दुं यथा दृष्ट्वा नृणां दृष्टिः प्रसीदति।
तथा त्रिपथगां दृष्ट्वा नृणां दृष्टिः प्रसीदति॥ ७७॥

जैसे पूर्ण चन्द्रमाका दर्शन करके मनुष्योंकी दृष्टि प्रसन्न हो जाती है, उसी तरह त्रिपथगा गंगाका दर्शन करके मनुष्योंके नेत्र आनन्दसे खिल उठते हैं॥ ७७॥

तद्भावस्तद्गतमनास्तन्निष्ठस्तत्परायणः ।
गङ्गां योऽनुगतो भक्त्या स तस्याः प्रियतां व्रजेत्॥ ७८॥

जो गंगाजीमें श्रद्धा रखता, उन्हींमें मन लगाता, उन्हींके पास रहता, उन्हींका आश्रय लेता तथा भक्तिभावसे उन्हींका अनुसरण करता है वह भगवती भागीरथीका स्नेह-भाजन होता है॥ ७८॥

भूस्थैः स्वःस्थैर्दिविष्ठैश्च भूतैरुच्चावचैरपि।
गङ्गा विगाह्या सततमेतत् कार्यतमं सताम्॥ ७९॥

पृथ्वी, आकाश तथा स्वर्गमें रहनेवाले छोटे-बड़े सभी प्राणियोंको चाहिये कि वे निरन्तर गंगाजीमें स्नान करें। यही सत्पुरुषोंका सबसे उत्तम कार्य है॥ ७९॥

विश्वलोकेषु पुण्यत्वाद् गङ्गायाः प्रथितं यशः।
यत्पुत्रान्सगरस्येतो भस्माख्याननयद् दिवम्॥ ८०॥

सम्पूर्ण लोकोंमें परम पवित्र होनेके कारण गंगाजीका यश विख्यात है; क्योंकि उन्होंने भस्मीभूत होकर पड़े हुए सगरपुत्रोंको यहाँसे स्वर्गमें पहुँचा दिया॥ ८०॥

वाय्वीरिताभिः सुमनोहराभि-
द्रुताभिरत्यर्थसमुत्थिताभिः ।
गङ्गोर्मिभिर्भानुमतीभिरिद्धाः
सहस्ररश्मिप्रतिमा भवन्ति॥ ८१॥

वायुसे प्रेरित हो बड़े वेगसे अत्यन्त ऊँचे उठनेवाली गंगाजीकी परम मनोहर एवं कान्तिमयी तरंगमालाओंसे

नहाकर प्रकाशित होनेवाले पुरुष परलोकमें सूर्यके समान तेजस्वी होते हैं॥ ८१॥

पयस्विनीं घृतिनीमत्युदारां
समृद्धिनीं वेगिनीं दुर्विगाह्याम्।
गङ्गां गत्वा यैः शरीरं विसृष्टं
गता धीरास्ते विबुधैः समत्वम्॥ ८२॥

दुग्धके समान उज्ज्वल और घृतके समान स्निग्ध जलसे भरी हुई, परम उदार, समृद्धिशालिनी, वेगवती तथा अगाध जलराशिवाली गंगाजीके समीप जाकर जिन्होंने अपना शरीर त्याग दिया है वे धीर पुरुष देवताओंके समान हो गये॥ ८२॥

अन्धान् जडान् द्रव्यहीनांश्च गङ्गा
यशस्विनी बृहती विश्वरूपा।
देवैः सेन्द्रैर्मुनिभिर्मानवैश्च
निषेविता सर्वकामैर्युनक्ति॥ ८३॥

इन्द्र आदि देवता, मुनि और मनुष्य जिनका सदा सेवन करते हैं वे यशस्विनी, विशालकलेवरा, विश्वरूपा गंगादेवी अपनी शरणमें आये हुए अन्धों, जडों और धनहीनोंको भी सम्पूर्ण मनोवाञ्छित कामनाओंसे सम्पन्न कर देती हैं॥ ८३॥

ऊर्जावतीं महापुण्यां मधुमतीं त्रिवर्त्मगाम्।
त्रिलोकगोप्त्रीं ये गङ्गां संश्रितास्ते दिवं गताः॥ ८४॥

गंगाजी ओजस्विनी, परम पुण्यमयी, मधुर जलराशिसे परिपूर्ण तथा भूतल, आकाश और पाताल—इन तीन मार्गोंपर विचरनेवाली हैं। जो लोग तीनों लोकोंकी रक्षा करनेवाली गंगाजीकी शरणमें आये हैं, वे स्वर्गलोकको चले गये॥ ८४॥

यो वत्स्यति द्रक्ष्यति वापि मर्त्य-
स्तस्मै प्रयच्छन्ति सुखानि देवाः।
तद्भाविताः स्पर्शनदर्शनेन
इष्टां गतिं तस्य सुरा दिशन्ति॥ ८५॥

जो मनुष्य गंगाजीके तटपर निवास और उनका दर्शन करता है उसे सब देवता सुख देते हैं। जो गंगाजीके स्पर्श और दर्शनसे पवित्र हो गये हैं उन्हें गंगाजीसे ही महत्त्वको प्राप्त हुए देवता मनोवाञ्छित गति प्रदान करते हैं॥ ८५॥

दक्षां पृश्निं बृहतीं विप्रकृष्टां
शिवामृद्धां भागिनीं सुप्रसन्नाम्।
विभावरीं सर्वभूतप्रतिष्ठां
गङ्गां गता ये त्रिदिवं गतास्ते॥ ८६॥

गंगा जगत्का उद्धार करनेमें समर्थ हैं। भगवान् पृश्निगर्भकी जननी 'पृश्नि' के तुल्य हैं, विशाल हैं, सबसे उत्कृष्ट हैं, मंगलकारिणी हैं, पुण्यराशिसे समृद्ध हैं, शिवजीके द्वारा मस्तकपर धारित होनेके कारण सौभाग्यशालिनी तथा भक्तोंपर अत्यन्त प्रसन्न रहनेवाली हैं। इतना ही नहीं, पापोंका विनाश करनेके लिये वे कालरात्रिके समान हैं तथा सम्पूर्ण प्राणियोंकी आश्रयभूत हैं। जो लोग गंगाजीकी शरणमें गये हैं वे स्वर्गलोकमें जा पहुँचे हैं॥ ८६॥

ख्यातिर्यस्याः खं दिवं गां च नित्यं
पुरा दिशो विदिशश्चावतस्थे।
तस्या जलं सेव्य सरिद्वराया
मर्त्याः सर्वे कृतकृत्या भवन्ति॥ ८७॥

आकाश, स्वर्ग, पृथ्वी, दिशा और विदिशाओंमें भी जिनकी ख्याति फैली हुई है, सरिताओंमें श्रेष्ठ उन भगवती भागीरथीके जलका सेवन करके सभी मनुष्य कृतार्थ हो जाते हैं॥ ८७॥

इयं गङ्गेति नियतं प्रतिष्ठा
गुहस्य रुक्मस्य च गर्भयोषा।
प्रातस्त्रिवर्गा घृतवहा विपाप्मा
गङ्गावतीर्णा वियतो विश्वतोया॥ ८८॥

'ये गंगाजी हैं'—ऐसा कहकर जो दूसरे मनुष्योंको उनका दर्शन कराता है, उसके लिये भगवती भागीरथी सुनिश्चित प्रतिष्ठा (अक्षय पद प्रदान करनेवाली) हैं। वे कार्तिकेय और सुवर्णको अपने गर्भमें धारण करनेवाली, पवित्र जलकी धारा बहानेवाली और पाप दूर करनेवाली हैं। वे आकाशसे पृथ्वीपर उतरी हुई हैं। उनका जल सम्पूर्ण विश्वके लिये पीने योग्य है। उनमें प्रातःकाल स्नान करनेसे धर्म, अर्थ और काम तीनों वर्गोंकी सिद्धि होती है॥ ८८॥

(नारायणादक्षयात् पूर्वजाता
विष्णोः पादात् शिशुमाराद् ध्रुवाच्च।
सोमात् सूर्यान्मेरुरूपाच्च विष्णोः
समागता शिवमूर्ध्नो हिमाद्रिम्॥)

भगवती गंगा पूर्वकालमें अविनाशी भगवान् नारायणसे प्रकट हुई हैं। वे भगवान् विष्णुके चरण, शिशुमार चक्र, ध्रुव, सोम, सूर्य तथा मेरुरूप विष्णुसे अवतरित हो भगवान् शिवके मस्तकपर आयी हैं और वहाँसे हिमालय पर्वतपर गिरी हैं॥

सुतावनीध्रस्य हरस्य भार्या
दिवो भुवश्चापि कृतानुरूपा।

भव्या पृथिव्यां भागिनी चापि राजन्
गङ्गा लोकानां पुण्यदा वै त्रयाणाम्॥ ८९॥

गंगाजी गिरिराज हिमालयकी पुत्री, भगवान् शंकरकी पत्नी तथा स्वर्ग और पृथ्वीकी शोभा हैं। राजन्! वे भूमण्डलपर निवास करनेवाले प्राणियोंका कल्याण करनेवाली, परम सौभाग्यवती तथा तीनों लोकोंको पुण्य प्रदान करनेवाली हैं॥ ८९॥

मधुस्रवा घृतधारा घृतार्चि-
र्महोर्मिभिः शोभिता ब्राह्मणैश्च।
दिवश्च्युता शिरसाऽऽप्ता शिवेन
गङ्गावनीध्रात् त्रिदिवस्य माता॥ ९०॥

श्रीभागीरथी मधुका स्रोत एवं पवित्र जलकी धारा बहाती हैं। जलती हुई घीकी ज्वालाके समान उनका उज्ज्वल प्रकाश है। वे अपनी उत्ताल तरङ्गों तथा जलमें स्नान-संध्या करनेवाले ब्राह्मणोंसे सुशोभित होती हैं। वे जब स्वर्गसे नीचेकी ओर चलीं तब भगवान् शिवने उन्हें अपने सिरपर धारण किया। फिर हिमालय पर्वतपर आकर वहाँसे वे इस पृथ्वीपर उतरी हैं। श्रीगंगाजी स्वर्गलोककी जननी हैं॥ ९०॥

योनिर्वरिष्ठा विरजा वितन्वी
शय्याचिरा वारिवहा यशोदा।
विश्वावती चाकृतिरिष्टसिद्धा
गङ्गोक्षितानां भुवनस्य पन्थाः॥ ९१॥

सबका कारण, सबसे श्रेष्ठ, रजोगुणरहित, अत्यन्त सूक्ष्म, मरे हुए प्राणियोंके लिये सुखद शय्या, तीव्र वेगसे बहनेवाली, पवित्र जलका स्रोत बहानेवाली, यश देनेवाली, जगत्की रक्षा करनेवाली, सत्स्वरूपा तथा अभीष्टको सिद्ध करनेवाली भगवती गंगा अपने भीतर स्नान करनेवालोंके लिये स्वर्गका मार्ग बन जाती हैं॥

क्षान्त्या मह्या गोपने धारणे च
दीप्त्या कृशानोस्तपनस्य चैव।
तुल्या गङ्गा सम्मता ब्राह्मणानां
गुहस्य ब्रह्मण्यतया च नित्यम्॥ ९२॥

क्षमा, रक्षा तथा धारण करनेमें पृथ्वीके समान और तेजमें अग्नि एवं सूर्यके समान शोभा पानेवाली गंगाजी ब्राह्मणजातिपर सदा अनुग्रह करनेके कारण सुब्रह्मण्य कार्तिकेय तथा ब्राह्मणोंके लिये भी प्रिय एवं सम्मानित हैं॥ ९२॥

ऋषिष्टुतां विष्णुपदीं पुराणां
सुपुण्यतोयां मनसापि लोके।
सर्वात्मना जाह्नवीं ये प्रपन्ना-
स्ते ब्रह्मणः सदनं सम्प्रयाताः॥ ९३॥

ऋषियोंद्वारा जिनकी स्तुति होती है, जो भगवान् विष्णुके चरणोंसे उत्पन्न, अत्यन्त प्राचीन तथा परम पावन जलसे भरी हुई हैं, उन गंगाजीकी जगत्में जो लोग मनके द्वारा भी सब प्रकारसे शरण लेते हैं वे देहत्यागके पश्चात् ब्रह्मलोकमें जाते हैं॥ ९३॥

लोकानवेक्ष्य जननीव पुत्रान्
सर्वात्मना सर्वगुणोपपन्नान्।
तत्स्थानकं ब्राह्ममभीप्समानै-
र्गङ्गा सदैवात्मवशैरुपास्या॥ ९४॥

जैसे माता अपने पुत्रोंको स्नेहभरी दृष्टिसे देखती है और उनकी रक्षा करती है, उसी प्रकार गंगाजी सर्वात्मभावसे अपने आश्रयमें आये हुए सर्वगुणसम्पन्न लोकोंको कृपादृष्टिसे देखकर उनकी रक्षा करती हैं; अतः जो ब्रह्मलोकको प्राप्त करनेकी इच्छा रखते हैं उन्हें अपने मनको वशमें करके सदा मातृभावसे गंगाजीकी उपासना करनी चाहिये॥ ९४॥

उस्रां पुष्टां मिषतीं विश्वभोज्या-
मिरावतीं धारिणीं भूधराणाम्।
शिष्टाश्रयाममृतां ब्रह्मकान्तां
गङ्गां श्रयेदात्मवान् सिद्धिकामः॥ ९५॥

जो अमृतमय दूध देनेवाली, गौके समान सबको पुष्ट करनेवाली, सब कुछ देखनेवाली, सम्पूर्ण जगत्के उपयोगमें आनेवाली, अन्न देनेवाली तथा पर्वतोंको धारण करनेवाली हैं, श्रेष्ठ पुरुष जिनका आश्रय लेते हैं और जिन्हें ब्रह्माजी भी प्राप्त करना चाहते हैं; तथा जो अमृतस्वरूप हैं, उन भगवती गंगाजीका सिद्धिकामी जितात्मा पुरुषोंको अवश्य आश्रय लेना चाहिये॥ ९५॥

प्रसाद्य देवान् सविभून् समस्तान्
भगीरथस्तपसोग्रेण गङ्गाम्।
गामानयत् तामभिगम्य शश्वत्
पुंसां भयं नेह चामुत्र विद्यात्॥ ९६॥

राजा भगीरथ अपनी उग्र तपस्यासे भगवान् शंकरसहित सम्पूर्ण देवताओंको प्रसन्न करके गंगाजीको इस पृथ्वीपर ले आये। उनकी शरणमें जानेसे मनुष्यको इहलोक और परलोकमें भय नहीं रहता॥ ९६॥

उदाहृतः सर्वथा ते गुणानां
मयैकदेशः प्रसमीक्ष्य बुद्ध्या।

शक्तिर्न मे काचिदिहास्ति वक्तुं
गुणान् सर्वान् परिमातुं तथैव॥ ९७॥

ब्रह्मन्! मैंने अपनी बुद्धिसे सर्वथा विचारकर यहाँ गंगाजीके गुणोंका एक अंशमात्र बताया है। मुझमें कोई इतनी शक्ति नहीं है कि मैं यहाँ उनके सम्पूर्ण गुणोंका वर्णन कर सकूँ॥ ९७॥

मेरोः समुद्रस्य च सर्वयत्नैः
संख्योपलानामुदकस्य वापि।
शक्यं वक्तुं नेह गङ्गाजलानां
गुणाख्यानं परिमातुं तथैव॥ ९८॥

कदाचित् सब प्रकारके यत्न करनेसे मेरु गिरिके प्रस्तरकणों और समुद्रके जलविन्दुओंकी गणना की जा सके; परंतु यहाँ गंगाजलके गुणोंका वर्णन तथा गणना करना कदापि सम्भव नहीं है॥ ९८॥

तस्मादेतान् परया श्रद्धयोक्तान्
गुणान् सर्वान् जाह्नवीयान् सदैव।
भवेद् वाचा मनसा कर्मणा च
भक्त्या युक्तः श्रद्धया श्रद्दधानः॥ ९९॥

अतः मैंने बड़ी श्रद्धाके साथ जो ये गंगाजीके गुण बताये हैं, उन सबपर विश्वास करके मन, वाणी, क्रिया, भक्ति और श्रद्धाके साथ आप सदा ही उनकी आराधना करें॥ ९९॥

लोकानिमांस्त्रीन् यशसा वितत्य
सिद्धिं प्राप्य महतीं तां दुरापाम्।
गङ्गाकृतानचिरेणैव लोकान्
यथेष्टमिष्टान् विहरिष्यसि त्वम्॥ १००॥

इससे आप परम दुर्लभ उत्तम सिद्धि प्राप्त करके इन तीनों लोकोंमें अपने यशका विस्तार करते हुए शीघ्र ही गंगाजीकी सेवासे प्राप्त हुए अभीष्ट लोकोंमें इच्छानुसार विचरेंगे॥ १००॥

तव मम च गुणैर्महानुभावा
जुषतु मतिं सततं स्वधर्मयुक्तैः।
अभिमतजनवत्सला हि गङ्गा
जगति युनक्ति सुखैश्च भक्तिमन्तम्॥ १०१॥

महान् प्रभावशाली भगवती भागीरथी आपकी और मेरी बुद्धिको सदा स्वधर्मानुकूल गुणोंसे युक्त करें। श्रीगंगाजी बड़ी भक्तवत्सला हैं। वे संसारमें अपने भक्तोंको सुखी बनाती हैं॥ १०१॥

भीष्म उवाच

इति परममतिर्गुणानशेषान्
शिलरतये त्रिपथानुयोगरूपान्।
बहुविधमनुशास्य तथ्यरूपान्
गगनतलं द्युतिमान् विवेश सिद्धः॥ १०२॥

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर! वह उत्तम बुद्धिवाला परम तेजस्वी सिद्ध शिलोञ्छवृत्तिद्वारा जीविका चलानेवाले उस ब्राह्मणसे त्रिपथगा गंगाजीके उपर्युक्त सभी यथार्थ गुणोंका नाना प्रकारसे वर्णन करके आकाशमें प्रविष्ट हो गया॥ १०२॥

शिलवृत्तिस्तु सिद्धस्य वाक्यैः सम्बोधितस्तदा।
गङ्गामुपास्य विधिवत् सिद्धिं प्राप सुदुर्लभाम्॥ १०३॥

वह शिलोञ्छवृत्तिवाला ब्राह्मण सिद्धके उपदेशसे गंगाजीके माहात्म्यको जानकर उनकी विधिवत् उपासना करके परम दुर्लभ सिद्धिको प्राप्त हुआ॥ १०३॥

तथा त्वमपि कौन्तेय भक्त्या परमया युतः।
गङ्गामभ्येहि सततं प्राप्स्यसे सिद्धिमुत्तमाम्॥ १०४॥

कुन्तीनन्दन! इसी प्रकार तुम भी पराभक्तिके साथ सदा गंगाजीकी उपासना करो। इससे तुम्हें उत्तम सिद्धि प्राप्त होगी॥ १०४॥

वैशम्पायन उवाच

श्रुत्वेतिहासं भीष्मोक्तं गङ्गायाः स्तवसंयुतम्।
युधिष्ठिरः परां प्रीतिमगच्छद् भ्रातृभिः सह॥ १०५॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! भीष्मजीके द्वारा कहे हुए श्रीगंगाजीकी स्तुतिसे युक्त इस इतिहासको सुनकर भाइयोंसहित राजा युधिष्ठिरको बड़ी प्रसन्नता हुई॥ १०५॥

इतिहासमिमं पुण्यं शृणुयाद् यः पठेत वा।
गङ्गायाः स्तवसंयुक्तं स मुच्येत् सर्वकिल्बिषैः॥ १०६॥

जो गङ्गाजीके स्तवनसे युक्त इस पवित्र इतिहासका श्रवण अथवा पाठ करेगा वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जायगा॥ १०६॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि गङ्गामाहात्म्यकथने षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत अनुशासनपर्वके अन्तर्गत दानधर्मपर्वमें गंगाजीके माहात्म्यका वर्णनविषयक छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २६॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल १०७ श्लोक हैं)

सप्तविंशोऽध्यायः

ब्राह्मणत्वके लिये तपस्या करनेवाले मतङ्गकी इन्द्रसे बातचीत

युधिष्ठिर उवाच

प्रज्ञाश्रुताभ्यां वृत्तेन शीलेन च यथा भवान्।
गुणैश्च विविधैः सर्वैर्वयसा च समन्वितः॥ १॥
भवान् विशिष्टो बुद्ध्या च प्रज्ञया तपसा तथा।
तस्माद् भवन्तं पृच्छामि धर्मं धर्मभृतां वर।
नान्यस्त्वदन्यो लोकेषु प्रष्टव्योऽस्ति नराधिप॥ २॥

युधिष्ठिरने पूछा—धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ नरेश्वर! आप बुद्धि, विद्या, सदाचार, शील और विभिन्न प्रकारके सम्पूर्ण सद्गुणोंसे सम्पन्न हैं। आपकी अवस्था भी सबसे बड़ी है। आप बुद्धि, प्रज्ञा और तपस्यासे विशिष्ट हैं; अतः मैं आपसे धर्मकी बात पूछता हूँ। संसारमें आपके सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं है जिससे सब प्रकारके प्रश्न पूछे जा सकें॥ १-२॥

क्षत्रियो यदि वा वैश्यः शूद्रो वा राजसत्तम।
ब्राह्मण्यं प्राप्नुयाद् येन तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ ३॥

नृपश्रेष्ठ! यदि क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र ब्राह्मणत्व प्राप्त करना चाहे तो वह किस उपायसे उसे पा सकता है? यह मुझे बताइये॥ ३॥

तपसा वा सुमहता कर्मणा वा श्रुतेन वा।
ब्राह्मण्यमथ चेदिच्छेत् तन्मे ब्रूहि पितामह॥ ४॥

पितामह! यदि कोई ब्राह्मणत्व पानेकी इच्छा करे तो वह उसे तपस्या, महान् कर्म अथवा वेदोंके स्वाध्याय आदि किस उपायसे प्राप्त कर सकता है? ॥ ४॥

भीष्म उवाच

ब्राह्मण्यं तात दुष्प्राप्यं वर्णैः क्षत्रादिभिस्त्रिभिः।
परं हि सर्वभूतानां स्थानमेतद् युधिष्ठिर॥ ५॥

भीष्मजीने कहा—तात युधिष्ठिर! क्षत्रिय आदि तीन वर्णोंके लिये ब्राह्मणत्व प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि यह समस्त प्राणियोंके लिये सर्वोत्तम स्थान है॥ ५॥

बह्वीस्तु संसरन् योनीर्जायमानः पुनः पुनः।
पर्याये तात कस्मिंश्चिद् ब्राह्मणो नाम जायते॥ ६॥

तात! बहुत-सी योनियोंमें बारंबार जन्म लेते-लेते कभी किसी समय संसारी जीव ब्राह्मणकी योनिमें जन्म लेता है॥ ६॥

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
मतङ्गस्य च संवादं गर्दभ्याश्च युधिष्ठिर॥ ७॥

युधिष्ठिर! इस विषयमें जानकार मनुष्य मतङ्ग और गर्दभीके संवादरूप इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं॥ ७॥

द्विजातेः कस्यचित् तात तुल्यवर्णः सुतस्त्वभूत्।
मतङ्गो नाम नाम्ना वै सर्वैः समुदितो गुणैः॥ ८॥

तात! पूर्वकालमें किसी ब्राह्मणके एक मतङ्ग नामक पुत्र हुआ जो (अन्य वर्णके पुरुषसे उत्पन्न होनेपर भी ब्राह्मणोचित संस्कारोंके प्रभावसे) उनके समान वर्णका ही समझा जाता था, वह समस्त सद्गुणोंसे सम्पन्न था॥ ८॥

स यज्ञकारः कौन्तेय पित्रोत्सृष्टः परंतप।
प्रायाद् गर्दभयुक्तेन रथेनाप्याशुगामिना॥ ९॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले कुन्तीकुमार! एक दिन अपने पिताके भेजनेपर मतंग किसी यजमानका यज्ञ करानेके लिये गधोंसे जुते हुए शीघ्रगामी रथपर बैठकर चला॥ ९॥

स बालं गर्दभं राजन् वहन्तं मातुरन्तिके।
निरविध्यत् प्रतोदेन नासिकायां पुनः पुनः॥ १०॥

राजन्! रथका बोझ ढोते हुए एक छोटी अवस्थाके गधेको उसकी माताके निकट ही मतंगने बारंबार चाबुकसे मारकर उसकी नाकमें घाव कर दिया॥ १०॥

तत्र तीव्रं व्रणं दृष्ट्वा गर्दभी पुत्रगृद्धिनी।
उवाच मा शुचः पुत्र चाण्डालस्त्वधितिष्ठति॥ ११॥

पुत्रका भला चाहनेवाली गधी उस गधेकी नाकमें दुस्सह घाव हुआ देख उसे समझाती हुई बोली—'बेटा! शोक न करो। तुम्हारे ऊपर ब्राह्मण नहीं, चाण्डाल सवार है॥ ११॥

ब्राह्मणे दारुणं नास्ति मैत्रो ब्राह्मण उच्यते।
आचार्यः सर्वभूतानां शास्ता किं प्रहरिष्यति॥ १२॥

'ब्राह्मणमें इतनी क्रूरता नहीं होती। ब्राह्मण सबके प्रति मैत्रीभाव रखनेवाला बताया जाता है। जो समस्त प्राणियोंको उपदेश देनेवाला आचार्य है, वह कैसे किसीपर प्रहार करेगा?॥ १२॥

अयं तु पापप्रकृतिर्बालेे न कुरुते दयाम्।
स्वयोनिं मानयत्येष भावो भावं नियच्छति॥ १३॥

यह स्वभावसे ही पापात्मा है; इसीलिये दूसरेके बच्चेपर दया नहीं करता है। यह अपने इस कुकृत्यद्वारा

अपनी चाण्डाल योनिका ही सम्मान बढ़ा रहा है। जातिगत स्वभाव ही मनोभावपर नियन्त्रण करता है॥ १३॥

एतत् श्रुत्वा मतङ्गस्तु दारुणं रासभीवचः।
अवतीर्य रथात् तूर्णं रासभीं प्रत्यभाषत॥ १४॥

गधीका यह दारुण वचन सुनकर मतंग तुरंत रथसे उतर पड़ा और गधीसे इस प्रकार बोला—॥ १४॥

ब्रूहि रासभि कल्याणि माता मे येन दूषिता।
कथं मां वेत्सि चण्डालं क्षिप्रं रासभि शंस मे॥ १५॥

'कल्याणमयी गर्दभी! बता, मेरी माता किससे कलंकित हुई है? तू मुझे चाण्डाल कैसे समझती है? शीघ्र मुझसे सारी बात बता॥ १५॥

कथं मां वेत्सि चण्डालं ब्राह्मण्यं येन नश्यते।
तत्त्वेनैतन्महाप्राज्ञे ब्रूहि सर्वमशेषतः॥ १६॥

गधी! तुझे कैसे मालूम हुआ कि मैं चाण्डाल हूँ? किस कर्मसे मेरा ब्राह्मणत्व नष्ट हुआ है? तू बड़ी समझदार है; अतः ये सारी बातें मुझे ठीक-ठीक बता'॥

गर्दभ्युवाच

ब्राह्मण्यां वृषलेन त्वं मत्तायां नापितेन ह।
जातस्त्वमसि चाण्डालो ब्राह्मण्यं तेन तेऽनशत्॥ १७॥

गदही बोली—मतंग! तू यौवनके मदसे मतवाली हुई एक ब्राह्मणीके पेटसे शूद्रजातीय नाईद्वारा पैदा किया गया, इसीलिये तू चाण्डाल है और तेरी माताके इसी व्यभिचार कर्मसे तेरा ब्राह्मणत्व नष्ट हो गया है॥ १७॥

एवमुक्तो मतङ्गस्तु प्रतिप्रायाद् गृहं प्रति।
तमागतमभिप्रेक्ष्य पिता वाक्यमथाब्रवीत्॥ १८॥

गदहीके ऐसा कहनेपर मतंग फिर अपने घरको लौट गया। उसे लौटकर आया देख पिताने इस प्रकार कहा—॥ १८॥

मया त्वं यज्ञसंसिद्धौ नियुक्तो गुरुकर्मणि।
कस्मात् प्रतिनिवृत्तोऽसि कच्चिन्न कुशलं तव॥ १९॥

बेटा! मैंने तो तुम्हें यज्ञ करानेके भारी कार्यपर लगा रखा था, फिर तुम लौट कैसे आये? तुम कुशलसे तो हो न?॥ १९॥

मतंग उवाच

अन्ययोनिरयोनिर्वा कथं स कुशली भवेत्।
कुशलं तु कुतस्तस्य यस्येयं जननी पितः॥ २०॥

मतंगने कहा—पिताजी! जो चाण्डाल योनिमें उत्पन्न हुआ है, अथवा उससे भी नीच योनिमें पैदा हुआ है वह कैसे सकुशल रह सकता है। जिसे ऐसी माता मिली हो उसे कहाँसे कुशलता प्राप्त होगी॥ २०॥

ब्राह्मण्यां वृषलाज्जातं पितर्वेदयतीव माम्।
अमानुषी गर्दभीयं तस्मात् तप्स्ये तपो महत्॥ २१॥

पिताजी! यह मानवेतर योनिमें उत्पन्न हुई गदही मुझे ब्राह्मणीके गर्भसे शूद्रद्वारा पैदा हुआ बता रही है; इसलिये अब मैं महान् तपमें लग जाऊँगा॥ २१॥

एवमुक्त्वा स पितरं प्रतस्थे कृतनिश्चयः।
ततो गत्वा महारण्यमतपत् सुमहत् तपः॥ २२॥

पितासे ऐसा कहकर मतंग तपस्याके लिये दृढ़ निश्चय करके घरसे निकल पड़ा और एक महान् वनमें जाकर वहाँ बड़ी भारी तपस्या करने लगा॥ २२॥

ततः स तापयामास विबुधांस्तपसान्वितः।
मतङ्गः सुखसम्प्रेप्सुः स्थानं सुचरितादपि॥ २३॥

तपस्यामें संलग्न हो मतंगने देवताओंको संतप्त कर दिया। वह भलीभाँति तपस्या करके सुखसे ही ब्राह्मणत्वरूपी अभीष्ट स्थानको प्राप्त करना चाहता था॥

तं तथा तपसा युक्तमुवाच हरिवाहनः।
मतङ्ग तप्स्यसे किं त्वं भोगानुत्सृज्य मानुषान्॥ २४॥

उसे इस प्रकार तपस्यामें संलग्न देख इन्द्रने कहा—'मतंग! तुम क्यों मानवीय भोगोंका परित्याग करके तपस्या कर रहे हो?॥ २४॥

वरं ददामि ते हन्त वृणीष्व त्वं यदिच्छसि।
यच्चाप्यवाप्यं हृदि ते सर्वं तद् ब्रूहि माचिरम्॥ २५॥

मैं तुम्हें वर देता हूँ। तुम जो चाहते हो उसे प्रसन्नतापूर्वक माँग लो। तुम्हारे हृदयमें जो कुछ पानेकी अभिलाषा हो, वह सब शीघ्र बताओ'॥ २५॥

मतंग उवाच

ब्राह्मण्यं कामयानोऽहमिदमारब्धवांस्तपः।
गच्छेयं तदवाप्येह वर एष वृतो मया॥ २६॥

मतंगने कहा—मैंने ब्राह्मणत्व प्राप्त करनेकी इच्छासे यह तपस्या प्रारम्भ की है। उसे पा करके ही यहाँसे जाऊँ, मैं यही वर चाहता हूँ॥ २६॥

भीष्म उवाच

एतत् श्रुत्वा तु वचनं तमुवाच पुरंदरः।
मतङ्ग दुर्लभमिदं विप्रत्वं प्रार्थ्यते त्वया॥ २७॥

भीष्मजी कहते हैं—भारत! मतंगकी यह बात सुनकर इन्द्रदेवने कहा—'मतंग! तुम जो ब्राह्मणत्व माँग रहे हो, यह तुम्हारे लिये दुर्लभ है'॥ २७॥

ब्राह्मण्यं प्रार्थयानस्त्वमप्राप्यमकृतात्मभिः।
विनशिष्यसि दुर्बुद्धे तदुपारम माचिरम्॥ २८॥

जिनका अन्त:करण शुद्ध नहीं है अथवा जो पुण्यात्मा नहीं हैं, उनके लिये ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति असम्भव है। दुर्बुद्धे! तुम ब्राह्मणत्व माँगते-माँगते मर जाओगे तो भी वह नहीं मिलेगा; अत: इस दुराग्रहसे जितना शीघ्र सम्भव हो निवृत्त हो जाओ॥ २८॥

श्रेष्ठतां सर्वभूतेषु तपोऽर्थं नातिवर्तते।
तदग्र्यं प्रार्थयानस्त्वमचिराद् विनशिष्यसि॥ २९॥

'सम्पूर्ण भूतोंमें श्रेष्ठता ही ब्राह्मणत्व है और यही तुम्हारा अभीष्ट प्रयोजन है, परंतु यह तप उस प्रयोजनको सिद्ध नहीं कर सकता; अत: इस श्रेष्ठ पदकी अभिलाषा रखते हुए तुम शीघ्र ही नष्ट हो जाओगे॥ २९॥

देवतासुरमर्त्येषु यत् पवित्रं परं स्मृतम्।
चण्डालयोनौ जातेन न तत् प्राप्यं कथंचन॥ ३०॥

'देवताओं, असुरों और मनुष्योंमें भी जो परम पवित्र माना गया है उस ब्राह्मणत्वको चाण्डालयोनिमें उत्पन्न हुआ मनुष्य किसी तरह नहीं पा सकता'॥ ३०॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि इन्द्रमतङ्गसंवादे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत अनुशासनपर्वके अन्तर्गत दानधर्मपर्वमें इन्द्र और मतंगका संवादविषयक सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २७॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

ब्राह्मणत्व प्राप्त करनेका आग्रह छोड़कर दूसरा वर माँगनेके लिये इन्द्रका मतङ्गको समझाना

भीष्म उवाच

एवमुक्तो मतङ्गस्तु संशितात्मा यतव्रतः।
अतिष्ठदेकपादेन वर्षाणां शतमच्युतः॥ १॥

भीष्मजी कहते हैं—राजन्! इन्द्रके ऐसा कहनेपर मतंगका मन और भी दृढ़ हो गया। वह संयमपूर्वक उत्तम व्रतका पालन करने लगा। अपने धैर्यसे च्युत न होनेवाला मतंग सौ वर्षोंतक एक पैरसे खड़ा रहा॥ १॥

तमुवाच ततः शक्रः पुनरेव महायशाः।
ब्राह्मण्यं दुर्लभं तात प्रार्थयानो न लप्स्यसे॥ २॥

तब महायशस्वी इन्द्रने पुन: आकर उससे कहा—'तात! ब्राह्मणत्व दुर्लभ है। उसे माँगनेपर भी पा न सकोगे॥ २॥

मतङ्ग परमं स्थानं प्रार्थयन् विनशिष्यसि।
मा कृथाः साहसं पुत्र नैष धर्मपथस्तव॥ ३॥

मतंग! तुम इस उत्तम स्थानको माँगते-माँगते मर जाओगे। बेटा! दु:साहस न करो। तुम्हारे लिये यह धर्मका मार्ग नहीं है॥ ३॥

न हि शक्यं त्वया प्राप्तुं ब्राह्मण्यमिह दुर्मते।
अप्राप्यं प्रार्थयानो हि नचिराद् विनशिष्यसि॥ ४॥

'दुर्मते! तुम इस जीवनमें ब्राह्मणत्व नहीं पा सकते। उस अप्राप्य वस्तुके लिये प्रार्थना करते-करते शीघ्र ही कालके गालमें चले जाओगे॥ ४॥

मतङ्ग परमं स्थानं वार्यमाणोऽसकृन्मया।
चिकीर्षस्येव तपसा सर्वथा न भविष्यसि॥ ५॥

'मतंग! मैं तुम्हें बार-बार मना करता हूँ तो भी उस उत्कृष्ट स्थानको तुम तपस्याद्वारा प्राप्त करनेकी अभिलाषा करते ही जाते हो। ऐसा करनेसे सर्वथा तुम्हारी सत्ता मिट जायगी॥ ५॥

तिर्यग्योनिगतः सर्वो मानुष्यं यदि गच्छति।
स जायते पुल्कसो वा चण्डालो वाप्यसंशयः॥ ६॥

'पशु-पक्षीकी योनिमें पड़े हुए सभी प्राणी यदि कभी मनुष्ययोनिमें जाते हैं तो पहले पुल्कस या चाण्डालके रूपमें जन्म लेते हैं—इसमें संशय नहीं है॥ ६॥

पुल्कसः पापयोनिर्वा यः कश्चिदिह लक्ष्यते।
स तस्यामेव सुचिरं मतङ्ग परिवर्तते॥ ७॥

'मतंग! पुल्कस या जो कोई भी पापयोनि पुरुष यहाँ दिखायी देता है वह सुदीर्घकालतक अपनी उसी योनिमें चक्कर लगाता रहता है॥ ७॥

ततो दशशते काले लभते शूद्रतामपि।
शूद्रयोनावपि ततो बहुशः परिवर्तते॥ ८॥

'तदनन्तर एक हजार वर्ष बीतनेपर वह चाण्डाल या पुल्कस शूद्रयोनिमें जन्म लेता है और उसमें भी अनेक जन्मोंतक चक्कर लगाता रहता है॥ ८॥

ततस्त्रिंशद्गुणे काले लभते वैश्यतामपि।
वैश्यतायां चिरं कालं तत्रैव परिवर्तते॥ ९॥

'तत्पश्चात् तीसगुना समय बीतनेपर वह वैश्य-योनिमें आता है और चिरकालतक उसीमें चक्कर

काटता रहता है॥ ९॥

ततः षष्टिगुणे काले राजन्यो नाम जायते।
ततः षष्टिगुणे काले लभते ब्रह्मबन्धुताम्॥ १०॥

इसके बाद साठगुना समय बीतनेपर वह क्षत्रियकी योनिमें जन्म लेता है। फिर उससे भी साठगुना समय बीतनेपर वह गिरे हुए ब्राह्मणके घरमें जन्म लेता है॥ १०॥

ब्रह्मबन्धुश्चिरं कालं ततस्तु परिवर्तते।
ततस्तु द्विशते काले लभते काण्डपृष्ठताम्॥ ११॥

'दीर्घकालतक ब्राह्मणाधम रहकर जब उसकी अवस्था परिवर्तित होती है तब वह अस्त्र-शस्त्रोंसे जीविका चलानेवाले ब्राह्मणके यहाँ जन्म लेता है॥ ११॥

काण्डपृष्ठिश्चिरं कालं तत्रैव परिवर्तते।
ततस्तु त्रिशते काले लभते जपतामपि॥ १२॥

फिर चिरकालतक वह उसी योनिमें पड़ा रहता है। तदनन्तर तीन सौ वर्षका समय व्यतीत होनेपर वह गायत्री-मात्रका जप करनेवाले ब्राह्मणके यहाँ जन्म लेता है॥ १२॥

तं च प्राप्य चिरं कालं तत्रैव परिवर्तते।
ततश्चतुःशते काले श्रोत्रियो नाम जायते।
श्रोत्रियत्वे चिरं कालं तत्रैव परिवर्तते॥ १३॥

उस जन्मको पाकर वह चिरकालतक उसी योनिमें जन्मता-मरता रहता है। फिर चार सौ वर्षोंका समय व्यतीत होनेपर वह श्रोत्रिय (वेदवेत्ता) ब्राह्मणके कुलमें जन्म लेता है और उसी कुलमें चिरकालतक उसका आवागमन होता रहता है॥ १३॥

तदेवं शोकहर्षौ तु कामद्वेषौ च पुत्रक।
अतिमानातिवादौ च प्रविशेते द्विजाधमम्॥ १४॥

बेटा! इस प्रकार शोक-हर्ष, राग-द्वेष, अतिमान और अतिवाद आदि दोषोंका अधम द्विजके भीतर प्रवेश होता है॥ १४॥

तांश्चेज्जयति शत्रून् स तदा प्राप्नोति सद्गतिम्।
अथ ते वै जयन्त्येनं तालाग्रादिव पात्यते॥ १५॥

यदि वह इन शत्रुओंको जीत लेता है तो सद्गतिको प्राप्त होता है और यदि वे शत्रु ही उसे जीत लेते हैं तो ताड़के वृक्षके ऊपरसे गिरनेवाले फलकी भाँति वह नीचे गिरा दिया जाता है॥ १५॥

मतङ्ग सम्प्रधार्यैवं यदहं त्वामचूचुदम्।
वृणीष्व काममन्यं त्वं ब्राह्मण्यं हि सुदुर्लभम्॥ १६॥

'मतंग! यही सोचकर मैंने तुमसे कहा था कि तुम कोई दूसरी अभीष्ट वस्तु माँग लो; क्योंकि ब्राह्मणत्व अत्यन्त दुर्लभ है'॥ १६॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि इन्द्रमतङ्गसंवादे अष्टाविंशोऽध्यायः॥ २८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत अनुशासनपर्वके अन्तर्गत दानधर्मपर्वमें इन्द्र और मतङ्गका संवादविषयक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २८॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

मतङ्गकी तपस्या और इन्द्रका उसे वरदान देना

भीष्म उवाच

एवमुक्तो मतङ्गस्तु संशितात्मा यतव्रतः।
सहस्रमेकपादेन ततो ध्याने व्यतिष्ठत॥ १॥

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर! इन्द्रके ऐसा कहनेपर मतंग अपने मनको और भी दृढ़ और संयमशील बनाकर एक हजार वर्षोंतक एक पैरसे ध्यान लगाये खड़ा रहा॥ १॥

तं सहस्रावरे काले शक्रो द्रष्टुमुपागमत्।
तदेव च पुनर्वाक्यमुवाच बलवृत्रहा॥ २॥

जब एक हजार वर्ष पूरे होनेमें कुछ ही बाकी था, उस समय बल और वृत्रासुरके शत्रु देवराज इन्द्र फिर मतंगको देखनेके लिये आये और पुनः उससे उन्होंने पहलेकी कही हुई बात ही दुहरायी॥ २॥

मतङ्ग उवाच

इदं वर्षसहस्रं वै ब्रह्मचारी समाहितः।
अतिष्ठमेकपादेन ब्राह्मण्यं नाप्नुयां कथम्॥ ३॥

मतंगने कहा— देवराज! मैंने ब्रह्मचर्य-पालनपूर्वक एकाग्रचित्त हो एक हजार वर्षोंतक एक पैरसे खड़ा होकर तप किया है। फिर मुझे ब्राह्मणत्व कैसे नहीं प्राप्त हो सकता?॥ ३॥

शक्र उवाच

चण्डालयोनौ जातेन नावाप्यं वै कथंचन।
अन्यं कामं वृणीष्व त्वं मा वृथा तेऽस्त्वयं श्रमः॥ ४॥

इन्द्रने कहा—मतंग! चाण्डालकी योनिमें जन्म

लेनेवालेको किसी तरह ब्राह्मणत्व नहीं मिल सकता; इसलिये तुम दूसरी कोई अभीष्ट वस्तु माँग लो। जिससे तुम्हारा यह परिश्रम व्यर्थ न जाय॥ ४॥

एवमुक्तो मतङ्गस्तु भृशं शोकपरायणः।
अध्यतिष्ठद् गयां गत्वा सोंऽगुष्ठेन शतं समाः॥ ५॥

उनके ऐसा कहनेपर मतंग अत्यन्त शोकमग्न हो गयामें जाकर अंगूठेके बलपर सौ वर्षोंतक खड़ा रहा॥ ५॥

सुदुर्वहं वहन् योगं कृशो धमनिसंततः।
त्वगस्थिभूतो धर्मात्मा स पपातेति नः श्रुतम्॥ ६॥

उसने दुर्धर योगका अनुष्ठान किया। उसका सारा शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया। नस-नाड़ियाँ उघड़ आयीं। धर्मात्मा मतंगका शरीर चमड़ेसे ढकी हुई हड्डियोंका ढाँचामात्र रह गया। उस अवस्थामें अपनेको न सँभाल सकनेके कारण वह गिर पड़ा—यह बात हमारे सुननेमें आयी है॥ ६॥

तं पतन्तमभिद्रुत्य परिजग्राह वासवः।
वराणामीश्वरो दाता सर्वभूतहिते रतः॥ ७॥

उसे गिरते देख सम्पूर्ण भूतोंके हितमें तत्पर रहनेवाले वर देनेमें समर्थ इन्द्रने दौड़कर पकड़ लिया॥

शक्र उवाच

मतङ्ग ब्राह्मणत्वं ते विरुद्धमिह दृश्यते।
ब्राह्मण्यं दुर्लभतरं संवृतं परिपन्थिभिः॥ ८॥

इन्द्रने कहा—मतंग! इस जन्ममें तुम्हारे लिये ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति असम्भव दिखायी देती है। ब्राह्मणत्व अत्यन्त दुर्लभ है; साथ ही वह काम-क्रोध आदि लुटेरोंसे घिरा हुआ है॥ ८॥

पूजयन् सुखमाप्नोति दुःखमाप्नोत्यपूजयन्।
ब्राह्मणः सर्वभूतानां योगक्षेमसमर्पिता॥ ९॥

जो ब्राह्मणका आदर करता है वह सुख पाता है, और जो अनादर करता है वह दुःख पाता है। ब्राह्मण समस्त प्राणियोंको योगक्षेमकी प्राप्ति करानेवाला है॥ ९॥

ब्राह्मणेभ्योऽनुतृप्यन्ते पितरो देवतास्तथा।
ब्राह्मणः सर्वभूतानां मतंग पर उच्यते॥ १०॥

मतंग! ब्राह्मणोंके तृप्त होनेसे ही देवता और पितर भी तृप्त होते हैं। ब्राह्मणको समस्त प्राणियोंमें सर्वश्रेष्ठ कहा जाता है॥ १०॥

ब्राह्मणः कुरुते तद्धि यथा यद् यच्च वाञ्छति।
वह्वीस्तु संविशन् योनीर्जायमानः पुनः पुनः॥ ११॥
पर्याये तात कस्मिंश्चिद् ब्राह्मण्यमिह विन्दति।

ब्राह्मण जो-जो जिस प्रकार करना चाहता है, अपने तपके प्रभावसे वैसा ही कर सकता है। तात! जीव इस जगत्के भीतर अनेक योनियोंमें भ्रमण करता हुआ बारंबार जन्म लेता है। इसी तरह जन्म लेते-लेते कभी किसी समयमें वह ब्राह्मणत्वको प्राप्त कर लेता है॥ ११½॥

तदुत्सृज्येह दुष्प्रापं ब्राह्मण्यमकृतात्मभिः॥ १२॥
अन्यं वरं वृणीष्व त्वं दुर्लभोऽयं हि ते वरः।

अतः जिनका मन अपने वशमें नहीं है, ऐसे लोगोंके लिये सर्वथा दुष्प्राप्य ब्राह्मणत्वको पानेका आग्रह छोड़कर तुम कोई दूसरा ही वर माँगो। यह वर तो तुम्हारे लिये दुर्लभ ही है॥ १२½॥

मतंग उवाच

किं मां तुदसि दुःखार्तं मृतं मारयसे च माम्॥ १३॥
त्वां तु शोचामि यो लब्ध्वा ब्राह्मण्यं न बुभूषसे।

मतंगने कहा—देवराज! मैं तो यों ही दुःखसे आतुर हो रहा हूँ, फिर तुम भी क्यों मुझे पीड़ा दे रहे हो? मुझ मरे हुए को क्यों मारते हो? मैं तो तुम्हारे लिये शोक करता हूँ, जो जन्मसे ही ब्राह्मणत्वको पाकर भी तुम उसे अपना नहीं रहे हो॥ १३½॥

ब्राह्मण्यं यदि दुष्प्रापं त्रिभिर्वर्णैः शतक्रतो॥ १४॥
सुदुर्लभं सदावाप्य नानुतिष्ठन्ति मानवाः।

शतक्रतो! यदि क्षत्रिय आदि तीन वर्णोंके लिये ब्राह्मणत्व दुर्लभ है तो उस परम दुर्लभ ब्राह्मणत्वको पाकर भी मनुष्य ब्राह्मणोचित शम-दमका अनुष्ठान नहीं करते हैं। यह कितने दुःखकी बात है! ॥ १४½॥

यः पापेभ्यः पापतमस्तेषामधम एव सः॥ १५॥
ब्राह्मण्यं यो न जानीते धनं लब्ध्वेव दुर्लभम्।

वह पापियोंसे भी बढ़कर अत्यन्त पापी और उनमें भी अधम ही है, जो दुर्लभ धनकी भाँति ब्राह्मणत्वको पाकर भी उसके महत्त्वको नहीं समझता है॥ १५½॥

दुष्प्रापं खलु विप्रत्वं प्राप्तं दुरनुपालनम्॥ १६॥
दुरावापमवाप्यैतन्नानुतिष्ठन्ति मानवाः।

पहले तो ब्राह्मणत्वका प्राप्त होना ही कठिन है। यदि वह प्राप्त हो जाय तो उसका पालन करना और भी कठिन हो जाता है; किंतु बहुत-से मनुष्य इस दुर्लभ वस्तुको पाकर भी तदनुकूल आचरण नहीं करते हैं॥ १६½॥

एकारामो ह्यहं शक्र निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः॥ १७॥
अहिंसादममास्थाय कथं नार्हामि विप्रताम्।

शक्र! मैं एकान्तमें आनन्दपूर्वक रहता हूँ तथा द्वन्द्वों और परिग्रहोंसे दूर हूँ। अहिंसा और दमका पालन किया करता हूँ। ऐसी दशामें मैं ब्राह्मणत्व पाने योग्य क्यों नहीं हूँ?॥ १७½ ॥

दैवं तु कथमेतद् वै यदहं मातृदोषतः॥ १८॥
एतामवस्थां सम्प्राप्तो धर्मज्ञः सन् पुरंदर।

पुरंदर! मैं धर्मज्ञ होकर भी केवल माताके दोषसे इस अवस्थामें आ पहुँचा हूँ। यह मेरा कैसा दुर्भाग्य है?॥ १८½ ॥

नूनं दैवं न शक्यं हि पौरुषेणातिवर्तितुम्॥ १९॥
यदर्थं यत्नवानेव न लभे विप्रतां विभो।

प्रभो! निश्चय ही पुरुषार्थके द्वारा दैवका उल्लंघन नहीं किया जा सकता; क्योंकि मैं जिसके लिये ऐसा प्रयत्नशील हूँ उस ब्राह्मणत्वको नहीं उपलब्ध कर पाता हूँ॥ १९½ ॥

एवंगते तु धर्मज्ञ दातुमर्हसि मे वरम्॥ २०॥
यदि तेऽहमनुग्राह्यः किंचिद् वा सुकृतं मम।

धर्मज्ञ देवराज! यदि ऐसी अवस्थामें मैं आपका कृपापात्र हूँ अथवा यदि मेरा कुछ भी पुण्य शेष हो तो आप मुझे वर प्रदान कीजिये॥ २०½ ॥

वैशम्पायन उवाच

वृणीष्वेति तदा प्राह ततस्तं बलवृत्रहा॥ २१॥
चोदितस्तु महेन्द्रेण मतङ्गः प्राब्रवीदिदम्।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तब बल और वृत्रासुरको मारनेवाले इन्द्रने मतङ्गसे कहा—'तुम मुझसे वर माँगो।' महेन्द्रसे प्रेरित होकर मतङ्गने इस प्रकार कहा—॥ २१½ ॥

यथा कामविहारी स्यां कामरूपी विहङ्गमः॥ २२॥
ब्रह्मक्षत्राविरोधेन पूजां च प्राप्नुयामहम्।
यथा ममाक्षया कीर्तिर्भवेच्चापि पुरंदर॥ २३॥
कर्तुमर्हसि तद् देव शिरसा त्वां प्रसादये।

देव पुरंदर! आप ऐसी कृपा करें जिससे मैं इच्छानुसार विचरनेवाला तथा अपनी इच्छाके अनुसार रूप धारण करनेवाला आकाशचारी देवता होऊँ। ब्राह्मण और क्षत्रियोंके विरोधसे रहित हो मैं सर्वत्र पूजा एवं सत्कार प्राप्त करूँ तथा मेरी अक्षय कीर्तिका विस्तार हो। मैं आपके चरणोंमें मस्तक रखकर आपकी प्रसन्नता चाहता हूँ। आप मेरी इस प्रार्थनाको सफल बनाइये॥

शक्र उवाच

छन्दोदेव इति ख्यातः स्त्रीणां पूज्यो भविष्यसि॥ २४॥
कीर्तिश्च तेऽतुला वत्स त्रिषु लोकेषु यास्यति।

इन्द्रने कहा—वत्स! तुम स्त्रियोंके पूजनीय होओगे। 'छन्दोदेव' के नामसे तुम्हारी ख्याति होगी और तीनों लोकोंमें तुम्हारी अनुपम कीर्तिका विस्तार होगा॥ २४½ ॥

एवं तस्मै वरं दत्त्वा वासवोऽन्तरधीयत॥ २५॥
प्राणांस्त्यक्त्वा मतङ्गोऽपि सम्प्राप्तः स्थानमुत्तमम्।

इस प्रकार उसे वर देकर इन्द्र वहीं अन्तर्धान हो गये। मतंग भी अपने प्राणोंका परित्याग करके उत्तम स्थान (ब्रह्मलोक)-को प्राप्त हुआ॥ २५½ ॥

एवमेतत् परं स्थानं ब्राह्मण्यं नाम भारत।
तच्च दुष्प्रापमिह वै महेन्द्रवचनं यथा॥ २६॥

भारत! इस तरह यह ब्राह्मणत्व परम उत्तम स्थान है। जैसा कि इन्द्रका कथन है, उसके अनुसार यह इस जीवनमें दूसरे वर्णके लोगोंके लिये दुर्लभ है॥ २६॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि इन्द्रमतङ्गसंवादे एकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत अनुशासनपर्वके अन्तर्गत दानधर्मपर्वमें इन्द्र और मतङ्गका संवादविषयक उनतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २९॥

त्रिंशोऽध्यायः

वीतहव्यके पुत्रोंसे काशी-नरेशोंका घोर युद्ध, प्रतर्दनद्वारा उनका वध और राजा वीतहव्यको भृगुके कथनसे ब्राह्मणत्व प्राप्त होनेकी कथा

युधिष्ठिर उवाच

श्रुतं मे महदाख्यानमेतत् कुरुकुलोद्वह।
सुदुष्प्रापं यद् ब्रवीषि ब्राह्मण्यं वदतां वर॥ १॥

युधिष्ठिरने पूछा—कुरुकुलमें उत्पन्न! वक्ताओंमें श्रेष्ठ पितामह! आपके मुखसे यह महान् उपाख्यान मैंने सुन लिया। आप कह रहे हैं कि अन्य वर्णोंके लिये इसी शरीरसे ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति बहुत ही कठिन है॥ १॥

विश्वामित्रेण च पुरा ब्राह्मण्यं प्राप्तमित्युत।
श्रूयते वदसे तच्च दुष्प्रापमिति सत्तम॥ २॥

सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ पितामह! परंतु सुना जाता है कि पूर्वकालमें विश्वामित्रजीने इसी शरीरसे ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लिया था और आप जो उसे सर्वथा दुर्लभ बता रहे हैं (ये दोनों बातें परस्पर विरुद्ध-सी जान पड़ती हैं)॥

वीतहव्यश्च नृपतिः श्रुतो मे विप्रतां गतः।
तदेव तावद् गाङ्गेय श्रोतुमिच्छाम्यहं विभो॥ ३॥

मेरे सुननेमें यह भी आया है कि राजा वीतहव्य क्षत्रियसे ब्राह्मण हो गये थे। गङ्गानन्दन प्रभो! अब मैं पहले उसी प्रसङ्गको सुनना चाहता हूँ॥ ३॥

स केन कर्मणा प्राप्तो ब्राह्मण्यं राजसत्तमः।
वरेण तपसा वापि तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ ४॥

वे नृपशिरोमणि वीतहव्य किस कर्मसे, किस वर अथवा तपस्यासे ब्राह्मणत्वको प्राप्त हुए? यह मुझे विस्तारपूर्वक बतानेकी कृपा करें॥ ४॥

भीष्म उवाच

शृणु राजन् यथा राजा वीतहव्यो महायशाः।
राजर्षिर्दुर्लभं प्राप्तो ब्राह्मण्यं लोकसत्कृतम्॥ ५॥

भीष्मजीने कहा—राजन्! महायशस्वी राजर्षि राजा वीतहव्यने जिस प्रकार लोकसम्मानित दुर्लभ ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था, उसे बताता हूँ, सुनो॥ ५॥

मनोर्महात्मनस्तात प्रजा धर्मेण शासतः।
बभूव पुत्रो धर्मात्मा शर्यातिरिति विश्रुतः॥ ६॥

तात! पूर्वकालमें धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करनेवाले महामनस्वी राजा मनुके एक धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम था शर्याति॥ ६॥

तस्यान्ववाये द्वौ राजन् राजानौ सम्बभूवतुः।
हैहयस्तालजंघश्च वत्सस्य जयतां वर॥ ७॥

विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ नरेश! राजा शर्यातिके वंशमें दो राजा बड़े विख्यात हुए—हैहय और तालजंघ। ये दोनों ही राजा वत्सके पुत्र थे॥ ७॥

हैहयस्य तु राजेन्द्र दशसु स्त्रीषु भारत।
शतं बभूव पुत्राणां शूराणामनिवर्तिनाम्॥ ८॥

भरतवंशी राजेन्द्र! उन दोनोंमें हैहयके (जिसका दूसरा नाम वीतहव्य भी था) दस स्त्रियाँ थीं। उन स्त्रियोंके गर्भसे सौ शूरवीर पुत्र उत्पन्न हुए जो युद्धसे पीछे हटनेवाले नहीं थे॥ ८॥

तुल्यरूपप्रभावाणां बलिनां युद्धशालिनाम्।
धनुर्वेदे च वेदे च सर्वत्रैव कृतश्रमाः॥ ९॥

उन सबके रूप और प्रभाव एक समान थे, वे सभी बलवान् तथा युद्धमें शोभा पानेवाले थे। उन्होंने धनुर्वेद और वेदके सभी विषयोंमें परिश्रम किया था॥

काशिष्वपि नृपो राजन् दिवोदासपितामहः।
हर्यश्व इति विख्यातो बभूव जयतां वरः॥ १०॥

उन्हीं दिनों काशी प्रान्तमें हर्यश्व नामके राजा राज्य करते थे, जो दिवोदासके पितामह थे। वे विजयशील वीरोंमें श्रेष्ठ समझे जाते थे॥ १०॥

स वीतहव्यदायादैरागत्य पुरुषर्षभ।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये संग्रामे विनिपातितः॥ ११॥

पुरुषप्रवर! वीतहव्यके पुत्रोंने हर्यश्वके राज्यपर चढ़ाई की उन्हें गंगा-यमुनाके बीच युद्धमें मार गिराया॥ ११॥

तं तु हत्वा नरपतिं हैहयास्ते महारथाः।
प्रतिजग्मुः पुरीं रम्यां वत्सानामकुतोभयाः॥ १२॥

राजा हर्यश्वको मारकर वे महारथी हैहय-राजकुमार निर्भय हो वत्सवंशी राजाओंकी सुरम्य पुरीको लौट गये॥ १२॥

हर्यश्वस्य च दायादः काशिराजोऽभ्यषिच्यत।
सुदेवो देवसंकाशः साक्षाद् धर्म इवापरः॥ १३॥

हर्यश्वके पुत्र सुदेव जो देवताके तुल्य तेजस्वी और साक्षात् दूसरे धर्मराजके समान न्यायशील थे, पिताके बाद काशिराजके पदपर अभिषिक्त किये गये॥

स पालयामास महीं धर्मात्मा काशिनन्दनः।
तैर्वीतहव्यैरागत्य युधि सर्वैर्विनिर्जितः॥ १४॥

धर्मात्मा काशिनन्दन सुदेव धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन करने लगे। इसी बीचमें वीतहव्यके सभी पुत्रोंने आक्रमण करके युद्धमें उन्हें भी परास्त कर दिया॥ १४॥

तमथाजौ विनिर्जित्य प्रतिजग्मुर्यथागतम्।
सौदेवस्त्वथ काशीशो दिवोदासोऽभ्यषिच्यत॥ १५॥

समराङ्गणमें सुदेवको धराशायी करके वे हैहय-राजकुमार जैसे आये थे वैसे लौट गये। तत्पश्चात् सुदेवके पुत्र दिवोदासका काशिराजके पदपर अभिषेक किया गया॥ १५॥

दिवोदासस्तु विज्ञाय वीर्यं तेषां यतात्मनाम्।
वाराणसीं महातेजा निर्ममे शक्रशासनात्॥ १६॥

दिवोदास बड़े तेजस्वी राजा थे। उन्होंने जब मनको वशमें रखनेवाले हैहयराजकुमारोंके पराक्रमपर विचार किया तब इन्द्रकी आज्ञासे वाराणसी नामवाली नगरी बसायी॥ १६॥

विप्रक्षत्रियसम्बाधां वैश्यशूद्रसमाकुलाम्।
नैकद्रव्योच्चयवतीं समृद्धविपणापणाम्॥ १७॥

वह पुरी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रोंसे भरी हुई थी। नाना प्रकारके द्रव्योंके संग्रहसे सम्पन्न थी; तथा उसके बाजार-हाट और दूकानें धन-वैभवसे भरपूर थीं॥ १७॥

गङ्गाया उत्तरे कूले वप्रान्ते राजसत्तम।
गोमत्या दक्षिणे कूले शक्रस्येवामरावतीम्॥ १८॥

नृपश्रेष्ठ! उस नगरीके घेरेका एक छोर गंगाजीके उत्तर तटतक दूसरा छोर गोमतीके दक्षिण किनारेतक फैला हुआ था। वह नगरी इन्द्रकी अमरावतीपुरीके समान जान पड़ती थी॥ १८॥

तत्र तं राजशार्दूलं निवसन्तं महीपतिम्।
आगत्य हैहया भूयः पर्यधावन्त भारत॥ १९॥

भारत! उस नगरीमें निवास करते हुए राजसिंह भूपाल दिवोदासपर पुनः हैहयराजकुमारोंने धावा किया॥

स निष्क्रम्य ददौ युद्धं तेभ्यो राजा महाबलः।
देवासुरसमं घोरं दिवोदासो महाद्युतिः॥ २०॥

महातेजस्वी महाबली राजा दिवोदासने पुरीसे बाहर निकलकर उन राजकुमारोंके साथ युद्ध किया। उनका वह युद्ध देवासुर-संग्रामके समान भयंकर था॥

स तु युद्धे महाराज दिनानां दशतीर्दश।
हतवाहनभूयिष्ठस्ततो दैन्यमुपागमत्॥ २१॥
हतयोधस्ततो राजन् क्षीणकोशश्च भूमिपः।
दिवोदासः पुरीं त्यक्त्वा पलायनपरोऽभवत्॥ २२॥

महाराज! काशिनरेशने एक हजार दिन (दो वर्ष नौ महीने दस दिन)-तक शत्रुओंके साथ युद्ध किया। इस युद्धमें दिवोदासके बहुत-से सिपाही और हाथी, घोड़े आदि वाहन मारे गये। उनका खजाना खाली हो गया और वे बड़ी दयनीय दशामें पड़ गये। अन्तमें अपनी राजधानी छोड़कर भाग निकले॥ २१-२२॥

गत्वाऽऽश्रमपदं रम्यं भरद्वाजस्य धीमतः।
जगाम शरणं राजा कृताञ्जलिररिंदम॥ २३॥

शत्रुदमन नरेश! बुद्धिमान् भरद्वाजके रमणीय आश्रमपर जाकर राजा दिवोदास हाथ जोड़े हुए वहाँ मुनिकी शरणमें गये॥ २३॥

तमुवाच भरद्वाजो ज्येष्ठः पुत्रो बृहस्पतेः।
पुरोधाः शीलसम्पन्नो दिवोदासं महीपतिम्॥ २४॥
किमागमनकृत्यं ते सर्वं प्रब्रूहि मे नृप।
यत् ते प्रियं तत् करिष्ये न मेऽत्रास्ति विचारणा॥ २५॥

बृहस्पतिके ज्येष्ठ पुत्र भरद्वाजजी बड़े शीलवान् और दिवोदासके पुरोहित थे। उन्होंने राजाको उपस्थित देखकर पूछा—'नरेश्वर! तुम्हें यहाँ आनेकी क्या आवश्यकता पड़ी? मुझे अपना सब समाचार बता दो। तुम्हारा जो भी प्रिय कार्य होगा उसे मैं करूँगा। इसके लिये मेरे मनमें कोई अन्यथा विचार नहीं होगा'॥ २४-२५॥

राजोवाच

भगवन् वैतहव्यैर्मे युद्धे वंशः प्रणाशितः।
अहमेकः परिद्यूनो भवन्तं शरणं गतः॥ २६॥

राजाने कहा—भगवन्! संग्राममें वीतहव्यके पुत्रोंने मेरे कुलका विनाश कर डाला। मैं अकेला ही अत्यन्त संतप्त हो आपकी शरणमें आया हूँ॥ २६॥

शिष्यस्नेहेन भगवंस्त्वं मां रक्षितुमर्हसि।
एकशेषः कृतो वंशो मम तैः पापकर्मभिः॥ २७॥

भगवन्! मैं आपका शिष्य हूँ और आप मेरे गुरु हैं। शिष्यके प्रति गुरुका जो सहज स्नेह होता है उसीके द्वारा आप मेरी रक्षा कीजिये। उन पापकर्मियोंने मेरे कुलमें केवल मुझ एक ही व्यक्तिको शेष छोड़ा है॥ २७॥

तमुवाच महाभागो भरद्वाजः प्रतापवान्।
न भेतव्यं न भेतव्यं सौदेव व्येतु ते भयम्॥ २८॥

यह सुनकर प्रतापी महर्षि महाभाग भरद्वाजने कहा—'सुदेवनन्दन! तुम न डरो, न डरो। तुम्हारा भय दूर हो जाना चाहिये॥ २८॥

अहमिष्टिं करिष्यामि पुत्रार्थं ते विशाम्पते।
वीतहव्यसहस्राणि येन त्वं प्रहरिष्यसि॥ २९॥

'प्रजानाथ! मैं तुम्हारी पुत्र-प्राप्तिके लिये एक यज्ञ करूँगा जिसकी सहायतासे तुम हजारों वीतहव्य-पुत्रोंको मार गिराओगे'॥ २९॥

तत इष्टिं चकारर्षिस्तस्य वै पुत्रकामिकीम्।
अथास्य तनयो जज्ञे प्रतर्दन इति श्रुतः॥ ३०॥

तब ऋषिने राजासे पुत्रेष्टि यज्ञ कराया। इससे उनके प्रतर्दन नामसे विख्यात पुत्र हुआ॥ ३०॥

स जातमात्रो ववृधे समाः सद्यस्त्रयोदश।
वेदं चापि जगौ कृत्स्नं धनुर्वेदं च भारत॥ ३१॥

भारत! वह पैदा होते ही इतना बढ़ गया कि तुरंत तेरह वर्षकी अवस्थाका-सा दिखायी देने लगा। उसी समय उसने अपने मुखसे सम्पूर्ण वेद और धनुर्वेदका गान किया॥ ३१॥

योगेन च समाविष्टो भरद्वाजेन धीमता।
तेजो लोक्यं स संगृह्य तस्मिन् देशे समाविशत्॥ ३२॥

बुद्धिमान् भरद्वाजमुनिने उसे योगशक्तिसे सम्पन्न कर दिया और उसके शरीरमें सम्पूर्ण जगत्का तेज भर दिया॥ ३२॥

ततः स कवची धन्वी स्तूयमानः सुरर्षिभिः।
वन्दिभिर्वन्द्यमानश्च बभौ सूर्य इवोदितः॥ ३३॥

तदनन्तर राजकुमार प्रतर्दनने अपने शरीरपर कवच धारण किया और हाथमें धनुष ले लिया। उस समय देवर्षिगण उसका यश गाने लगे। वन्दीजनोंसे वन्दित हो वह नवोदित सूर्यके समान प्रकाशित होने लगा॥ ३३॥

स रथी बद्धनिस्त्रिंशो बभौ दीप्त इवानलः।
प्रययौ स धनुर्धुन्वन् खड्गी चर्मी शरासनी॥ ३४॥

वह रथपर बैठ गया और कमरमें तलवार बाँधकर प्रज्वलित अग्निके समान उद्भासित होने लगा। ढाल, तलवार और धनुषसे सम्पन्न हो वह धनुषकी टंकार करता हुआ आगे बढ़ा॥ ३४॥

तं दृष्ट्वा परमं हर्षं सुदेवतनयो ययौ।
मेने च मनसा दग्धान् वैतहव्यान् स पार्थिवः॥ ३५॥

उसे देखकर सुदेव-पुत्र राजा दिवोदासको बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने मन-ही-मन वीतहव्यके पुत्रोंको अपने पुत्रके तेजसे दग्ध हुआ ही समझा॥ ३५॥

ततोऽसौ यौवराज्ये च स्थापयित्वा प्रतर्दनम्।
कृतकृत्यं तदाऽऽत्मानं स राजा अभ्यनन्दत॥ ३६॥

तत्पश्चात् राजा दिवोदासने प्रतर्दनको युवराजके पदपर स्थापित करके अपने आपको कृतकृत्य माना और बड़े आनन्दका अनुभव किया॥ ३६॥

ततस्तु वैतहव्यानां वधाय स महीपतिः।
पुत्रं प्रस्थापयामास प्रतर्दनमरिंदमम्॥ ३७॥

इसके बाद राजाने अपने पुत्र शत्रुदमन प्रतर्दनको वीतहव्यके पुत्रोंका वध करनेके लिये भेजा॥ ३७॥

सरथः स तु संतीर्य गङ्गामाशु पराक्रमी।
प्रययौ वीतहव्यानां पुरीं परपुरञ्जयः॥ ३८॥

पिताकी आज्ञा पाकर वह शत्रुनगरीपर विजय पानेवाला पराक्रमी वीर शीघ्र ही रथसहित गंगापार करके वीतहव्यपुत्रोंकी राजधानीकी ओर चल दिया॥

वैतहव्यास्तु संश्रुत्य रथघोषं समुद्धतम्।
निर्ययुर्नगराकारै रथैः पररथारुजैः॥ ३९॥
निष्क्रम्य ते नरव्याघ्रा दंशिताश्चित्रयोधिनः।
प्रतर्दनं समाजग्मुः शरवर्षैरुदायुधाः॥ ४०॥

उसके रथकी घोर घरघराहट सुनकर विचित्र ढंगसे युद्ध करनेवाले पुरुषसिंह हैहयराजकुमार कवचसे सुसज्जित होकर शत्रुओंके रथको तोड़ डालनेवाले नगराकार विशाल रथोंपर बैठे हुए पुरीसे बाहर निकले और धनुष उठाये बाणोंकी वर्षा करते हुए प्रतर्दनपर चढ़ आये॥ ३९-४०॥

शस्त्रैश्च विविधाकारै रथौघैश्च युधिष्ठिर।
अभ्यवर्षन्त राजानं हिमवन्तमिवाम्बुदाः॥ ४१॥

युधिष्ठिर! जैसे बादल हिमालयपर जल बरसाते हैं, उसी प्रकार हैहयराजकुमारोंने रथसमूहोंद्वारा आकर राजा प्रतर्दनपर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी॥ ४१॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य तेषां राजा प्रतर्दनः।
जघान तान् महातेजा वज्रानलसमैः शरैः॥ ४२॥

तब महा तेजस्वी राजा प्रतर्दनने अपने अस्त्रोंद्वारा शत्रुओंके अस्त्रोंका निवारण करके वज्र और अग्निके समान तेजस्वी बाणोंसे उन सबको मार डाला॥ ४२॥

कृत्तोत्तमाङ्गास्ते राजन् भल्लैः शतसहस्रशः।
अपतन् रुधिरार्द्राङ्गा निकृत्ता इव किंशुकाः॥ ४३॥

राजन्! भल्लोंकी मारसे उनके मस्तकोंके सैकड़ों और हजारों टुकड़े हो गये थे। उनके सारे अंग खूनसे लथपथ हो गये और वे कटे हुए पलाशके वृक्षकी भाँति धरतीपर गिर पड़े॥ ४३॥

हतेषु तेषु सर्वेषु वीतहव्यः सुतेष्वथ।
प्राद्रवन्नगरं हित्वा भृगोराश्रममप्युत॥ ४४॥

उन सब पुत्रोंके मारे जानेपर राजा वीतहव्य अपना नगर छोड़कर महर्षि भृगुके आश्रममें भाग गये॥ ४४॥

ययौ भृगुं च शरणं वीतहव्यो नराधिपः।
अभयं च ददौ तस्मै राज्ञे राजन् भृगुस्तदा॥ ४५॥

राजन्! वहाँ नरेश्वर वीतहव्यने महर्षि भृगुकी शरण ली। तब भृगुने राजाको अभयदान दे दिया॥ ४५॥

अथानुपदमेवाशु तत्रागच्छत् प्रतर्दनः।
स प्राप्य चाश्रमपदं दिवोदासात्मजोऽब्रवीत्॥ ४६॥

इतनेहीमें उनके पीछे लगा हुआ दिवोदासकुमार प्रतर्दन भी शीघ्र ही वहाँ पहुँचा। आश्रममें पहुँचकर उसने इस प्रकार कहा—॥ ४६॥

भो भोः केऽत्राश्रमे सन्ति भृगोः शिष्या महात्मनः।
द्रष्टुमिच्छे मुनिमहं तस्याचक्षत मामिति॥ ४७॥

भाइयो! इस आश्रममें महात्मा भृगुके शिष्य कौन-कौन हैं? मैं महर्षिका दर्शन करना चाहता हूँ। आपलोग